कस्तूरी कुंडल बसै

अनुक्रम

1. अंतर्यात्रा के मूल सूत्र...2
2. धर्म कला है--मृत्यु की, अमृत की..24
3. मन के जाल हजार..44
4. विराम है द्वार राम का...61
5. धर्म और संप्रदाय में भेद...78
6. अभीप्सा की आगः अमृत की वर्षा...98
7. मन रे जागत रहिये भाई...115
8. शिष्यत्व महान क्रांति है...130
9. प्रार्थना है उत्सव...148 10...उपलब्धि के अंतिम चरण 166

कस्तूरी कुंडल बसै
पहला प्रवचन

अंतर्यात्रा के मूल सूत्र

सूत्र

तेरा जन एकाध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई।।
राजस तामस सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया
चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया।।
अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना।
लोहा कंचन सम करि देखै, ते मूरति भगवाना।।
च्यंतै तो माधो च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहित हवै, कहै कबीर सो दासा।।

तिब्बत के एक आश्रम में कोई हजार साल पहले एक छोटी सी घटना घटी। उससे
ही हम कबीर में प्रवेश शुरू करें। बड़ा आश्रम था यह, और इस आश्रम ने एक छोटा नया आश्रम भी दूर तिब्बत के सीमांत पर प्रारंभ किया था।
आश्रम बन गया। खबर आई कि सब तैयारी हो गई है, अब आप एक योग्य संन्यासी
को पहुंचा दें जो गुरु का सम्हाल ले।
प्रधान आश्रम के गुरु ने दस संन्यासी चुने और दसों को उस आश्रम की तरफ भेजा। पूरा आश्रम चकित हुआ। कोई हजार अंतःवासी थे। उन्होंने कहा, बात समझ में न आई--एक बुलाया था; दस भेजे। उत्सुकता बहुत तीव्र हो गई। जिज्ञासा सम्हाले न सम्हली। तो कुछ संन्यासी गए और गुरु को कहा, हम समझ न पाए। एक का ही बुलावा आया था, आपने दस क्यों भेजे?
गुरु ने कहा, रुको। जब वे पहुंच जाएं, तब तुम्हें समझा दूंगा। तीन सप्ताह बाद... यात्रा लंबी थी--पहाड़ी थी, पैदल यात्रा थी। तीन सप्ताह बाद खबर पहुंची कि आपने जो एक संन्यासी भेजा था, वह पहुंच गया।
अब और भी मुसीबत हो गई। अब तो पूरा आश्रम एक ही चर्चा से भर गया कि यह
तो रहस्य सुलझा न, और उलझ गया। दस भेजे थे; खबर आई, एक ही पहुंचा। फिर उन्होंने फिर से पूछा। तो गुरु ने कहा, दस भेजो तो एक पहुंचता है।
फिर पूरी कहानी बाद में पता चली। दस यात्रा पर गए। पहले ही गांव में प्रवेश किया और एक आदमी ने सुबह ही सुबह नगर के द्वार पर, पहला जो संन्यासी था, उसके पैर पकड़ लिए और कहाः ज्योतिषी ने कहा है कि जो भी व्यक्ति कल सुबह पहला प्रवेश करे, उसी से मैं अपनी लड़की की शादी कर दूं। लड़की यह है और इतना धर मेरे पास है, और कोई मालिक नहीं। एक ही लड़की है, कोई और मेरा बेटा नहीं। ज्योतिषी ने कहाः अगर पहला आदमी इनकार कर दे तो जो दूसरा आदमी हो; दूसरा इनकार करे तो तीसरा। तो तुम दस इकट्ठे ही हो, कोई न कोई स्वीकार कर ही लेगा।
पहले ने ही स्वीकार कर लिया। लड़की बहुत सुंदर थी। धन भी काफी था। उसने अपने मित्रों से कहा कि मेरा जाना न हो सकेगा आगे; परमात्मा की मर्जी यही दिखती है कि मैं इसी गांव में रुक जाऊं।
दूसरे गांव में जब वे पहुंचे तो गांव के राजा का जो पुरोहित थज्ञ, वह
मर गया था, और वह एक नये पुरोहित की तलाश में था। अच्छी नौकरी थी, शाही सम्मान था; काम कुछ भी न था। एक संन्यासी वहां रुक गया। और ऐसे ही... । पहुंचते-पहुंचते, जब सिर्फ दस मिल दूर रह गया था आश्रम, वे एक गांव में
एक सांझ रुके। दो ही बचे थे। गांव के लोगों ने प्रवचन आयोजित किया था। उनमें से एक बोला। जब वह बोल रहा था तो एक नास्त्कि बीच में खड़ा हो गया और उसने कहा कि यह सब बकवास है; ये बुद्ध और बुद्ध वचन, ये सब दो कौड़ी के हैं, कचरा हैं, इनमें कुछ सार नहीं। जो संन्यासी बोल रहा था, उसने अपने मित्र से कहा, अब तुम जाओ। मैं यहीं रुकूंगा। जब तक इस नास्तिक को बदलकर आस्तिक न कर दिया, तब तक मैं इस गांव से निकलनेवाला नहीं हूं।
ऐसे एक पहुंचा।

दस चलते हैं तब एक पहुंचता है।
इस घटना के आधार पर तिब्बत में यह कहावत बन गई कि दस चलते हैं तब एक पहुंचता है। मार्ग कंटकाकीर्ण है; और बहुत प्रलोभन हैं मार्ग में। जगह-जगह रुकने की संभावना है। और प्रलोभन है। नीचे उतरनेवाला मार्ग नहीं है, जहां सुविधा से कोई ढलक सकता है; चढ़ाव है, भारी चढ़ाव है। गिरने की सब तरह की संभावनाएं हैं। गिरने के सब तरह के सूक्ष्म कारण मौजूद हैं। इसलिए दसचलें और एक भी पहुंच जाए तो काफी है।
इजिप्त में वे कहते हैं कि हजार बुलाए जातेहैं, और एक चुन जाता है। और मु्े लगता है, तिब्बत से उनकी कहावत ज्यादा सही है। दस चले और एक पहुंच जाए, यह भी संभव नहीं मालूम होता। हजार बुलाए जाते हैं और एक चुना जाता है। जीसस से किसी ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु का राज्य कैसा है, तो जीसस ने कहा, मछुए के जाल की तरह। मछुआ जाल फेंकता है, सैकड़ों मछलियां फंस जाती हैं। जो योग्य हैं, खाने के योग्य हैं, चुन ली जाती हैं; बाकी वापस पानी में फेंक दी जाती हैं।
तो जीसस ने कहा, प्रभु का राज्य भी मछुए के जाल की तरह है। परमात्मा जाल फेंकता है, लाखों फंसते हैं; पर इने-गिने चुने जाते हैं, जो तैयार हैं; बाकी वापस पानी में फेंक दिए जाते हैं। पानी यानी संसार।
इसी तरह तो तुम बार-बार फेंके गए हो। ऐसा नहीं है कि जाल में नहीं फंसे, कई बार फंसे हो; पर तुम योग्य नहीं थे कि चुने जा सको। जाल में फंस जाना काफी नहीं है; मछुए की आंख में जंचना भी जरूरी है। जाल में तो तुम फंस जाते हो--जाल के कारण; लेकिन मछुआ तो तुम्हें चुनेगा--तुम्हारे कारण। हजार बार तुम फंस गए हो--न मालूम कितनी बार संन्यास लिया होगा; न मालूम कितनी बार भिक्षु बने होओगे; न मालूम कितनी बार घर-द्वार छोड़ा होगा, आश्रम में वास कर लिया होगा; कितनी बार प्रार्थना की है, कितनी बार संकल्प किए, कितने व्रत, कितने उपवास! तुम्हारे अनंत जन्मों की अनंत कथा है। लेनिक एक बात पक्की है कि तुम जाल में कितने ही बार फंसे होओ; बार-बार वापस जल में फेक दिए गए हो; चुने तुम नहीं जा सके।
चुने जाने के लिए पात्रता चाहिए। चुने जा सको, इसके लिए भीतरी बल चाहिए, ऊर्जा चाहिए चुने जा सको, इसके लिए पात्रता चाहिए।
और उस पात्रता को उपलब्ध करना दुर्गम है, अति दुर्गम है। इस संसार में सभी कुछ पा लेना आसान है। तुम जैसे हो वैसे ही रहते हुए इस संसार की सब चीजें पाई जा सकती हैं। परमात्मा को पा लेना कठिन है, क्योंकि तुम जैसे हो वैसे ही रहते हुए परमात्मा को नहीं पाया जा सकता; तुम्हें बदलना होगा। और बदलाहट ऐसी है कि तुम्हें कुछ न कुछ परमातम जैसे होना होगा, तभी तुम परमात्मा को पा सकोगे। क्योंकि जो परमात्मा जैसा नहीं है, वह कैसे परमात्मा को पा सकेगा? कोई समानता चाहिए जहां से सेतु बन सके। कुछ किरण तो चाहिए तुममें सूरज की, जिसके सहारे तुम सूरज तक यात्रा कर सको।
हम दुध से दही बनाते हैं, तो थोड़ा सा दही उसमें डाल देते हैं, फिर सारा दुध दही हो जाता है। तो तुमने थोड़ा सा परमात्मा तो होना चाहिए--तभी तुम्हारा पूरा दूध दही हो सकेगा। उतना ही न हो तो यात्रा नहीं हो सकती। और कहीं कठिनाई है, क्योंथक थोड़ा सा भी परमात्मा जैसा हेना तुम्हारे सारे जीवन की व्यवस्था को बदलने के अतिरिक्त न हो सकेगा; तुम्हारी पूरी जीवन की शैली और पद्धति रुपांतरित करनी होगी।
इसलिए कबीर कहते हैं, तेरा जन एकाध है कोई।
ऐसे करोड़-करोड़ लोग हैं, मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गुरुद्वार हैं। लोग प्रार्थनाएः कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, अर्चना कर रहे हैं--पर तेरा जन कोई एकाध ही है।
बड़ी पृथ्वी है। करोड़ों-अरबों लोग हैं। मंदिरों की भी कोइ कमी नहीं है; प्रार्थना-पूजा भी खूब चल रही है। अर्चना की धूप जल रही है, दीये जल रहे हैं; लेकिन अचना की आत्मा नहीं है। पूजा हो रही है बाहर के मंदिर में; भीतर के मंदिर में पूजा का कोई स्वर नहीं है। बड़ा सजावट है मंदिर में बाहर; भीतर का मंदिर बिल्कुल खाली है। तो जाओ तुम कितना ही मंदिरों में, पहुंच न पाओगे; क्योंकि उसका मंदिर कोई पत्थर-मिट्टी का मंदिर नहीं है। उसका

मंदिर तो परम चैतन्य का मंदिर है। उसका मंदिर कोई आदमी के बनाए नहीं बनता। बात तो बिल्कुल उलटी है--उसके बनाए आदमी बना है। आदमी उसके मंदिर बना कर किसको धोखा दे रहा है?
तुम्हारे बनाए मंदिरों से तुम कहीं भी न पहुंच सकोगे। तुम्हारे बनाए मंदिर तुमसे छोटे होंगे। उचित भी है, गणित साफ है। तुम जो बनाओ वह तुमसे बड़ा हो सकता है? बनाने वाले से बनाई गई चीज बड़ी नहीं हो सकती। कविता ही सुंदर हो, कवि से बड़ी थोड़ी ही हो पाएगी। और संगीत कितना ही मधुर हो, संगीतज्ञ से तो बड़ा न हो पाएगा। मूर्ति कितनी ही सुंदर हो, मूर्तिकार से तो सुंदर न हो पाएगी। बनानेवाला तो ऊपर ही रहेगा, क्योंकि बनाने वाले की संभावनाएं अभी शेष हैं, सब चुक नहीं गया; वह इससे भी श्रेष्ठ बना सकता है। जिसने एक सुंदर गीत गाया, वह इससे भी सुंदर हजार गीत गा सकता है। और वह कितने ही गीत गाए, हर गीत के ऊपर ही वह रहेगा।
तुम्हारे बनाए मंदिर बड़े नहीं हो सकते। तुम्हारी बनाई हुई परमात्मा
की प्रतिमाएं तुमसे छोटी होंगी। तुम्हीं उनके स्रष्टा हो। तुम्हारा काम, तुम्हारा क्रोध लोभ, माया-मोह, सब तुम्हारी मूर्तियों में समाविष्ट हो जाएगा। तुम्हारा हाथ ही तो छूएंगे और निर्माण करेंगे। तुम्हारे हाथ का जहर तुम्हारी मूर्तियों में भी उतर जाएगा। तुम्हारे बनाए हुए मंदिर तुमसे बेहतर नहीं हो सकते। और अगर तुम्हारा मन वेश्यालय में लगा है तो तुम्हारे मंदिर वेश्यालयों से बेहतर नहीं हो सकते। तुम जहां हो, तुम जैसे हो, तुम्हारी ही अनुकृतिम तो गूंजेगी। तुम्हारी ही धुन तो छूट जाएगी जहां। इसीलिए तो परमात्मा के मंदिर हैं; नाम भर परमात्मा के हैं, बनाए आदमी के हैं।
और शायद इसीलिए जितना मंदिरों से नुकसान हुआ जगत का, सिकी और चीज से नहीं हुआ। मंदिरों और मस्जिदों ने लोगों को लड़ाया है; क्योंकि जिन्होंने बनाया था, उनकी हिंसा उनमें उतर गई। मंदिर और मस्जिद ने आदमी को जोड़ा नहीं, तोड़ा है। उनके कारण पृथ्वी पर स्वर्ग नहीं उतरा, यद्यपि नर्क की झलकें कई बार मिली हैं।
ठीक भी लगता है, साफ है बात--क्योंकि जिन्होंने बनाया है उनकी घृणा, उनकी हिंसा, उनकी आक्रमण की वृत्ति, उनकी दुष्टता, उनकी क्रूरता, सभी मंदिरों और मस्जिदों में प्रवेश कर गई है।
तुम्हारे मंदिर में तुम किसकी पूजा कर रहे हो? अपनी ही पूजा कर रहे हो। तुम्हारे मंदिर तुम्हारे ही दर्पण हैं, जिनमें तुम्हारी छवि ही दिखाई प.स रही है। इसलिए तो मंदिर और मस्जिद में तुम कितने ही भटको, तुम पहुंच न पाओगे। तुम्हें अगर परमात्मा को खोजना है तो तुम्हें वह मंदिर खाजना होगा जो उसने ही बनाया। वह मंदिर तुम्हीं हो। इसलिए कबीर कहते हैंः "कस्तूरी कुंडल बसै!"
तुम्हें पता होगा कस्तूरी मृग का। कस्तूरी तो पैदा होती है मृग की नाभि में। कस्तुरी का नाफा नाभि में पैदा होता है। और कस्तूरी की जो सुगंध है, वह मादा मृग को आकर्षित करने के लिए है। जब मृग-नर कामातुर होता है, जब कामातुरता बढ़ती है तो उसके शरीर से एक सुगंध फैलनी शुरू हो जाती है। वह सुगंध बड़ी मादक है। कस्तूरी जैसी कोई गंध नहीं; बड़ी आकर्षक है, चुंबक जैसा उसमें आकर्षण है। मस्ती से भर देती है वह गंध मादा को। मादा पागल हो जाती है; वह अपना होश खो देती है।
यह तो ठीक है। यह तो प्रकृति की व्यवस्था हुई। प्रकृति ने वैसी व्यवस्था की है कि मादा और नर एक-दूसरे से चुंबकीय आकर्षण से बंधे रहें। मोर नाचता है। उसके पंख, उसके रंग, कामातुर हैं। उसका नृत्य, उसके नृत्य की भनक मादा को आषर्षित करती है। कोयल गाती है। उसकी ध्वनि पुकार है; उसकी ध्वनि में मादा बंधी चली आती है। वैसे ही कस्तुरी-मृग है। उसकी नाभि में कस्तुरी पैदा होती है और उसकी गंध शराग जैसी है। उस गंध में मादा अपना होश ख्ल्ला देती है समर्पण कर देती है। यहां तक तो ठीक है, लेकिन कस्तूरी-मृग की एक तकलीफ है कि उसको खुद भी बास आती है।
मोर नाचता है तो खुदा तो अपने पंखों को नहीं देख सकता। पपीहा पुकारता
है या कोयल गीत गाती है, तो भी कोयल को पता है कि गीत मेरा है। लेकिन

कस्तूरी-मृग को गंध आनी शुरू होती है और उसकी समझ में नहीं आता कि गंध कहां से आ रही है। मादा तो पागल होती है, नर भी पागल हो जाता है, और वह भागता है मदहोशी में कि कहीं से आ रही होगी--आ तो रही है--तो वह स्रोत की तलाश करता है। वह भागा फिरता है। वह जहां भी जाता है, वही गंध को पाता है। वह करीब-करीब पागल हो जाता है, सिर लहूलुहान हो जाता है, भागते--वृक्षों में, जगल में, खोजते कि कहां से गंध आती है? और गंध उसके भीतर से आती है--कस्तूरी कुंडल बसै।
कबीर ने बड़ा प्यारा प्रतीक चुना है। जिस मंदिर की तुम खोज कर रहे हो,
वह तुम्हारे कुंडल में बसा है; वह तुम्हारे ही भीतर है; तुम ही हो। और जिस परमात्मा की तुम मूर्ति गढ़ रहे हो, उसकी मूर्ति गढ़ने की कोई जरूरत नहीं; तुम ही उसकी मूर्ति हो। तुम्हारे अंतर-आकाश में जलता हुआ उसका दीया, तुम्हारे भीतर उसकी ज्योतिर्मयी छवि मौजूद है। तुम मिट्टी के दीये भला हो ऊपर से, भीतर तो चिन्मय की ज्योति हो। मृण्यम होगी तुम्हारी देह; चिन्मय है तुम्हारा स्वरूप। मिट्टी के दीए तुम बाहर से हो; ज्योति थोड़े ही मिट्टी की है। दीया पृथ्वी का है; ज्योति आकाश ही है। दीया संसार का है; ज्योति परमात्मा की है।
लेकिन तुम्हारी स्थिति वही है जो कस्तूरी मृग की हैः भागते फिरते हो; जन्मों-जन्मों से तलाश कर रहे हो, उसकी जो तुम्हारी भीतर ही छिपा है। उसे खोज रहे हो, जिसे तुमने कभी खोया नहीं। खोजने के कारण ही तुम वंचित हो। यह कस्तुरी-मृग पागल ही हो जाएगा। यह जितना खोजना उतनी मुश्किल में पड़ेगा; जहां जाएगा, वहीं भी जाए, सारे संसार में भटके तो भी पा न सकेगा। क्योंकि बात ही शुरु से गलत हो गई--जो भीतर था उसे उसने बाहर सोच लिया, क्योंकि गंध बाहर से आ रही थी, गंध उसे बाहर से आती मालूम पड़ी थी।
तुम्हें भी आनंद की गंध पागल बनाए दे रही है। तुम भी आनंद की गंध को बाहर से आता हुआ अनुभव करते हो, कभी किसी स्त्री के संग तुम्हें लगता है, आनंद मिला; कभी बांसुरी की ध्वनि में लगता है, आनंद मिला; कभी भोजन के स्वाद में लगता है कि आनंद मिला; कभी धन की खंकार में लगता है कि आनंद मिला; कभी पद की शक्ति में, अहंकार में लगता है कि आनंद मिला। बड़ा जंगल है! हर वृक्ष से तुम सिर तोड़ चुके हो, लहूलुहान हो--कभी यहां, कभी वहां, कभी इधर, कभी उधर खोजते हो और झलक मिलती है। झलक इसलिए मिलती है कि कस्तूरी कुंडल बसै। जहां भी जाओगे वहीं झलक मिल जाएगी।
जब यह जरा कठिन है। जब तुम किसी स्त्री के पाते हो कि आनंद मिला, तब ठीक वही दशा है जो कस्तूरी-मृग की है। आनंद तुम्हें अपने कारण मिल रहा है-- क्योंकि तुममहारा ही मन बदल जाएगा और इसी स्त्री में आनंद न मिलेगा; कल इसी स्त्री से तुम बचना चाहोगे। आज सब न्योछावर करने को राजी थे; कल इसकी शक्ल देखना मुश्किल हो जाएगी। अगर आनंद स्त्री से मिलता था, तो सदा मिलता, शाश्वत मिलता। तुम्हारे ही भीतर से कोई गंध उठी थी, और स्त्री में प्रतिफलन हुआ था। तुम्हारे ही भीतर से उठी थी गंध, और तुमने उसे स्त्री से आते हुए अनुभव किया था। स्त्री ने शायद तुम्हारे भीतर जो था उसकी ही प्रतिध्वनि की थी। कभी धन के संग्रह में, कभी अहंकार की तृप्ति में, पद-प्रतिष्ठा में तुम्हें गंध आती अनुभव हुई।
मैंने सुना है, एक जंगल में ऐसा हुआ, एक लोमड़ी ने एक खरखोश को पकड़ लिया। वह उसे खाने ही जा रही थी, सुबह का नाश्ता ही करने की तैयारी थी कि खरगोश ने कहा, रुको! तुम लोमड़ी हो, इसका सबूत क्या? ऐसा कभी किसी खरगोश ने इतिहास में पूछा ही नहीं था। लोमड़ी भी सकते में आ गई। उसे भी पहली दफे विचार उठा कि बात तो ठीक है, सबूत क्या है? उस खरगोश ने पूछा, प्रमाण पत्र कहा है, सर्टिफिकेट कहां है? उसने खरगोश से कहा, तू रूक, मैं अभी आती हूं। वह गई जंगल के राजा के पास, और उसने कहा, एक खरगोश ने मुझे मुश्किल में डाल दिया। मैं उसे खाने ही जा रही थी तो उसने कहा, रुक सर्टिफिकेट कहां है? सिंह ने अपने सिर पर हाथ मार लिया और कहा कि आदमियों की बीमारी जंगल में भी आ गई। कल मैंने एक गधे को पकड़ा, वह गधा बोला कि पहले सबूत, प्रमाण-पत्र क्या है? पहले तो मैं भी सकते में आ गया कि आज तक किसी गधे ने पूछा ही नहीं। इस गधे को क्या हो गया है? वह आदमी के सत्यंक में रह चुका था।

सिंह ने कहा, मैं लिखे देता हूं, उसने लिख कर दिया कि यह लोमड़ी ही है। लोकड़ी गई, बड़ी प्रसन्न, लेकर सर्टिफिकेट। खरगोश बैवा था। लोकड़ी को तो
शक था कि भाग जाएगा--कि सब धोखा है। लेकिन नहीं, खरगोश बैठा था, खरगोश ने सर्टिफिकेट पढ़ा। लोमड़ी के हाथ में सर्टिफिकेट दिया और भाग खड़ाहुआ। पास के ही बिल से, जमीन में अंतर्ध्यान हो गया। लोमड़ी सर्टिफिकेट के लेने-देने में लग गई और उस बीच वह खिसक गया। वह बड़ी हैरान हुई। वह वापस सिंह के पास आई कि यह तो बहुत मुश्किल की बात हो गई। सर्टिफिकेट तो मिला गया, लेकिन वह खरगोश निकल गया। तुमने गधे के साथ क्या किया था? सिंह ने कहा कि देख, जब मुझे भूख लगी होती है, तब मैं सर्टिफिकेट की चिंता नहीं करता; पहले मैं भोजन करता हूं। वही काफी सर्टिफिकेट है कि मैं सिंह हूं। और जब मैं भूखा नहीं होता, तो मैं सर्टिफिकेट की बिल्कुल चिंता नहीं करता। मैं मानता ही नहीं। मगर यह बीमारी जोर से फैल रही है।
आदमी में यह बीमारी बड़ी पुरानी है, जानवरों में शायद अभी पहुंची होगी। बीमारी यह है कि तुम दूसरों से पूछते हो कि मैं कौन हूं। जब हजारों लोग जय-जयकार करते हैं, तब तुम्हें सर्टिफिकेट मिलता है कि तुम कुछ हो। जब कोई तुम्हें उठाकर सिंहासन पर बिठाल देता है, तब तुम्हें प्रमाण-पत्र मिलता है कि तुम कुछ हो। दूसरों से प्रमाण-पत्र लेने की जरूरत है? दूसरों से पूछना आवश्यक है। कि तुम कौन हो?
लेकिन तुम सदा दूसरों से पूछ रहे हो। स्कूल से सर्टिफिकेट ले आए हो कि तुम मैट्रिकुलेट हो, कि बी. ए. हो, कि पीएच. डी. हो। सब तरफ से तुमने सर्टिफिकेट इकट्ठे किए हैं कि तुम कौन हो। कोई प्रमाण-पत्र तुम्हें खबर न दे सकेगा कि तुम कौन हो। क्योंकि, दूसरे तुम्हें कैसे पहचानेंगे?
सिंह भी कैसे प्रमाण-पत्र दे सकता है लोमड़ी को कि तू लोमड़ी ही है। अगर कोई प्रमाण है तो भीतर है। तुम कौन हो, इसको अगर कोई भी खबर मिल सकती है, तो भीतर से मिल सकती है। तुम दूसरों के दरवाजे मत खटखटाओ; तुम अपना ही दरवाजा खोल लो। और तुम्हें दूसरों के दरवाजे पार जो भनक भी मिलेगी, वह भी तुम्हारे भीतर की ही गंध की है। दूसरे के दरवाजे से टकराकर तुम्हारी ही गंध तुम्हारे नासापुटों में आ जाएगी, और तुम समझोगे कि दूसरे ने कुछ दिया है।
इस जगत में कोई किसी को कुछ नहीं देता, दे नहीं सकता। स्त्री दुख नहीं
दे सकती पुरुष को, पुरुष सुख नहीं दे सकता स्त्री को; लेकिन एक-दूसरे के आस-पास खड़े होकर अपनी गंध की प्रतिध्वनि सुनने में सुविधा हो जाती है। अगर तुम्हें एक शून्य घर में छोड़ दिया जाए, तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हो, क्योंकि वहां कोई दूसरा व्यक्ति नहीं जिसके माध्यम से तुम अपनी गंध को वापस पा सका। इसलिए आदमी भीड़ की तरफ जाता है--क्लब, समाज, समुदाय, मित्र, परिवार।
तुम सदा दूसरे को खोजते हो, क्योंकि दूसरे के बिना प्रतिध्वनि कैसे पता चलेगी? तुम भागे फिरते हो। बहुत जगह तुम्हें झलक मिलती है। वह सब झलक झूठी है--झूठी स्रोत की दृष्टि से। तुम्हें लगता है, वह बाहर से आ रही है। तब तुम बाहर पर निर्भर होते जाते हो। और जितना तुम बाहर पर निर्भर होते हो, उतनी ही भीतर की सुधि खो जाती है।
पहचानो, जब स्त्री के संभोग में कभी तुम्हें सुख का कोई क्षण मिला है,
तो होता क्या है? होता इतना ही है कि संभोग के क्षण में विचार बंद हो जाते हैं; विचार बंद हो जाते हैं; भीतर के ध्यान की धुन बजने लगती है; मार्ग खुल जाता है--कस्तुरी बाहर तक आ जाती है। क्षण भर को तुम्हें सुख का अनुभव होता है; क्षण भर को झरोखा खुलता है, फिर बंद हो जाता है।
जहां कहीं भी कोई सितार बजाता हो, और तुम बैठ जाते हो, लीन हो जाते हो-- जैसे ही तुम लीन होते हो, वैसे ही सुगंध आनी शुरू हो जाती है। वह सुगंध सितार से नहीं आ रही है; वह तुम्हारी लीनता से आ रही है। तल्लीनता ही तो ध्यान है।
तुम भोजन करते हो, स्वादिष्ट भोजन है; तुम बड़े रस से भोजन लेते हो; तुम इतने तल्लीन होकर भोजन करते हो कि भोजन ही ध्यान हो जाता है। उसी क्षण में

तो उपनिषद के ऋषियों ने कहा है कि अन्न ब्रह्म है। अन्न से भी इतनी ध्वनि उठी होगी कि ब्रह्म जैसा प्रतीत हुआ।
होता क्या है?
समझ लो कि तुम भोजन कर रहे हो--बड़ा स्वादिष्ट है, तुम बड़े तल्लीन हो, बड़ा सुख आ रहा है, स्वाद रोएं-रोएं में डूबा जा रहा है--तभी कोई खबर लेकर आता है कि बाहर पुलिस खड़ी है और मीसा के अंनर्गत तुम गिरफ्तार किए जाते हो--तत्क्षण स्वाद खो गया। भोजन अब भी वही है, लेकिन लीनता टूट गई। भोजन वही, जीभ वही है, शरीर में अब भी वही रस काम रह रहे हैं, लेकिन लीनता टूट गई। अब भोजन में कोई स्वाद नहीं है, भोजन बेस्वाद हो गया। अब भोजन में नमक है या नहीं, तुम्हें पता न चलेगा।
अचानक क्या बदल गया? सब तो वही है। और फिर एक आदमी भीतर आता है, वह कहता है, घबड़ाओ मत, सिर्फ मजाक की थी, कोई पुलिस नहीं आई है, कोई सीमा के अंतर्गत गिरफ्तार नहीं किए गए हो--फिर लीनता आ गई! जो भोजन बेस्वाद हो गया था, बड़ा फासला हो गया था--वह फिर स्वादिष्ट हो गया; फिर तुम मग्न हो। तुम्हीं दान देते हो, तुम्हीं भोग करते हो। तुम्हीं पहले भोजन में रस डाल देते हो लीनता के द्वारा, फिर तुम्हीं स्वाद लेते हो। तुम्हीं स्त्री या पुरुष में अपनी कामना के द्वारा ध्यान को केंद्रित कर देते हो, फिर अपनी ही धुन सुनते हो।
कस्तूरी कुंडल बसै।
जहां भी तुमने कहीं आनंद पाया हो, स्मरण रखना कि वह तुमने ही डाला होगा, क्योंकि दूसरा कोई उपाय नहीं है। धन में डाल दो तो में आनंद मिलने लगेगा, पद में डाल दो तो पद में आनंद मिलने लगेगा--जिस बात में भी डाल दो वहीं से आनंद मिलने लगेगा। आनंद तुम्हारा स्वभाव है; वह तुम्हारी नाभि में ही छिपा है और तुम मदमाते भाग रहे हो; और वहां खोज रहे हो जहां वह नहीं है; और वहां से तुम्हारी आंख बिल्कुल चूक गई है जहां वह है।
तेरा जन एकाध है कोई।
कोई एकाध करोड़ों में भीतर की तरफ मुड़ता है। कोई एकाध करोड़ों में इस राज को समझ पाता है कि जिसे मैं बाहर पा रहा हूं वह मेरे भीतर है। इस राज की कुंजी हाथ में आते ही, जीवन में क्रांति घटित हो जाती है; तुम्हारी हाथ में स्वर्ग का द्वार आ गया पहली दफा। अब कहीं खोजने की कोई जरूरत न रही। अब तो जब भी चाहा, सुंगध भीतर है, स्वर्ग भीतर है। जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली। दिल के आईने में है तस्वीर यार। अब बस गर्दन झुकाने की बात रही। धीरे-धीरे तो गर्दन झुकाने की भी बात नहीं रह जाती। तुम्हीं हो, गर्दन भी क्या झुकानी है! जहां रहे, जैसे रहे, वहीं आनंद फैलता रहेगा। जहां रहे, जैसे रहे; सुविधा में रहे, असुविधा में रहे; स्वस्थ थे कि बीमार थे; गरीब थे कि अमीर थे; जवान थे कि वृद्ध थे; जन्म रहे कि मर रहे थे--कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हीं हो परम स्वर्ग। अब कुछ भी बाहर होता रहे, वह सब बाहर है और भीतर अनाहत संगीत गूंज रहा है; और भीतर उस भीतर के महासुख में जरा भी दरार नहीं पड़ती, कोई विध्न नहीं आता। क्योंकि जो बाहर है, वह बाहर है, और उसके भीतर पहुंचने का कोई उपाय नहीं। एक बार तुम्हें अपने भीतर का मंदिर मिल गया और एक बार तुमने राह पहचान ली, फिर तुम्हें भटक का कोई उपाय नहीं। क्योंकि, कोई भटका भी नहीं रहा था, तुम खुद ही भटक रहे थे। क्योंकि, तुम्हें लगता था, गंध आती है बाहर से; और गंध छिपी थभ तुम्हारे नाभि में। तेरा जन एकाध है कोई।
करोड़ो में कोई एक भीतर की इस बात को पहचान पाता है। अड़चन क्या है? खोजते तो सभी हैं, पाना भी सभी चाहते हैं; फिर पा क्यों नहीं पाते। कहां अवरोध है? कहां मार्ग में दीवाल आ जाती है?
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई।
ये तीन को... कबीर कहते हैंः काम, क्रोध और लोभ--इन तीनों की विवर्जना है, इनका अवरोध है। इनके कारण ही पहचान मुश्किल हो जाती है। इनके कारण ही हरिपद को चीन्हना मुश्किल, करीब-करीब असंभव हो जाता है। इन तीन हम समझने की कोशिश करेंः
काम, क्रेध, लोभ--

काम हैः जो हमारे पास है, उससे ज्यादा पाने की आकांक्षा। जो मिला है उससे तृप्त न होना काम है। जो है, उससे असंतोष काम है। इसलिए मोक्ष की कामना भी कामना ही है। परमात्मा को पाने की इच्छा भी काम है। धन पाने की इच्छा तो काम है ही, स्त्री पाने की, पुरुष पाने की इच्छा तो काम है ही; परमात्मा को पाने की इच्छा, मोक्ष को पाने की इच्छा भी काम है।
काम का अर्थ इतना ही है कि जो है, उतना काफी नहीं। और अकाम का अर्थ है,
जो है वह काफी से ज्यादा है; जो है वह परम तृप्ति दे रहा है; जो है वह परितोष दे रहा है। उतने से हम राजी ही नहीं हैं; हम प्रफुल्लित भी हैं; जो मिला है उससे हम अनुगृहीत हैं। फिर काम विसर्जित हो जाता है।
इसलिए ध्यान रखना, दो तरह के कामी हैं; सांसारिक और धार्मिक। सांसारिक कामी बाजार में बैठा है--वह धन इकट्ठा कर रहा है, पद प्रतिष्ठा इकट्ठा कर रहे है, मकान बड़े से बड़े किए चला जा रहा है। और एक धार्मिक कामी है--वह संन्यासी हो गया है, मुनि हो गया है, मंदिर में बैठा है, आश्रम में बैठा है; लेकिन वह भी कामी है। उसकी कामना का विषय बदल गया है; लेकिन कामना नहीं बदली। कल वह धन चाहता था; अब वह ब्रह्म चाहता है--चाह काफी है।
और चाह है काम। क्या तुम चाहते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक तुम चाहते हो तब तक तनाव रहेगा, और जब तक तनाव रहेगा तब तक अवरोध रहेगा। जब तक तुम मांगते रहोगे तब तक तुम्हारी आंख बाहर लगी रहेगी। जब तक तुम चाहना से भरे रहोगे तब तक तुम भविष्य से भरे रहोगे; तुम्हारा मन दौड़ता रहेगा कल की तरफ। भीतर कैसे जाओगे? भीतर जाना तो आज और अभी हल्लाग। बाहर जाने वाला मन हमेशा कल आने वाले भविष्य में डोलता रहेगा, डांवाडोल रहेगा।
काम भविष्य का पैदा करता है। कामना से भविष्य पैदा होता है। और जो आदमी निष्काम है, वह अभी और यहीं जीता है, उसके लिए कोई भविष्य नहीं है। यह क्षण काफी है। क्या कमी है इस क्षण में? सब पूरा है। तुम पूरे के पूरे हो; रत्तीभर कमी नहीं है। लेकिन अगर कामना हुई तो कामना से कमी पैदा होती है। यह गणित ठीक से समझ लो।
जितनी बड़ी कामना, उतनी बड़भ कमी। जितना मांगोगे, उतने बड़े भिखारी रहोगे।
मैं एक घर में मेहमान था कलकत्ता में। एअरपोर्ट से मेरे मेजवान मुझे लेकर चले तो बड़े उदास थे। मैंने पूछा, कया हुआ कि बहुत नुकसान हो गया। उनकी पत्नी, जो पीछे बैठी थी, उसने कहा, इनकी बातों में मत पड़ना। आप तो जानते ही हैं नुकसान बिल्कुल नहीं हुआ है, लाभ हुआ है। तो मैं थोड़ा परेशान हुआ कि मामला क्या है? मैंने कहा, विस्तार से कहो। तो उसने कहा, इनको किसी धंधे में दस लाख मिलने की आशा थी, पांच लाख मिले। ये कहते हैं, पांच लाख का नुकसान हो गया और उससे बड़े परेशान हैं। ये रात सो नहीं सकते। और मैं इनको समझा-समझा कर मरी जा रही हूं। और इसलिए मैंने चाहा कि आप आए और इनको थोड़ी याद दिलाए कि पांच लाख का लाभ हुआ है।
कामना दस की हो और पांच ही मिलें तो पांच को तो नुकसान हो गया। अगर कामना पचास की होती तो और बड़ा नुकसान होता। अगर कामना करोड़ की होती तो भिखारी ही हो गए थे, दिवाला ही निकल जाता था। जितनी बड़ी कामना होती चली जाती है, उतना बड़ा भिखारीपन बढ़ता चला जाता है। इसलिए सम्राटों से बड़े भिखारी तुम कहीं न पा सकोगे, और धनियों से बड़े दरिद्र खोजना मुश्किल है। उनके पास क्या है, उसकी गिनती मत करना; क्योंकि उसकी गिनती वे खुद ही नहीं कर रहे हैं, तुम क्यों करो? उनके पास जो नहीं है उसका हिसाब करना, तब तुम्हें पता चलेगा। यहीं भूल हो रही है। तुम देखते हो धनी तो तुम उसका हिसाब लगाते हो जो-जो उसके पास है--कितना बड़ा मकान, कितनी बड़ी कार, कितनी बड़ी जमीन। तुम इसका हिसाब लगा रहे हो, तुम कह रहे रहो, आदमी के पास कितना है! वह आदमी इसका हिसाब ही नहीं लगा रहा है। वह हिसाब लगा रहा है उसका जो हाने चाहिए और जो नहीं है।
तुम ईर्ष्या से मरे जा रहे हो कि काश, इतना हमारे पास होता! और वह आदमी अपनी तृष्णा से मरा जा रहा है, क्योंकि यह तो कुछ भी नहीं है।
सपने कभी पूरे नहीं होते, क्योंकि अगर पूरे भी हो जाए तो सपने बड़े लोचपूर्ण हैं। जब तक वे पूरे होते हैं तब तक वे फैलकर और बड़े हो जाते हैं।

सपने तो, बच्चे रबड़ के गुब्बारों से खेलते हैं, वैसे हैं--तुम फूंकते जाते हो, वे बड़े होते जाते हैं। कुछ और हनीं करना पड़ता, सिर्फ फूंकना पड़ता है, सिर्फ थोड़ी हवा और डाल दी कि फुग्गा बड़ा हो जाता है, और बड़ा होता चला जाता है। कामना फूंकने से ज्यादा नहीं है। कोई कामना के लिए क्ुछ करना नहीं पड़ता; आराम कुर्सी में बैठ कर तुम जितना दिवास्वप्न देखना चाहो उतना देख सकते हो। और बच्चों के फुग्गे तो फूट भी जाते हैं, अगर ज्यादा फूंक जाए; कामना के फुग्गे कभी नहीं फूटते, क्योंकि वे हों तो फूटें। फुग्गा कम से कम कुछ तो है--माना कि कुछ पतली रबड़ है और भीतर सिर्फ गर्म हवा है; लेकिन सपने के फुग्गे में उतनी पतली रबड़ भी नहीं, वह हवा ही हवा है। उसको तुम फैलाते चले जाते हो। यह आकाश भी छोटा है तुम्हारे सपने से। उसकी कोई सीमा नहीं।
दुनिया में दा चीजें असीम हैंः एक सपना और एक ब्रह्म। बस दो चीजें असीम हैं। उनमें से एक है औरएक बिल्कुल नहीं है।
फिर सपना जितना बड़ा होता है, उससे तुम तुलना करते हो जो तुम्हारे पास है--बड़ी अतृप्ति पैदा होती है, बड़ा असंतोष जगता है। कोई तुम्हें गरीब नहीं बना रहा है; तुम्हीं अपने को गरीब बनाए चले जा रहे हो। जिस दिन यह समझ में आया बुद्ध और महावीर को, वे तत्क्षण राजमहल छोड़ सड़क पर खड़े हो गए। राजमहल नहीं छोड़ा; वह जो सपना था, जिसके कारण गरीब से गरीब हुए जा रहे थे, वह सपना छोड़ दिया।
इसलिए दुनिया में बड़ी अनूठी घटना घटती हैः सम्राट दीन रह जाते हैं और कभी-कभी राह के भिखारी ने ऐसी गरिमा पाई है कि उसकी महिमा का बखान नहीं किया जा सकता।
राज क्या है? कुंजी कहां है?
जो तुम्हारे पास है उससे जो तृप्त है, जिसकी वासना रत्ती भर भी भविष्य
की तरफ नहीं जाती, जिसने वर्तमान को काफी पाया--और काफी शब्द ठीक नहीं है, काफी से ज्यादा पाया, क्योंकि काफी में थोड़ी कमी मालूम पड़ती है; बस काफी है, ऐसा लगता है कि कुछ और बाकी है--जितना है काफी ही नहीं, जो है उसमें पर्याप्त से ज्यादा पाया, परितृप्ति पाई, परितोष पाया; और इतना ही नहीं कि वह राजी है, वह अनुगृहीत है, वह अहोभागी है; जो मिला है उसके लिए उसके हृदय में बड़ा गहन धन्यवाद है--तो कामना टूट जाती है। संतोष कामना को मिटा देता है। असंतोष कामना की अग्नि में घी की तरह बढ़ता चला जाता है।
संतुष्ट होना सीखो, तो पहली बाधा गिर जाएगी--काम। अगर कामना बनी रही
तो भविष्य का जाल बना रहता है। और वह जाल बड़ा है। और वर्तमान का क्षण बड़ा छोटा है। वह उस जाल में कहां खो जाएगा, तुम्हें पता ही न चलेगा।
वर्तमान का क्षण तो ऐसे है जैसे रेत का एक कण; और भविषे का जाल ऐसे है जैसे सारे सागरों के किनारे की रेत। वर्तमान का कण कहां तुम खो दोगे उस रेत में, पता ही न चलेगा। अगर तुम यह वर्तमान के क्षण के द्वार को पकड़ लो, और वही द्वार है। और उसके अतिरिक्त्त कोई द्वार नहीं है। वहीं से कोई मंदिर में प्रवेश करता है। क्योंकि वहीं तुम हो वही वृक्ष है, वहीं आकाश हैं, वहीं चांद-तारे हैं, वही परमात्मा है।
वर्तमान का क्षण एकमात्र अस्तित्व है। भविष्य तो कल्पना का जाल है;
वह तो आंखें खुली रख कर सपने देखने का ढंग है--दिवास्वप्न।
अगर तुम्हारी कामना भविष्य की तरफ बढ़ती जाती है तो एक अवरोध दूसरे अवरोध को सहायता देता है। जिस आदमी की कामना भविष्य में होगी उसका लोभ अतीत में होगा। लोभ अतीत है, और कानमा, काम भविष्य है। लोभ का मतलब है, जो उसे जोर से पकड़े रहो। काम का अर्थ है, जोनहीं है उसको मांगे जाओ। और लोभ का अर्थ है, जो तुम्हारे पास है उसे जोर से पकड़े रहो, वह कहीं खो न जाए, उसमें से रत्ती भर कम न हो जाए।
अब यह बड़े मजे की बात है कि उससे तुम्हें कोई सुख नहीं मिल रहा है, उससे तुम संतुष्ट नहीं हो; संतोष की तो तुम कामना कर रहे हो, कभी भविष्य में कोई स्वर्ग मिलेगा; लेकिन तुम उसे पकड़े जोर से हो।
आदमी अतीत को पकड़े रखता है, और जो-जो उसने अतीत में कमाया है--धन, पद, त्याग, जो भी, उसको सम्हाले रखता है कि कहीं यह खो न जाए। आंखें लगी रहती

हैं भविष्य पर और पैर अड़े रहते हैं अतीत में। दोनों हाथा से अतीत को पकड़े रहते हो और दोनों आंखों से सपना देखते रहते हो भविष्य का। और इन दोनों के बीच में क्षण है एक, जहां अस्तित्व समाधि में सदा ही लीन है; जहां अस्तित्व क्षण भर को भी कंपा नहीं है; जहां निष्कम्प चैतन्य की ज्योति जल रही है; जहां मंदिर का द्वार खुला है।
संकीर्ण है वह द्वार।
जीसस ने अपने शिष्य से कहा हैः नैरो इ.ज माई गेट। संकीर्ण है मेरा द्वार। स्टेट इ.ज दि वे, बट नैरो इ.ज माई गेट। मार्ग तो सीधा-साफ है, लेकिन द्वार बहुत संकीर्ण है। वही तो कबीर कहते हैं, प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय। बड़ी संकीर्ण है गली; वहां दो भी साथ न जा सकेंगे।
जीसस ने कहा है, सुई के छेद से ऊंट निकल जाए, लेकिन धनी स्वर्ग के द्वार से न निकल पाएगा। आखिरी धनी पर ऐसी क्या नाराजगी है? धनी से प्रयोजन है, जिसने पकड़ रखा है अतीत को, लोभ को।
लोभ और काम एक ही सिक्के के दो पहलूं हैं। एक अतीत की तरफ देख रहा है
कि जो है वह खो न जाए--दमड़ी-दमड़ी को पकड़े हुए है। और काम भविष्य की तरफ देख रहा है कि जो है उससे डरती। और पत्नी डरे तो समझो, कोई खाय मामला है, क्योंकि आमतौर से पत्नियां डरती नहीं हैं। कभी-कभार ऐसा होता है, सौ मैं से एकाध मौके पर ही पत्नी डरे। पत्नी डरती, नौकर कंपते, और उनको मैंने कभी नहीं देखा कि वे राह से निकलते, तो इधर-उधर देखते हों; बिल्कुल सीधा वे अपना... चलते रहते; एकदम चले जाते, तीर की तरह।
मैंने उनसे पूछा कि मामला के है? तो उन्होंने कहा कि अगर जरा ही हंस कर पत्नी से बोले, कहती है, फलाना गहना ले जाओ, यह करो। हंस कर बोले कि फंसे, तो चेहरा सख्त रखना पड़ता है। अगर बच्चे की जरा सी पीठ थपथपाओ, वह खीसे में हाथ डालता है। अगर नौकर की तरफ देख भी लो तो तैयार खड़ा है कि तनख्वाह बढ़ाओ। मगर इस अदमी की जिंदगी सोचो। पैसा तो यह बचा लेगा और सब खो जाएगा। इसकी जिंदगी में कोई सुख का क्षण नहीं हो सकता। क्योंकि जो अपने बच्चे की पीठ थपथपाने में भी भयभीत होता हो, जो पत्नी के पास बैठ कर मुस्कुराने से डरता हो, यह आदमी न हुआ, एक तरफ का पत्थर हो गया। इसक हृदय धीरे-धीरे धड़कना बंद हो जाएगा, सिर्फ फेकड़ा हवा फेंकता रहेगा, हृदय की धड़कन खो जाएगी। इसके जीवन में जो भी संवेदनशील है, वह सब नष्ट हो जाएगा। क्योंकि यह डरा हुआ है, यह कंजूस है, यह भयभीत है। इसने संपत्ति को सब कुछ मान लिया है। यह संपत्ति की रक्षा करेगा लेकिन मालिक नहीं है। पहरेदार हो सकता है। मालकियत तो तभी होती है जब तुम बांट पाते हो। और देने की कला सीख लेना इस जगत में सबसे बड़ी कला है, क्योंकि उसी द्वार से सब कुछ आता है। जो देता है, उसे मिलता है; जो लुटाता है, उस पर बरसता है।
कबीर ने कहा है, जैसे कि नाव में पानी भर जाए, तो तुम क्या करते हो? -- दोनों हाथ उलीचिए। ऐसे ही जीवन में जो तुम्हें मिल जाए, तुम दोनों हाथ उलीचना।
जीसस ने कहा है, जो बचाएगा, वह खो देगा; और जो खोने को राजी है, उससे कोई
भी नहीं छीन सकता। यह बड़ी उलटी बातें हैं। क्योंकि हमें तो लगता है, जितना बचाओगे उतना ही बचेगा, बांटोगे तो खो जाएगा। लेकिन तब तुम्हें जीवन के रहस्य की कोई भनक भी तुम्हारे जीवन में नहीं पड़ी। तुम दो और देखो।
दान लोभ के अवरोध को गिराता है; संतोष काम के अवरोध को गिराता है। दान
का मतलब इतना ही नहीं कि तुम पैसा किसी को दे दो; दान का मतलब है देने का भाव। एक मुस्कुराहट भी दी जा सकती है। कुछ खर्च नहीं प.सता। लेकिन कृपण उससे भी डरता है। क्या खर्च पड़ता है किसी की तरफ मुस्कुरा कर देखने में? जरा भी खर्च नहीं है; लेकिन खर्च की संभावना शुरू हो जाती है--डर है, भय है। कृपण ऐसे जीता है, जैसे दुश्मन के बीच में जी रहा है--सब तरफ दुश्मन हैं, और हर चीज से डरा हुआ है। कृपण भय से कंपता रहता है--सब तरफ चोर हैं, डकैत हैं; लुटेरे हैं, सब तरफ बेईमान हैं और सबकी नजर उस पर लगी है कि उसकी चीजों को झटके लें, छीन लें।
सिर्फ दानी अभय हो पाता है। और दान का मतलब बहुआयामी है। राह पर कोई गिर पड़ा है, तुम हाथ पकड़ कर उसे उठा लेते हो, तुम अपनी राह चल जाते हो, वह

अपनी राह चला जाता है; लेनिक तुमने थोड़ी सी जीवन ऊर्जा बांटी। तुम एक कुम्हलाए हुए पौधे को देखते हो और एक लौटा पानी लाकर डाल देते हो--तुमने दिया, तुमने जीवन-ऊर्जा बांटी। तुम एक बीमार आदमी के पास जाते हो, एक फूल उसके बिस्तर पर रख आते हो--तुमनें जीवन-ऊर्जा बांटी, तुमने जीवन दिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि दवा जो नहीं करती, वह किसी मित्र का लायाहुआ एक छोटा सा फूल कर जाता है। कोई अब भी प्रेम करता है, यह बात जितनी बड़ी बचाने वाली हो जाती है, कोई दवा नहीं बचा सकती। और कोई अब भी उत्सुक है... ! जब कोई मरण के मुंह के पास पड़ा हो, तब किसी का आकर कुशल-क्षेम पूछ जाना भी बड़े काम का हो जाता है। फिर शक्ति जग जाती है, आत्म-विश्वास उभर आता है। वह आदमी मौत के खिलाफ पैर टिका कर खड़ा हो जाता है कि संबंध सब टूट गए हैं; अभी भी कुछ खूंटियां जीवन में गड़ी हैं; कोई भी प्रतीक्षा करता है; कोई प्रेम करता है!
एक छोटा सा फूल, एक प्रेम से भरा हुआ शब्द किसी के जीवन को क्रांति दे देता है, किसी के जीवन को गिरने से बचा लेता है। एक शुभ आशीष प्राणों में नई ज्योति भर देता है।
कोई धन ही बांटने की बात नहीं है। धन तो निकृष्टतम है बांटने में। जिसके पास कुछ न हो वह धन बांटे।
एक करोड़पति एक बार मुझे मिलने आया। बहुत से रुपये लाकर सामने मेरे पैर पर रख दिए। वह बहुत अनूठा आदमी था। फिर मुझे वैसा दूसरा अनूठा आदमी पूरे मुल्क में घूम कर भी नहीं मिला। और बड़ी हैरानी की बात, वह एक सटोरिया था, जिनको लोग बुरा समझते हैं। जिंदगी बहुत अनूठी है! यहां कभी-कभी बुरी स्थितियों मग छिपे हुए साधु मिल जाते हैं, और कभी-कभी साधु के वेश में सिवाय शैतान के और कोई भी नहीं होता। जिंदगी बहुत रहस्यपूर्ण है। इसीलिए तुम ऊपर से पहचानना मत। जब तब भीतर न पहुंचो, तब तक निर्णय मत लेना। उस सटोरिए ने बहुत रुपये लाकर मेरे पैर पर रख दिए। मैंने कहा कि अभी मुझे जरूरत नहीं है; जब जरूरत होगी तब मैं आपसे ले लूंगा। सटोरिए की आंख से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, आप ऐसा कहते हैं, लेकिन तब मेरे पास होंगे कि नहीं। मैं सटोरिया हूं--आज हैं, कल नहीं हैं। इसलिए कल का मैं कोई वचन नहीं दे सकता। मैं डटोरिया हूं; मैं तो आज ही जीता हूं। और फिर उसने कहा कि अगर आप इनको इनकार करेंगे, तो आप मुझे बड़ी पीड़ा देंगे। मैंने कहा, क्या मतलब? उसने कहा कि मैं बहुत गरीब आदमी हूं; सिवाय रुपये के मेरे पास कुछ भी नहीं। मुझे इससे कीमती शब्द कहने वाला कोई आदमी फिर नहीं मिला। उस आदमी ने कहा कि मैं बहुत गरीब आदमी हूं! मेरे पास सिवाय रुपये के और कुछ भी नहीं। और जब आप मेरा रुपया इनकार कर दें तो मुझे इनकार कर दिया, क्योंकि मेरे पास और कुछ भी नहीं है जो मैं भेंट कर सकूं।
तो रुपया तो सबसे गरीब आदमी बांटता है; वह तो आखरी है, उसकी कोई बहुत कीमत नहीं है। कैसे नापोगे एक मुस्कुराहट को कि कितने रुपये है? एक प्रेमभरा शब्द, कहां तौलोगे कि कितने कैरेप का है?
अमूल्य है तुम्हारे पास देने को। और राज यह है कि तुम जितना देते हो, उतना तुम्हारे पास बढ़ता है। जितना तुम बांटते हो, उतना बढ़ता है। जितना तुम बांटते हो, उतना नया तुम्हार भीतर उभरता है। क्योंकि, तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। तुम उसे बांट-बांट कर भी बांट न पाओगे। तुम अपने ही हाथ से कृपण हो गए हो। तुम देते जाओगे और तुम पाओगे, ताजा निकलता आता है। तुम जितना दोगे, उतना बढ़ेगा।
और जो व्यक्ति देने की कला सीख लेता है, उस व्यक्तिकी लोभ की जो दीवाल है, वह गिर जाती है।
लोभ और काम के बीच में क्रोध है।
क्रोध बड़ा महत्वपूर्ण है, समझ लेने जैसा है, क्योंकि इन दोनों से ज्यादा जटिल है।
क्रोध क्या है?
अगर तुम्हारी कामना में कोई बाधा डाले, तो क्रोध करता है, या तुम्हारे लोभ में कोई बाधा डाले, तो क्रोध आता है। कबीर ने ठीक कहा हैः काम, क्रोध और लोभ। ठीक व्यवस्था से उन्होंने शब्द रखे हैं। क्रोध बीच में है, सेतु है।

कब आता है तुम्हें क्रोध?
तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए हो और पत्नी बाधा डालती है--क्रोध आता है। तुम शराबखाने जा रहे हो, और बीच में एक संन्यासी मिल गया है, और शराब के खिलाफ बोलने लगता है, और रुकावट डालता है--क्रोध आता है। तुम कृपण हो और एक भिखारी हाथ फैला कर खड़ा हो जाता है और चार आदमियों के सामने बड़ी फजीहत में डाल देता है--क्रोध आता है। तुमने अक्सर भिखारियों को पैसे क्रोध में दिए होंगे निन्यानबे मौकों पर; तुमने सिर्फ इसलिए दिए होंगे कि झंझट छूटे; तुमने सिर्फ इसलिए दिए होंगे कि चार आदमियों के सामने लोग क्या सोचेंगे, दे दो। इसलिए भिखारी भी बड़े कुशल हैं। वे तभी हाथ फैलाते हैं, जब देखते हैं कि भीड़-भाड़ है। अकेले में अगरी तुम मिल गए सड़क पर, तो वे अपना जेब बचा कर निकल जाते हैं। तुमसे पाने की तो आशा नहींम तुम और निकाल लो! अकेले में भिखारी तुमसे सावधान रहता है कि एकांत में ठीक नहीं झंझट में पड़ना उचित नहीं।
वह हमेशा तुम्हें भीड़ बाजार में, सड़क पर पकड़ता हैः पैर पकड़ लेता है, चार आदमियों के साथ जा रहे थे और फजीहत हुई जाती है। अभी यह इज्जत का सवाल है। भिखारी इज्जत का सवाल खड़ा कर रहा है। वह यह कह रहा है कि अब दे दो एक पैसा, एक पैसे के पीछे मत बदनामी करवाओ, लोग क्या कहेंगे? तुम देते हो क्रोध में, जो क्रोध में दियागया वह दिया ही नहीं गया, क्योंकि दान सिर्फ प्रेम में है।
अगर तुम्हारे लोभ में कोई बाधा डालता है, तो उस पर क्रोध आता है। अगर तुम्हारे काम में कोई बाधा डालता है तो उस पर क्रोध आता है। इसलिए तो पुनी कहावत हैः जरा, जोरू, जमीन; ये उपद्रव के तीन कारण बड़े प्राचीन समय से लोग समझते रहे हैं। जर, जोरू, जमीन का मतलब यह है कि धन और या काम, ये दो ही उपद्रव में उतार देते हैं; दोनों ही क्रोध का कारण बनते हैं। क्रोध दोनों क्े बीच में है। जैसे नदी क्रोध की बहती है और दो किनारे हैं--एक काम का और एक लोभ का। अगर काम और लोभ विसर्जित हो जाए, क्रोध तत्क्षण विलीन हो जाता है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि मेरे पास लोग आते हैं, जो पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे? मेरे पास कोई आदमी नहीं आया जिसने पूछा हो कि लोभ कैसे मिटे? कोई आदमी नहीं आया अब तक जिसने पूछा हो, काम कैसे मिटे? रोज आदमी आते हैं, जो पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे?
क्रोध मिट नहीं सकता। क्रोध पर सीधा हमला करने का उपाय ही नहीं है। क्योंकि क्रोध बाई-प्रॉडक्ट है। वह तो काम और लोभ के बीच में जीता है। लोग जब पूछते हैं, क्रोध कैसे मिटे, तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाता हूं। इनको क्या कहे? इनको निराश करना भी उचित नहीं है। कम से कम इतना भी पूछने आए हैं, यह भी क्या कम है। लेकिन उनको कहो क्या? क्योंकि अगर उनको कहो कि लोभ मिटाओ, वे नदारद हो जाएंगे, दुबारा कभी आएंगे ही नहीं। वे क्रोध मिटाना चाहते हैं। और क्रोध भी वे क्यों मिटाना चाहते हैं, ताकि लोभ सुविधा से कर सकें और काम का भोग शांति से हो। और कोई कारण नहीं है क्रोध मिटाने का। कोई परमात्मा को पाने के लिए कोध मिटाना चाहते हैं, ऐसा भी नहीं है। क्रोध से अड़चन आती है। कभी-कभी ग्राहक पर क्रोध आ जाता है, पीछे पछतावा होता है। कभी पत्नी पर क्रोध आ जाता है, फिर पीछे पछतावा होता है, क्योंकि इससे काम में और लोभ में बाधा पड़ती है। तुम दिन में पत्नी पर क्रोध कर लो, रात में वह बदला लेगी--वह तुम्हारे काम में बाधा डालेगी। क्रोध से अड़चन आती है काम और लोभ में। इसलिए लोग क्रोध को मिटाना चाहते हैं। लेकिन क्रोध मिटता है तभी जब काम और लोभ विसर्जित होते हैं, और मिटने का कोई भी उपाय नहीं है; हो भी नहीं सकता, क्योंकि वह दोनों के मध्य में जीता है। और जब तक वे दोनों मौजूद हैं तब तक क्रोध रहेगा ही। यह सोचा भी नहीं जा सकता कि लोभी क्रोध को कैसे छोड़ पाएगा। क्योंकि जब उसके लोभ में कोई बाधा डालेगा तो वह क्या करेगा? क्रोध रक्षा है। और जब उसके काम में कोई बाधा डालेगा तब वह क्या करेगा?
क्रोध सब अवरोधों को तोड़ कर काम के विषय तक पहुंचने की चेष्टा है। क्रोध तुम्हारे भीतर की आक्रमक हिंसा है, जो रक्षा करती है लोभ की और काम

की। लेकिन जब काम और लोभ ही न रहें, रक्षा कोई न बचा, रक्षक अपने आप विदा हो जाता है, वह व्यर्थ हो जाताहै। उसका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।
कबीर कहते हैं, काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई। जो व्यकित्त इन तीनों की विवर्जना कर देता है, इन तीन के पार हो जाता है, वही केवल हरिपद का पहचान पाता है। हरिपद तो तुम्हारे भीतर है। अगर ये तीन हों तो तुम कहां होओगे? अगर लोभ न हो, तो जो तुम्हारे पास है, तुम उसमें न रहोगे। अगर काम न हो, तो जो तुम्हारे पास नहीं है, उसमें तुम न रहोगे। तब तुम रहोगे कहां? तब तुम्हारी चेतना कहां आवास करेगी? कहां होगा तुम्हारा डेरा? अचानक तुम अपने भीतर खड़े हो जाओगे--और केई जगह न रही जाने की। न पीछे जाने की कोई जगह रही, न आगे जाने की कोई जगह रही। यहीं और अभी, तुम अपने भीतर खड़े हो जाओगे। तुम अपने स्वरूप में लीन हो जाओगे। वही स्वरूप हरिपद है। वही परममात्मा के चरण हैं।
यह हरिपद शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। तुम हरि को न पा लोगे इतने जल्दी, लेकिन हरिपद को पा लोगे। तुम्हारे भीतर, तुम्हारे हृदय के अंतरतम में परमात्मा के चरण हैं--लेकिन जब चरण पा लिए तो परमात्मा ज्यादा दूर नहीं।
जब चरण पर हाथ पड़ गए, परमातम ज्यादा दूर नहीं। तुम्हारे भीतर उसके पद है।
उसका पूरा शरीर तो ब्रह्मांझ है। उसका पूरा शरीर तो यह सारा अस्तित्व है। लेकिन हर हृदय में उसके पैर हैं। हर हृदय से उसकी तरफ जाने वाला मार्ग है। उसके पैर को पकड़ लेना ही उसके मार्ग पर चल पड़ता है।
पैर पकड़ने का अर्थ हैः समर्पण। परमात्मा के पैर तुम्हारे हृदय में हैं। उसका अर्थ है कि अगर तुम हृदय में समर्पित हो जाओ, तो तुमने किरण को पकड़ लिया--अब सूरज ज्यादा दूर नहीं; कितने ही दूर हो तो भी ज्यादा दूर नहीं। जिसने किरण पकड़ ली, उसने सूरज का पैर पकड़ लिया। काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्है सोई।
राजस तामस सातिग तीन्य, ये सब तेरी माया।
चौथे पद को जे जन चीन्हैं तिनहि परमपद पाया।।
सत्व, रज, तम--इन तीन गुणों में संख्या ने सारे जगत को बांटा है। यह तीन
की संख्या महत्वपूर्ण है, क्योंकि जिन्होंने भी जाना है, नाम इनके अलग-अलग हो, केई और नाम दे, कोई और, लेकिन इन सभी ने अस्तित्व को तीन हिस्सों में बांटा है। सत्व, रज, तम--ये सांख्य के शबद हैं। त्रिमूर्ति--ब्रह्मा विष्णु, महेश--हिंदुओं की सामान्य धारणा है। ट्रिनिटी ईसाइयों का विचार हैं। और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि पदार्थ आखिरी खोज में उन्होंने तीन को पाया। विश्लेषण के अंतिम क्षण में उन्होंने पाया कि इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन और पाजिट्रान, तीन से सारा अस्तितव बना है। ऐसा लगता है कि तीन सच्चाई की खबर है। कहीं से भी कोई खोजा है, एक तक पहुंचने के पहले उसने तीन को पाया है।
इस आश्रम के लिए जो प्रतीक चुना है--फाउंडेशन के लिए--वह इसकी तरफ इशारा है। एक तीन हो जाता है--संसार शुरू हुआ, मूल गुण शुरु हो गए। तीन नौ हो जाते हैं--संसार भरपूर हो गया; बाजार पूरा भर गया। फिर नौ से वापस एक हो जाता है। संसार को जी लिया, देख लिया, स्रोत की और वापस पहुंच गए, स्रोत उपलब्ध हो गया, एक से तीन, तीन से नौ, नौ से पुनः एक। नौ का मतलब है अनंत--यह सारा वस्तुओं का जगत है। तीन का अर्थ है, इस अनंतता का आधार। और एक, जहां सब माया खो गई, जहां सब दृश्य विलीन हो गए, जहां केवल द्रष्टा रह गया। वह द्रष्टा एक है। वह चौथा है।
इसलिए कबीर कहते हैं, राजस तामस सातिग तीन्यू--इन तीनों को ही--यह सब तेरी माया।
माया का अर्थ होता हैः जो दिखाई पड़ती है और है नहीं।
पूरब में हमने तीन विभाजन किए हैं। एक, जो दिखाई नहीं पड़ता और है--उसको
हम ब्रह्म कहते है। दो, जो दिखाई पड़ता है और नहीं है--उसको हम माया कहते हैं। वह सपने जैसी है। और तीन, वह जो उसे भी देखता है जो माया है, और उसे भी देखता है जो माया नहीं है--वह द्रष्टा है।

चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परमपद पाया। वही परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है जिसने चौथे को पहचान लिया। तीन को देखते-देखते धीरे- धीरे चौथे की पहचान आ जाती है।
ऐसा समझो कि तुम एक नाटक देखने गए होः जब तुम नाटक देखते हो तो तुम बिल्कुल ही भूल जाते हो कि तुम भी हो, नाटक ही रह जाता है। सिनेमा-गृह में बैठ-बैठ तुम्हें ख्याल ही नहीं रह जाता कि तुम हो। और अगर तुम्हें बार-बार ख्याल आए कि तुम हो, तो तुम समझते हो कि नाकट ढंग का नहीं है--दिल ही न लगा, लीनता ही न बली; करवटें, बदलते रहे कुर्सी पर बैठ कर; बार-बार मन होता रहा कि कब खत्म हो; तुम्हें अपनी याद आती रही; बेचैन रहे। नाटक की कुशलता ही यही है कि तुम अपने को बिल्कुल भूल जाओः देखने वाले को याद ही न रहे कि मैं हूं; जो दिखाई पड़ता है वही रह जाए। कुशल अभिनेता वही है जो द्रष्टा को बिल्कुल ही विस्मृत करवा दे, याद ही न रह जाए।
ऐसा कई बार होता है। फिल्म तुम दुखते हो, वहां कुछ भी नहीं है परदे पर, सिर्फ धूप-छाया का खेल है; लेनिक कोई घड़ी आ जाती है कि तुम सिसक-सिसक कर रोने लगते हो। वहां सिर्फ धूप-छाया है। पीछे भी कुछ नहीं है। एक प्रोजेक्टर लगा है, वह सिर्फ रोशनी फेंक रहा है, फिल्म के माध्यम से। परदे पर भी कुछ नहीं है, वह तुम भलीभांति जानते हो, क्योंकि जब तुम आए थे तो परदा खाली था। अब सब खेल रच गया है। अब कोई ऐसी घड़ी आ गई है जहां तुम बिल्कुल .जार-.जार हो जाते हो, रोने लगते हो। वह तो अच्छा है कि अंधेरा रहता है हाल में। सब अपने-अपने रुमाल निकाल कर आंसू पोंछते रहते हैं। अंधेरे की वजह से सुविधा होती है, अन्यथा अड़चन हो। अंधेरा होना जरूरी है, अन्यथा द्रष्टा का खोना मुश्किल हो जाए। अंधेरे के कारण द्रष्टा खो जाता है। अंधेरे के कारण है, अन्यथा द्रष्टा का खोना मुश्किल हो जाए। अंधेरे के कारण द्रष्टा खो जाता है। अंधेरे के कारण दृश्य उभर कर दिखाई पड़ता है।
कभी तुम हंसते हो, कभी तुम रोते हो, कभी तुम उदास हो जाते हो, कभी तुम प्रसन्न हो जाते हो--और तुम कभी सोच भी नहीं रहे कि वहां परदे पर कुछ भी नहीं है।
तीन का--सत्व, रज, तम या कहो इलेक्ट्रोन, न्युट्रान, प्रोट्रोन--यह जो सारा खेल है--जानने वालों ने जाना है कि यह एक बड़ा रंगमंच है, बड़ा गहन नाटक चल रहा है। तुम देखने वाले हो, पर तुम बिल्कुल खो गए हो, क्योंकि नाटक बड़ा कुशल है, होना भी चाहिए, क्योंकि उसका लिखने वाला भी परमात्मा है और उसको चलाने वाला भी परमात्मा है। सारा खेल बड़ी कुशलता से चल रहाहै। कुशलता ऐसी है कि तुम्हें बिल्कुल ही याद नहीं कि तुम हो। और नाटक साधारण ढंग का नहीं है।
जापान में एक नाटक होता है, या अभी अमरीका में एक नया नाटक शुरू हुआ है, वे उसको नो ड्रामा कहते हैं। उसका नाम ही है अ नाटक। और वह बढ़ रहा है और जोर से, अमेरिका का फैलेगा क्योंकि उसमें बड़ा रस है। और उस नाटक की खूबी यह है कि उसका संसार से कुछ संबंध है गहरा। नाटक ऐस है कि उसमें मंच नहीं होता और दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नहीं होते। अभिनेता दर्शकों के साथ ही बैठते हैं। फिर नाटक शुरू हो जाता है। उसमें दर्शक भी भाग लेत हैं। तुम्हें बीच में दिल आ गया, तुम बीच में पहुंच गए और तुमने कुछ-कुछ कहना शुरू किया। उसकी कहानी पहले से लिखी नहीं होती, डायलाग बंटे नहीं होते; कोई नहीं जानता कि क्या होगा। पर उसमें बड़ा रस है, क्योंकि अन-अपेक्षित हो सकता है। उसमें देखने वाले और नाटक करने वाले अलग-अलग नहीं होते। सब उसमें सहभागी होते हैं। और जो लोग उसमें भाग लेते हैं, उनको ज्यादा रस आता है, नाटक देखने के बजाय क्योंकि तुम भी भागीदार हो जाते हो। तुमको अगर रोना ही है तो आंखें छिपा कर रोने की जरूरत नहीं। तुम उठ कर बीच में पहुचं जाते हो, दिल खोल कर रोते हो। और तुम पूरे नाटक की धारा बदल देते हो, क्योंकि तुम्हारे रोने को भी सम्हालना पड़ता है कि वे जो अभिनेता हैं, कि... अब इनका क्या करो। इनको कुछ कहना पड़ता है--इनके कहने की वजह से पूरी कथा बदल जाती है, पूरी वार्ता बदल जाती है; जहां अंत होगा, कुछ पता नहीं; कहां प्रारंभ होगा, कुछ पता नहीं

यह नाटक संसार का ठीक प्रतीक है। यहां तुम देखने वाले अलग नहीं बैठे
हो कुर्सियों पर, और मंच पर नाटक नहीं चल रहा है। मंच पर चलता है नाटक, तुम कुर्सी पर बैवे रहते हो। वहां तुम भूल जाते हो, तो यहां तो तुम भूल ही जाओगे। यहां मंच ही मंच है; यहां कोई अलग नहीं है। यहां सब ही अभिनेता है और सभी देखनेवाले हैं।
भूलना बिल्कुल स्वाभाविक है। कुछ बुरा भी नहीं है कि भूल गए। लेकिन अगर याद आ जाए, अगर याद आ जाए कि जिन दुखों से तुम पीड़ित हो, चिंताओं से परेशान हो, तनावों से ग्रस्त हो--वे सब विलीन हो जाते हैं। अगर यह याद आ जाए कि तुम देखने वाले हो, करने वाले नहीं तब नाटक चलता रहेगा, तुम एक कोने में बैठ जाओगे और मुस्कुराओगे। तुम्हारी दशा वही होगी जो कबीर कहते हैंः गूंगे केरी सरकार, खाए और मुस्कुराय। तुम एक कोने में बैठ कर स्वाद लोगे अपना, क्योंकि वही मधुरतम है। और तुम हंसोगे लोगों पर कि नाहक परेशान हो रहे हैं, बहुत परेशान हो रहे हैं। तुम बैठोगे एक कोने में। यह बैठना ही संन्यास है। इस बैठने का कल इनता ही मतलब है। कि मुझे समझ आना शुरू हो गई कि कर्ता होने की कोई जरूरत नहीं है; मेरा स्वभाव द्रष्टा का है; मैंने तीन के पार चौथे को पहचान लिया है।
चौथा है तुम्हारे भीतर देखने वाला। इसलिए समस्त ध्यान की पद्धतियां चौथे को जगाने की पद्धतियां हैंः कैसे तुम जागरुक बनो; कैसे तुम ज्यादा से ज्यादा होश से भर जाओ; कैसे तुम्हारी मूर्च्छा और तंद्रा टूटे; कैसे तुम दृश्य से हटो और द्रष्टा में थिर हो जाओ।
चौथे पद को जे जन चीन्है, तिनहि परमपर पाया।
अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना। फिर न तो कोई प्रशंसा का सवाल है, न कोई निंदा का; न कोई आशा का, न कोई अपेक्षा का। जैसे ही तुम्हें द्रष्टा का बोध होना शुरू हुआ, स्तुति और निंदा व्यर्थ हो गई क्योंकि स्तुति और निंदा तो अभिनेता की अपेक्षा है। अभिनेता चाहता है कि तुम ताली बजाओ, स्तुति करे। अभिनेता चाहता है कि लोग निंदा न करें, क्योंकि अभिनेता का सारास रस इसमें है कि लोग क्या कहते हैं।
अभिनेता का अर्थ है कि कर्त्ता में इतना ज्यादा तादाम्य कर लिया है उसने कि उसके दृष्टा का उसे कुछ पता ही नहीं है। वह चाहता है कि यह लोग क्या कहते हैं। गंध उसके भीतर है--कस्तूरी कुंडल बसै; लेकिन उसकी भनक दूसरों की आंखों द्में देखना चाहता है। लोग प्रशंसा करें तो वह प्रसन्न है; लोग निंदा करें तो वह दुखी है। लेकिन जिसने द्रष्टा को पा लिया, उसके लिए तो न तो कोई अब स्तुति है, न कोई निंदा है। तुम उसकी निंदा करो तो वह दुखी नहीं; तुम उसकी स्तुति करे तो वह प्रसन्न नहीं। तुम फूल-मालाएं चढ़ाओ तो तुम उसके सुख को चढ़ाते नहीं; तुम उस पर गालियों की बौछार करो, तो तुम उसके सुख को घटाते नहीं। तुम क्या करते हो इससे अब उसको कोई संबंध न रहा। जब तक वह खुद कर्ता था तब तक तुम्हारे करने से संबंध था; अब वह द्रष्टा हो गया; अब तो तुम्हारे द्रष्टा से ही संबंध हो सकता है, तुम्हारे कर्ता से कोई संबंध नहीं हो सकता। क्योंकि हम जैसे होते हैं, वैसा ही हमारा संबंध होता है। वह तुम्हारे कर्तत्व के जगत से हट गया, पार हो गया। और ऐसे व्यक्ति की अब कोई आशा अपेक्षा नहीं, क्योंकि भविष्य नहीं है। वह परमात्मा से भी कुछ नहीं मांगता; उसकी मांग ही जाती रही। और वह अब कोई आशा भी नहीं रकता कि कल कुछ होने वाला है। सब जो बड़ा हो सकता था, वह अभी हो रहा है; जो अभी हो सकता है, वह हो ही रहा है। ऐसा नहीं है कि ऐसा आदमी निराश हो जाता है; निराश तो वे ही लोग होते हैं जिनकी आशा है।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना क्योंकि पश्चिम में ऐसी बहुत सी धारणाएं हैं कि पूरब के लोग इस तरह की बातों में उलझ कर निराश हो गए, पैसिमिस्ट हो गए। नहीं; निराश तो वही हो सकता है जिसकी आशा है। जिसकी कोई आशा ही नहीं उसको तुम निराश कैसे करोगे? उसकी प्रफुल्लता अक्षुण्ण रहेगी। उसकी प्रफुल्लता भिन्न होगी उस आदमी से जो आशा में जीता है। और उसके आनंद में एक तरह की उदासीनता होगी, लेकिन हताशा नहीं।
थोड़ा बारीक भेद है।

एक आदमी उदास बैठा है, क्योंकि जुंए में हार गया है--बड़ी आशा लगाई थी;
कि लाटरी हार गया--बड़ी आशा बांधी थी--उदास बैठा है। इसकी उदासी और एक व्यक्ति द्रष्टा को उपलब्ध हो गया है, वह भी उसी के पास बैठा है, वह भी एक तरह से उदास दिखाई पड़ेगा; उसका भी कोई रस संसार में नहीं दिखाई पड़ेगा। लेकिन दोनों की उदासी में बड़ा फर्क है। पहले की उदासी कामना की उदासी है। दूसरे की उदास निष्काम भाव की शांति है। उसमें उत्तेजना नहीं है। इसलिए उदासी मालूम होती है। वह कहीं भाग नहीं रहा है, इसलिए शांति से बैठा है। बुद्ध बैठे हैं, महावीर बैठे हैं--उनके बैठने में भी तुम्हें उदासी दिखाई पड़ सकती है, क्योंकि वे कहीं जा नहीं रहे हैं; सब जाना बंद हो गया। अब वे इतने शांत हैं कि तुम उनकी शांति को भी न पहचान सकोगे। उनकी शांति बड़ी गहन है। उस गहनता के कारण उदास मालूम पड़ती है।
तुमने कभी गहरा जल देखा है नदी का? जब नदी का जल बहुत गहरा होता है तो उदास मालूम पड़ता है। जब नदी छिछली होती है और कंकड़ पत्थरों पर से और चट्टानों पर से नदी की धार दौड़ती है तो बड़ी प्रफुल्ल मालूम होती है, बड़ा शोरगुल मचाती है; लेकिन शोरगुल हमेशा ही उथलेपन का सबूत है। जहां नदी सच में गहरी होती है, वहां जल नीला हो जाता है; लहर का भी पता नहीं चलता। नदी इतनी मंथर गति से चलती है कि तुम्हें पता भी नहीं चलता कि कोई गति है। वहां नदी उदास मालूम पड़ेगी; लगेगा कि कोई गीत नहीं, कोई नाच नहीं। जब भी कोई चीज बहुत गहन हो जाती है तो गीत भी बाधा मालूम पड़ता है। जब कोई चीज बहुत गहन हो जाती है तो शोरगुल क्या?
ज्ञानियों ने कहा है कि घड़ा जब अधभरा होता है तब आवाज होती है; जब पूरा
भर जाता है तो सब आवाज खो जाती है। आधा भरा धड़ा आवाज करता है। छिछलापन आवाज करता है।
इसलिए ज्ञानी में एक तरह की उदासी तुम्हें दिखाई पड़ेगी, जो उदासी नहीं है; जो उसकी बड़ी गहन अनुभूति के कारण सघन हो गई शांति है। वह इतना गहरा चला गया है कि सतह पर तुम्हें वे उदास मालूम पड़ेगा। उसका होना अब केंद्र पर है, परिधि पर नहीं।
"अस्तुति निंदा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना।"
ऐसी दशा में मान-अभिमान सब छूट जाते हैं।
मान और अभिमान में क्या फर्क है?
अभिमान को पहचान लेना बहुत आसान है; मान जरा सूक्ष्म बात है। अभिमान फूल जैसा है, मान सुगंध जैसा। मान को पकड़ने के लिए बड़ी गहरी आंख चाहिए। अभिमान बहुत साधारण है, जड़ है, स्थूल है; मान बहुत सूक्ष्म है।
ऐसा हुआ, एक रास्ते पर तीन ईसाई फकीर मिले--अलग-अलग संप्रदायोंए के मानने वाले, अलग-अलग आश्रमों में रहने वाले। एक ने अपने आश्रम की प्रशंसा में कहा कि इस बात को तो तुम्हें भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जैसे पंडित हमारे आश्रम में पैदा हुए हैं, वैसे पंडित तुम्हारे आश्रमों में पैदा नहीं हुए और जैसे शास्त्र हमारे आश्रम के संन्यासियों ने लिखे हैं और जैसी महान टीकाएं की हैं, वैसा तुम्हारे आश्रम में कुछ भी नहीं हुआ। उन दोनों ने कहा, यह बात सच है। इसे तो तुम्हारे दुश्मन भी स्वीकार करेंगे। हम भी स्वीकार करते हैं। दूसरे ने कहा, लेकिन इस बात को तुम्हें भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जैसे त्यागी हमने पैदा किए हैं, जैसे महान तपस्वी, वैसे तुम्हारे आश्रम में पैदा नहीं नहीं हुए; पंडित जरूर हुए हैं, लेकिन त्यागी नहीं।
बाकी दो ने स्वीकार किया कि यह बात सच है और इनकार नहीं की जा सकती। फिर दानों ने तीसरे से पूछा कि तुम्हारे संबंध में क्या कहना है, क्योंकि तुम्हारे संबंध में कुछ भी नहीं सुना गया--तुम्हारे आश्रम के न पंडितों की कोई वहां से खबर आई, न कभी बड़े महात्यागियों की खबर आई।
उस तीसरे ने कहा कि अगर तुम हमारी भी पूछते हो तो हमने ऐसे विनम्र आदमी पैदा किए हैं कि जिनको न पांडित्य का अभिमान है, और न जिन्हें त्याग का अभिमान है। वी आर टॉप इन ह्यूमिलिटी--हमारा कोई मुकाबला नहीं विनम्रता में। यह बड़ा सूक्ष्म है।

अहंकारी आदमी अभिमानी है। निरहंकार का जो दावा कर रहा है, वह मानी है।
जिसके पास धन है, वह अकड़ से चल रहा है सड़क पर, समझ में आता है--यह अभिमान है।
फिर यही आदमी कल लात मार देना है धन को, त्यागी हो जाता है, फिर अकड़ कर चलता है सड़क पर, क्योंकि यह कहाता है कि याद है, लाखों पर लात दी! अब यह मान है।
यह सूक्ष्म है।
संसारी अभिमानी हाता है; साधु, संन्यासी, त्यागी, मुनि हो जाते हैं।
उनकी चाल में तुम्हें मान दिखाई पड़ेगा। बड़ी सूक्ष्म है।
देखते हो संन्यासी को चलते हुए! उसके पास कुछ नहीं है, इसकी अकड़ है--सब छोड़ दिया, सब लत मार दिया! उसकी आंखों में एक झलक है कि "तुम क्षुद्र में उलझे हो, हम परमात्मा के खोजी हैं! तुम लोभी, कामी,; हम ध्यानी हैं।
यह मान है। और अगर मान है तो अभिमान छिपा है, कहीं गया नहीं; थोड़ा भीतर सरक गया है; और गहरे में चला गया है; जहर सूक्ष्म हो गया है। और जहर जितना सूक्ष्म हो जाता है उतना खतरनाक हो जाता है। इसलिए मैं अक्सर पाता हूं कि सांसारिक व्यक्ति को तो उसके अहंकार के प्रति जागना आसान है; तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों को उनके अहंकार के प्रति जगाना बहुत कठिन है। वह इतना सूक्ष्म है कि उनको खुद भी पकड़ में नहीं आता। उनको, ख्याल में नहीं है कि विनम्रता भी अहंकार हो सकती है।
जहां दावा है वहां अहंकार है।
कबीर कहते हैं, जिसने द्रष्टा को जाना--तजै मान अभिमाना।
"लोहा कंचन सम करि देखै--अब उेस लोहा और सोना समान ही दिखाई पड़ते हैं।
ते मूरति भगवाना--और ऐसा व्यक्ति स्वयं भगवान की मूर्ति हो जाता है। उसका द्वैत मिट गया, अच्छे-बुरे में फासला न रहा, संपत्ति-विपत्ति में भेद न रहा, मिट्टी-सोना बराबर हो गए। ते मरति भगवाना।
च्यंतै तो माधो च्यंतामणि--अगर वह सोचता है कभी, विचार करता है, तो परमात्मा का।
परमात्मा का कैसे विचार करोगे? न तो उसका कोई नाम है, न उसका कोई रूप है--इसलिए परमात्मा के विचार का अर्थ ही निर्विचार हो जाना होता है। क्योंकि परमात्मा का कैसे विचार करोगे? परमात्मा का विचार करते-करते ही अचानक आदमी को समझ में आता है कि विचार हो ही नहीं सकता; यहां तो सिर्फ निर्विचार होने का उपाय है। निर्विचार है परमात्मा का विचार।
"च्यंतै तो माधो च्यंतामणि--अगर वह सोचता है कभी तो सोचने के जगत में
जो चिंतामणि है, जो आखिरी बात है, वह माधव की, परमात्मा की याद करता है। "हरिपद रमै उदासा" और अगर रमता है कहीं तो परमात्मा के चरणों में रमता है; लेकिन उसके रमण में उदासी है। इसी उदासी की मैं बात कर रहा था। संसार को लगेगा यह आदमी उदास हो गया; और वह रम रहा है परमात्मा के चरणों में। "हरिपद रमै उदासा"--ऐसे भीतर उतर जाता है हरिपद में, ऐसे गहरे चला जाता
है कि बाहर से लगता है कि मौजूद ही न रहा, वह अनुपस्थित हो गया--उदास लगने लगता है।
वह उदासी भ्रांति है। लेकिन उस उदासी के कारण बड़ा उपद्रव पैदा हुआ।
कई लोगों ने समझा कि उदास होने से हरिपद मिल जाएगा। वे उदास बैठ गए। इसलिए उदासियों के संप्रदाय हैं--उदासी संप्रदाय। वे उदास होना सिखाते हैं। बैठे हैं बिना नहाए-धोए, मक्खियां उड़ रही हैं। मक्खियों को भी नहीं उड़ा रहे हैं, क्योंकि उदास आदमी हैं, क्या करें। हारे, थके-हारे, हताश बैठए हैं। यह तो मरना हो गया। यह कोई जिंदगी न हुई। और इससे कोई हरिपद मिलेगा, इस भ्रांति में मत पड़ना। लेकिन अक्सर धर्म के मार्ग पर यह कठिनाई होती है, क्योंकि लोग बाहर से पकड़ते हैं।
जिन्होंने हरिपद पाया, उनके जीवन में एक उदासी आती है। उदासी गहराई
से आती है। उनके चेहरे पर एक गहनता आ जाती है। वे गहरी नदी की भांति हो जाते हैं। चहल-पहल खो जाती है गति विलीन हो जाती है। वे ज्यादा से ज्यादा अपने से रमने लगते हैं। भीतर इतना आनंद है कि सारी जीवनधार भीतर की तरफ मुड़ जाती है; बाहर कोई बचता ही नहीं।
तो ऐसा भी हो सकता है कभी कि ऐसा व्यक्ति, जो नहीं जानते, उनका उदास मालूम पड़े। वह परम आनंद में लीन है; वही हरिपद में रमा है।

तो फिर कठिनाई है, दूसरे लोग सोच कर कि ऐसे उदास होने से हरिपद मिल
गया इस आदमी को, हम भी बैठ जाएं उदास होकर। उदास बैठने से हरिपद नहीं मिलता; हरिपद मिलने से बाहर के जगत में उदासी हो जाती है। हो ही जाएगी। जिसको हीरे मिल गए, वह कंकड़-पत्थर के प्रति उदास हो जाता है। वह कंकड़-पत्थरों को किसलिए सम्हाले फिरेगा, किसलिए ध्यान देगा? कल तक संभालता था, क्योंकि हीरों का उसे पता न था। अब हीरे मिल गए, कंकड़ पत्थर के प्रति उदासी हो गई। अब रस परमात्मा में लग गया तो संसार से विरस हो गया। यह स्वाभाविक है।
लेकिन इससे उलटी बात नहीं होती कि तुम संसार में विरस हो जाओ तो परमात्मा में रस मिल जाए, कि तुम कंकड़ पत्थर छोड़ दो तो हीरे मिल जाएं। हीरे मिल जाएं तो कंकड़ पत्थर छूट जाते हैं। लेकिन कंकड़ पत्थर छोड़ने से कैसे हीरे मिल जाएंगे? कंकड़ पत्थर छोड़ने से हीरे मिलने का क्या संबंध है? हीरे मिल जाए तो कंकड़ पत्थर की याद भूल जाती है।
"हरिपद रमै उदासा--बात खतम हुई। कंकड-पत्थर भूल गए।
छोटा बच्चा खेल रहा है अपने खिलौनों से। तुम और कीमती खिलौने ले आए, शानदार खिलौने ले आए। चलने वाला गड्डा ले आए कि दौड़ने वाली रेलगाड़ी ले आए-- वह फेंक देता है अपने पुराने खिलौंनो के बाहर। कल इन्हीं पर लड़ता, झगड़ता, अब इनकी कोई फिकर नहीं करता; चीर-फाड़ कर अलग कर देता है, टांग तोड़ कर भीतर देख लेता है कि क्या है--निपटारा कर दिया; अब अपने नये खिलौने में लग गया। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि यह बच्चा पुराने खिलौने छोड़ दे, फेंक दे, तो इसको नये खिलौने मिल जाएंगे--इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, इनकी कोई अनिवार्यता नहीं है।
संसार छोड़ने से नहीं परमात्मा मिलता; परमात्मा मिलने से संसार छूट जाता है। क्षुद्र छूट जाता है, विराट की झलक आने से।
तो बहुत लोग हैं जो उदास बैठे हैं। ये सिर्फ बीमार तरह के लोग हैं-- सुस्त काहिल। बुद्ध के बैठने में सुस्ती नहीं है, आलस्य नहीं है, काहिलता नहीं है। वासना चली गई, दौड़ चली गई; लेकिन ऊर्जा परिपूर्ण है। फिर अनेक बुद्धू बैठे हैं, वे बैठे हैं। वे सिर्फ सुस्त हैं। वे काहिल हैं; चलने तक की हिम्मत नहीं है, इच्छा नहीं है, उठने की भी नहीं--कोई भी नहीं।
उनकी हालत वैसी है कि मैंने सुना है, दो आदमी एक वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे। जामुन का वृक्ष था और एक पकी जामुन गिरी। तो एक आदमी ने कहा कि भाई बिल्कुल मेरे पास पड़ी है, तू जरा इसे उठा कर मेरे मुंह में डाल दे। उसने कहा, छोड़ो भी! तुम भी कोई साथी हो, कुत्ता मेरे कान में मूतता रहा और तुमने उसे नहीं भगाया।
ऐसे लोग उदासीन हो जाते हैं; ऊर्जा नहीं है, मरे-मरे जी रहे हैं। अगर
ये बैठ जाएंगे तो क्या परमात्मा मिल जाएगा? परमात्मा मिलता है विराट ऊर्जा से। जब तुम्हारी वासना सब तरफ से छूट जाती है--काम से, क्रोध से--तो तुम्हारे पास इतनी शक्ति होती है। क्योंकि, इनमें ही तुम्हारी शक्ति व्यय हो रही है। उसी शक्ति के पंखों पर चढ़ कर तुम परमात्मा की यात्रा करते हो। परमात्मा कोई सुस्ती से नहीं मिलता। वह कोई आलस्य और प्रमाद की घटना नहीं है। वह कोई बिस्तर में पड़े रहने से नहीं मिल जाएगा। अगर ऐसे वह मिलता होता तो काहिलों ने उसे कभी का पा लिया होता।
"च्यंतै तो माधो च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा।"
वह रमण है, वह परमात्मा के साथ रमण है। वह उसके आनंद-उत्सव में लीन हो जाना है। वह ऐसे ही है कि जैसे तुम खाना खाने बैठे थे, रूखी-सूखी रोटी थी और महल का निमंत्रै आ गया--तुमने थाली फेंक दी; तुमने कहा, बस काफी हुआ। तुम भागे महल की तरफ!
परमात्मा का निमंत्रण जब सुनाई पड़ता है, तुम्हारी ऊर्जा सारे संसार
से हट कर भीतर की तरफ बहने लगती है--अंतर्गमन शुरू होता है। इसलिए बाहर से तुम कभी-कभी उदास दिखाई पड़ सकते हो। वह उदासी नहीं है।
"त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ह्वै कहै कबीर सो दासा।।

और ऐसे क्षण में जब कोई परमात्मा में लीन हो जाता है तो तृष्णा अभिमान कैसे बच सकते हैं? जिसने परमात्मा की जरा सी झलक पाली, उसके मन में कोई भी तृष्णा कैसे बच सकती है। जिसने सब पा लिया, पाने को ही कुछ न बचा... । परमात्मा से ज्यादा पाने को कुछ ही भी नहीं।
इसे थोड़ा समझ लें, क्योंकि कबीर पहले कहते हैं कि कामना छूटे; जब कामना छूट जाए तो परमात्मा की झलक मिलती है। जब परमात्मा की झलक मिलती है, तब तृष्णा छूटती है। आमतौर से शब्दकोश में लिखा है कि कामना और तृष्णा का एक ही अर्थ है। वह नीहीं है; जीवन के अर्थकोश में भिन्न है।
तृष्णा बहुत सूक्ष्म है; तुम्हारे कुछ करने से न मिटेगी। तुम तृष्णा
को न मिटा पाओगे। तुम कामना को मिटा सकते हो; वह स्थूल है। लेकिन सूक्ष्म अंतर-तलों में तृष्णा बाकी रहेगी, तृष्णा का मतलब यह कि कामना मिट जाएगी, लेकिन कातना मिटा कर भी तुम इस कामना के टिने से कुछ पाने की बाट जोहते रहोगे--मोक्ष मिल जाए, परमात्मा मिल जाए। कहीं सूक्ष्म से सूक्ष्म तुम्हारे प्राणों में एक तरंग उठती ही रहेगी कि देखो अब कामना छोड़ दी, अब क्या मिलता है! और ज्ञानियों ने कहा है, कामना छोड़ दो, सब मिल जाएगा--अब जल्दी ही सब मिलने के करीब है! यह तृष्णा है।
लोग मुझसे पूछते हैं कि ठीक, आप कहते हैं सब चाह छोड़ दो, फिर क्या मिलेगा? या तो वे मुझे नहीं समझे कि मैं के कह रहा हूं--सब चाह छोड़ दी, सब में यह चाह भी आगई। नहीं आई? वे समझ गए मेरी बात; लेकिन वे भी क्या करें, तृष्णा बहुत सूक्ष्म है। वह नहीं आई सब चाह में। शब्द सुन लिया उन्होंने। उनकी भी समझ में आ रहा है कि मैं कह रहा हूं कि सब चाह छोड़ दो। वे कहते हैं, सब चाह छोड़ कर क्या मिलेगा? ठीक है, आपक कहते हैं कि वासना-रहित हो जाओ, हो गए फिर? वह जो "फिर" है, वह तृष्णा है। वह आखिरी सूक्ष्मतम बीज है। वह निर्विचार की दशा तक पतंजलि कहते हैं, वह बना रहेगा। निर्विचार समाधि में भी तृष्णा का बीज बना रहेगा। और जब तृष्णा का बीज जलेगा तभ निर्बीज समाधि, अंतिम समाधि उपलब्ध होगी।
कामना छोड़ी जा सकती है--स्थूल है, बाहर की है। छोड़ो। जब तुम सब छोड़ दोगे, कुछ छोड़ने को न बचेगा; सिर्फ एक् भाव का कंपन रह जाएग कि सब छोड़ दिया, अब? यह तृष्णा है। कामना छोड़ने से परमात्मा की झलक मिलेगी; परमात्मा की झलक मिलने से तृष्णा छूटेगी।
और वैसा ही अभिमान छोड़ दोगे; लेकिन फिर भी "मैं हूं" यह भाव तो रहेगा। अभिमान छोड़ दोगे, मान छोड़ दोगे, "मैं कौन हूं" यह भाव छोड़ दोगे; लेकिन "मैं हूं" यह भाव तो बना ही रहेगा। जब परमात्मा की झलक मिलेगी तो यह भाव भी मिटेगा। अहंकार को तुम छोड़ दोगे, आत्मा का भाव बना रहेगा; और जब परमात्मा की झलक मिलेगी तो आत्मा का भाव भी मिट जाएगा। तब बूंद पूरी तरह सागर में लीन हो गई। "त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ह्वै कहै कबीर सो दासा।।
कबीर कहते हैं, वही दास है; परमात्मा के चरणोंाके उपलब्ध हो गया।
यात्रा कठिन है। दस चलते हैं, एक पहुंच पाता है। तुम उस एक को बनने की कोशिश करना। नौ बनना बहुत आसान है। तुम एक बनने की कोशिश करना। और अगर स्मरणपूर्वक चलो तो कोई कारण नहीं है कि तुम क्यों होओ वह एक जो पहुंच जाता है। तुम भी वह एक हो सकते हो--पूरी संभावना है; होशपूर्वक चलने की बात है। पच्चीस निमंत्रण मिलेंगे बीच तें यहां-वहां जाने के, तुम इनकार कर देना। तुम अपना ध्यान एक ही बात पर रखना कि हरिपद तक पहुंच जाना है।
और आखिरी बात तुमसे आज के पद में कहूं--तुम्हें हरिपद तक पहुंचना है;
फिर तो हरि खुद ही तुम्हें छाती से लगा लेते हैं। उसके आगे तुम्हें नहीं पहुंचना है--बात खत्म हो गई; तुम्हारी यात्रा पूरी हो गई। तुम जो कर सकते गए, कर दिया। इससे ज्यादा तुमसे अपेक्षा भी नहीं हो सकती। इसलिए कबीर कहते हैं कि हरि का दस हो जाने तक ही यात्रा है--"कहे कबीर सो दासा।" इसके बात तुम्हें फिर फिकर करने की बात नहीं है; अब जिम उसका है। और जिसने उसके चरणों तक पहुंचने की यात्रा की, वह निश्चित ही उठा कर आलिंगन कर लिया जाएगा। वह परमात्मा के हृदय में लीन हो जाएगा।
पद तक तुम पहुंचो; हृदय तक परमात्मा तुम्हें उठा लेगा। आधी यात्रा तुम करो, आधी वह करेगा।

और स्मरण रखना कि परमात्मा कोई निष्क्रिय तत्व नहीं है। तुम अगर उसकी तरफ चलते हो, तो वह भी तुम्हारी तरफ चलता है। कहीं बीच में मिलन हो जात है।
तुम नहीं चलते, वह भी नहीं चलता। तुम जब पुकारते हो तो पुकार सुनी जाती है। जब तुम प्रार्थना से भरते हो तो प्रार्थना भी सुनी जाती है। तुम जब सचमुच ही अभीप्सा से भर जाते हो तो परमात्मा भी तुम्हारे प्रति इतनी ही अभीप्सा से भर जात है।
परमात्मा कोई निष्क्रिय तत्व नहीं है कि तुम्हीं को ही यात्रा करनी है। अगर ऐसा होता तो जिंदगी बड़ी आखिरी अर्थों में उदास होती।
परमात्मा प्रेमी है। जब तुम प्रेम से भर कर उसकी तरफ चलते हो, वह तुम्हारी तरफ चलना शुरू कर देता है। बहुत पुरानी कहावत है चीन में कि "तुम एक कदम चलो, वह हजार कदम चलता है।"
बस, हरि के पद तक तुम पहुंच जाओ। और तुम पहुंच सकते हो क्योंकि दूर नहीं है पद; तुम्हारे हृदय में विराजमान है। और कई बार तुम्हें उनकी भनक भी पड़ी है। लेकिन सदा तुमने बाहर समझा कि कहीं बाहर से आवाज आ रही है। आवाज भीतर से आ रही है। आनंद का झरना भीतर से बह रहा है।
"कस्तूरी कुंडल बसै।"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
दूसरा प्रवचन

धर्म कला है--मृत्यु की, अमृत की

सूत्रे

जग सूं प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।।
एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा।
इन पै जो न बंधावई, ताका मैं बंदा।।
देह धरै इन मांहि बास, कहु कैसे छूटै।
सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।।
एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।
प्रेम मगन लौलीन मन, सो बहुरि न आया।।
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।
संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।।

कबीर के वचनों के पूर्व कुछ बातें समझ लें।
पहली बातः संसार, जिसे छोड़ने को सारे संत कहते रहते हैं, बाहर नहीं है, जिसे छोड़ कर कोई भाग सके। संसार मन का ही खेल है, और भीतर है। और बाहर तुम कितने ही भागो, कोई फर्क न पड़ेगा; क्योंकि संसार तुम अपना अपने भीतर ही लिए फिरते हो।
संसार जीवन को देखने का तुम्हारा ढंग है। ज्ञानी यहीं पत्थरों में छिपे परमात्मा को देख लेता है; तुम चारों तरफ मौजूद परमात्मा में केवल पत्थर को देख पाते हो। देखने की बात है। दृष्टि की ही सारी बात है। तुम वही देखते हो, जो तुम्हारे मन की धारणाएं हैं। तुम वही नहीं देखते, जो है। पूर्णिमा की रात हो और तुम उदास हो, तो नाचता-गाता चांद भी उदास मालूम पड़ता है। अमावस की रात हो, आकाश में बादल घिरे हों, सब उदास और खिन्न मालूम पड़ता हो; लेकिन तुम प्रसन्न हो, तुम आनंदमग्न हो, तो अमावस भी पूर्णिमा मालूम पड़ती है, अंधेरा भी ज्योतिर्मय हो जाता है; आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट सुमधुर नाद मालूम होती है।
तुम जो हो, उसे ही तुम फैला कर बाहर देखते हो!
धन में कुछ भी नहीं है; तुम्हारे मन में ही सब छिपा है। तुम्हारा मन जो लोभ से भरा हो, तो संसार में सब जगह तुम्हें धन ही धन दिखाई पड़ता है--ऐसे ही जैसे उपवास किया हो तुमने किसी दिन और तुम बाजार गए, तो कपड़े की दुकानें, जूते की दुकानें उस दिन दिखाई नहीं पड़तीं; उस दिन सिर्फ मिठाई मिष्ठान्न के भंडार दिखाई पड़ते हैं; सब तरफ से भोजन की ही गंध मालूम पड़ती है; सब ओर भोजन का ही निमंत्रण दिखाई पड़ता है। तुम भरे पेट हो, तब यही बाजार बदल जाता है।
तुम जैसे हो वैसा ही तुम अपने चारों तरफ एक संसार निर्मित करते हो। इसलिए संसार एक नहीं है; संसार उतने ही हैं, जितने मन हैं। हर व्यक्ति का अपना संसार है, जो अपने चारों तरफ लपेटे हुए घूमता है। और जब तक तुम यह न समझोगे, तब तक तुम कभी भी संन्यासी न हो सकोगे। क्योंकि तुम उस संसार को छोड़ोगे, जो बाहर है; और तुम उस संसार को पकड़े ही रहोगे, जो भीतर है। और बाहर संसार है ही नहीं, बस भीतर है। तो तुम संन्यासी का संसार बना लोगे, कोई भेद न पड़ेगा। हिमालय की गुफा में भी बैठ जाओगे, तो तुम तुम ही रहोगे। और तुम अगर तुम ही हो, तो गुफा क्या करेगी, पहाड़-पर्वत क्या करेंगे? तुम वहां भी धीरे-धीरे अपनी दुनिया फिर से सजा लोगे। तुम्हारे भीतर ब्लू-प्रिंट है, नक्शा छिपा है कि कैसे संसार बनाना है। उस संसार को बनाने के लिए अगर कोई भी सामग्री न हो, तो भी तुम बना लोगे।
मनस्विद कहते हैं कि अगर एक व्यक्ति को सारी संसारी की दौड़-धूप से अलग
कर लिया जाए, और एक ऐसी कालकोठरी में रख दिया जाए, जहां सब तरह की सुविधाएं हैं, कोई असुविधा नहीं है; भोजन करने के जिए भी उसे कुछ न करना पड़े, नलियां

जुड़ी हुई हैं, जिनसे उसके रक्त में सीधा भोजन पहुंच जाएगा--इस तरह के प्रयोग किए गए हैं--और जितनी सुविधापूर्ण हो सके, उतनी सुविधापूर्ण शय्या पर वह विश्राम करता रहे, तो वे कहते हैं कि तीन दिन के बाद वह अपना संसार बचाना शुरू कर देता है। अब कल्पना में बनाता है, क्योंकि बाहर तो कुछ भी नहीं है, सिर्फ अंधकार से भरी हुई कोठरी है। धीरे-धीरे उसके ओंठ चलने लगते हैं। वह बात करने लगता है उससे, जो मौजूद नहीं है। सुंदर स्त्रियां उसे घेर लेती हैं। धन के आंकड़े वह खड़े करने लगता है। तीन सप्ताह में वह आदमी पागल हो जाता है।
पागल का कुल इतना ही मतलब है कि जिसने अपने संसार को बनाने के लिए अब किसी भी पदार्थ की जरूरत नहीं समझी; अब बिना किसी कारण के भी वह संसार खड़ा कर लेता है। स्त्री बाहर हो तो ठीक, न हो तो ठीक--अब पर्दे की कोई जरूरत ही नहीं है; बिना पर्दे के वह स्त्री का बना लेता है। पागल का इतना ही मतलब है कि वह तुमसे भी ज्यादा कुशल हो गया है। तुम्हें स्त्री में रस लेने के लिए कम से कम कुछ सहारा चाहिए, बाहर कोई स्त्री चाहिए; वह बिल्कुल सहारे से मुक्त है; उसे कोई स्त्री बाहर नहीं चाहिए। वह अपने भीतर के मन से प्रगाढ़ प्रतिमाएं खड़ी कर लेता है।
तुमने ऋषि-मुनियों की कहानियां पढ़ी हैं कि इंद्र अप्सराओं को भेजता
है उन्हें डिगाने को। तुम इस भ्रांति में मत पड़ना। न तो कहीं कोई इंद्र है, और न कहीं कोई परमात्मा ने ऋषि-मुनियों को डिगाने का इंतजाम कर रखा है। क्यों करेगा परमात्मा किसी को डिगाने का इंतजाम? परमात्मा तो चाहता है कि तुम थिर हो जाओ। तो कोई भी डिपार्टमेंट नहीं है, जहां ऋषि-मुनियों को हिलाने की कोशिश की जा रही है। ऋषि-मुनि खुद ही हिल रहे हैं। ऋषि-मुनि उसी अवस्था में हैं, जिसकी मनोवैज्ञानिक चर्चा कर रहे हैं। उन्होंने खुद ही अपने चारों तरफ सब संसार बाहर का छोड़ दिया है, अपनी गुफा में बैठ गए हैं, अब धीरे-धीरे मन खेल पैदा कर रहा है। अब कोई जरूरत ही नहीं है। अब बाहर की स्त्री नहीं चाहिए, जिस पर तुम प्रक्षेपण करो; अब शून्य आकाश में भी तुम्हारा प्रक्षेपण होने लगा। अब तुम अप्सराओं को देख रहे हो! धन के अंबार लगे हैं! तुम सोचते हो, कोई प्रलोभन दे रहा है; तुम्हारा मन ही... । कोई और तुम्हें डिगाने को नहीं है।
यह तो पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि संसार भीतर है; अन्यथा तुम वही भूल करोगे, जो संसारी कर रहा है। संसारी भी सोचता है कि संसार बाहर है, और संन्यासी भी सोचता है कि संसार बाहर है--तो दोनों के ज्ञान में फर्क क्या? तो दोनों की समझ में कौन सा बुनियादी रूपांतरण हुआ? संसारी भी धन बाहर देखता है और संन्यासी भी धन बाहर देखता है--तो दोनों एक ही तल पर हैं; कोई क्रांति घटित नहीं हुई; कोई बोध नहीं जगा; कोई ध्यान का आविर्भाव नहीं हुआ।
पहली क्रांति इस सत्य को देखने में है कि संसार मेरे भीतर है। जैसे ही तुम यह सत्य समझ लोगे तो पाओगे कि संसार मेरे भीतर है; बाहर तो केवल सहारे हैं, खूंटियां हैं, जिन पर हम अपने कोटों को टांग देते हैं। कोट हमारे हैं; खूंटियों का कोई कसूर नहीं है। और खूंटियों ने कभी कहा नहीं कि कोट टांगो। और एक खूंटी पर न टांगेंगे तो दूसरी खूंटी पर टांगेंगे। खूंटी नहीं मिलेगी तो दरवाजे पर ही टांग देंगे। कुछ भी नहीं होगा तो अपने कंधे पर ही रखेंगे। कोट तुम्हारा है।
इसलिए कबीर जैसे संत जब बात करते हैं--"जंग सूं प्रीत न कीजिए"-- भ्रांति में मत पड़ जाना, क्योंकि कबीरपंथी उसी भ्रांति में पड़े हैं। वे सोचते हैं कि जग बाहर है, उससे प्रेम नहीं करना है। जग भीतर है; तुम्हारे ही मन का हिस्सा है। कुछ और नहीं छोड़ना है, बस मन को छोड़ना है। कुछ और नहीं त्यागना है, बस मन को त्यागना है। और हर आदमी का अपना मन है। इसलिए तो दो आदमियों का मिलना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। जब भी दो आदमी करीब आते हैं, तो दो संसार टकराते हैं। मित्रता बड़ी मुश्किल है। प्रेम असंभव जैसा है। इसलिए तो हर प्रेम-प्रेयसी कलह में पड़े रहते हैं। पति-पत्नी लड़ते ही रहते हैं। कारण क्या होगा? दोनों ने चाहा था कि साथ रहें; दोनों ने बड़ी आशाएं

बांधी थीं, बड़े सपने संजोए थे। फिर सब बिखर जाता है। सब इंद्रधनुष टूट जाते हैं। सब सपने धूल में गिर जाते हैं, और कलह हाथ में रह जाती है।
दो दुनियाएं हैं। जहां दो व्यक्ति मिलते हैं, वहां दो संसार मिलते हैं। और जब दो संसार करीब आते हैं, तो उपद्रव होता है; क्योंकि दोनों भिन्न हैं।
ऐसा हुआ, मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर बैठा था। उसका छोटा बच्चा--रमजान उसका नाम है, घर के लोग उसे रमजू कहते हैं--वह इतिहास की किताब पढ़ रहा था। अचानक उसने आंख उठाई और अपने पिता से कहा, "पापा, युद्धों का वर्णन है इतिहास में... युद्ध शुरू कैसे होते हैं?"
पिता ने कहाः "समझो कि पाकिस्तान हिंदुस्तान पर हमला कर दे। मान लो...
।"
इतना बोलना था कि चौके से पत्नी ने कहाः "यह बात गलत है। पाकिस्तान कभी हिंदुस्तान पर हमला नहीं कर सकता और न कभी पाकिस्तान ने हिंदुस्तान पर हमला करना चाहा है। पाकिस्तान तो एक शांत इस्लामी देश है। तुम बात गलत कह रहे हो।"
मुल्ला थोड़ा चौंका। उसने कहा कि मैं कह रहा हूं, सिर्फ समझ लो। सपोज...
। मैं कोई यह नहीं कह रहा हूं कि युद्ध हो रहा है और पाकिस्तान ने हमला कर दिया है; मैं तो सिर्फ समझाने के लिए कह रहा हूं कि मान लो... ।
पत्नी ने कहाः "जो बात हो ही नहीं सकती, उसे मानो क्यों? तुम गलत राजनीति बच्चे के मन में डाल रहे हो। तुम पहले से ही पाकिस्तान-विरोधी हो, और इस्लाम से ही तुम्हारा मन तालमेल नहीं खाता। तुम ठीक मुसलमान नहीं हो। और तुम लड़के के मन में राजनीति डाल रहे हो, और गलत राजनीति डाल रहे हो। यह मैं न होने दूंगी।"
वह रोटी बना रही थी, अपना बेलन लिए बाहर निकल आई। उसे बेलन लिए देखकर मुल्ला ने अपना डंडा उठा लिया। उस छोटे बच्चे ने कहा, "पापा रुको, मैं समझ गया कि युद्ध कैसे शुरू करते हैं। अब कुछ और समझाने की जरूरत नहीं है।" जहां दो व्यक्ति हैं, जैसे ही उनका करीब आना शुरू हुआ कि युद्ध की संभावना शुरू हो गई। दो संसार हैं; उनके अलग-अलग सोचने के ढंग हैं; अलग-अलग देखने के ढंग हैं; अलग उनकी धारणाएं हैं; अलग परिवेश में वे पले हैं; अलग-अलग लोगों ने उन्हें निर्मित किया है; अलग-अलग उनके धर्म हैं, अलग-अलग राजनीति है; अलग-अलग मन हैं--सार-संक्षिप्त। और जहां अलग-अलग मन हैं, वहां प्रेम संभव नहीं--वहां कलह ही संभव है।
मन कलह का सूत्र है। इसलिए तो संसार में इतनी कठिनाई है--प्रेमी खोजने में। मित्र खोजना असंभव मालूम होता है। मित्र में भी छिपे हुए शत्रु मिलते हैं। और प्रेमी में भी कलह की ही शुरूआत होती है।
दो संसार कभी भी शांति से नहीं रह सकते।
उसका कारण?
एक संसार भी अपने भीतर कभी शांति से नहीं रह सकता; दो मिलकर अशांति दुगुनी हो जाती है।
तुम अकेले भी कहां शांत हो? तुम्हारा मन वहां भी अशांति पैदा किए हुए है। फिर जब दोनों मिलते हैं तो अशांति दुगुनी हो जाती है।
जितनी ज्यादा भीड़ होती जाती है उतनी अशांति सघन होती जाती है, क्योंकि उतने ही कलह में पड़ जाते हैं।
जिस दिन तुम इस सत्य को देख पाओगे कि तुम्हारा संसार तुम्हारे भीतर है, और तुम उसी संसार के आधार पर बाहर की खूंटियों पर संसार निर्मित कर रहे हो, इसलिए सवाल बाहर के संसार को छोड़ कर भाग जाने का नहीं है; भीतर के संसार को छोड़ देने का है--तब तुम कहीं भी रहो, तुम जहां भी होओगे, तुम वहीं संन्यस्थ हो। तुम कैसे भी रहो--महल में या झोपड़ी में, बाजार में या आश्रम में, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारे भीतर से जो भ्रांति का सूत्र था, वह हट गया।
इसलिए जब जग को छोड़ने की बात कही है, तो समझ लेना, किस जग को छोड़ने की; अन्यथा नासमझ बाहर के जग को छोड़कर भागे फिरते हैं; और खुद को साथ लिए रहते

हैं। खुद को ही छोड़ना है; कुछ और यहां छोड़ने योग्य नहीं। बस खुद को ही त्यागना है; कुछ और यहां त्यागने योग्य नहीं।
इन प्रतीकों के कारण बड़ी उलझन पैदा होती है, क्योंकि कबीर कहते हैं, "एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा।" तो शब्द तो साफ हैं और लगता है स्त्री को छोड़ कर भाग जाओ--कामिनी; धन को छोड़ दो--कनक। स्वर्ण को छोड़ दो, धन को छोड़ दो, पत्नी को छोड़ दो, ब्रह्म उपलब्ध हो जाएगा। काश, इतना आसान होता, तो भगोड़े कभी के परम पद को पा गए होते! इतना आसान नहीं है।
कामिनी को छोड़ने का सवाल नहीं है, काम को छोड़ने का सवाल है। कामिनी तो खूंटी है। तो कबीर प्रतीक की बात कर रहे हैं। और कोई रास्ता नहीं है; प्रतीक, मेटाफर से ही बोला जा सकता है।
कबीर कह रहे हैं, कामिनी को छोड़ दो--इसका अर्थ होता है, कि जैसे ही काम छूटा तुम्हारे लिए कोई कामिनी न रही। जब तक काम है, कामिनी रहेगी। कामिनी नहीं है वहां; तुम्हारा काम ही कामिनी को निर्मित करता है। सोना थोड़े तुम्हें पकड़े हुए है; तुम्हारा लोभ है। सोने को छोड़ने से क्या होगा, अगर लोभ भीतर है? तुम कुछ और पकड़ लोगे। जब तक पकड़ने की आकांक्षा भीतर है, तब तक तुम एक चीज को छोड़ोगे, दूसरी चीज पकड़ोगे; मुट्ठी खुलेगी, बंधेगी, लेकिन खुली न रहेगी। धन तुम छोड़ दो, लेकिन पकड़ किसी और चीज पर बैठ जाएगी। तो ऐसा भी हो सकता है कि तुम महल छोड़ दो और लंगोटी पकड़ लो, और लंगोटी छोड़ना मुश्किल हो जाए।
कथा है कि जनक के घर एक संन्यासी मेहमान हुआ और संन्यासी ने सब वैभव देखा, विस्तार देखा, उसने कहा कि मैंने तो सुना था कि आप परम ज्ञानी हैं; यह वैभव-विस्तार, यह कनक-कामिनी--यह कैसा ज्ञान?
जनक ने कहाः "समय पर कहूंगा। थोड़ी प्रतीक्षा रखो, जल्दी न करो।"
दूसरे दिन ही सुबह समय आ गया। आ नहीं गया, जनक ले आए, स्थिति निर्मित
कर दी। लेकिन संन्यासी को गए, महल के पीछे ही नदी थी, स्नान करने को। और जब दोनों स्नान कर रहे थे नदी में, तब अचानक महल में आग लग गई; लगवा दी गई थी, लग नहीं गई थी। क्योंकि संन्यासी का कोई भरोसा नहीं था; वह इतनी जल्दबाजी में था और वह इतना बेचैन था महल से भागने को, भयभीत था कि कहीं महल में फंस न जाए। कनक और कामिनी--सब वहां मौजूद--तो जल्दी करनी जरूरी थी। जनक ने आज्ञा से महल में आग लगवा दी। दोनों स्नान कर रहे हैं। संन्यासी चिल्लाया कि "देखो, तुम्हारे महल में आग लग गई!"
जनक ने कहाः "क्या अपना है, क्या किसका है! आए थे कुछ लेकर नहीं, जाएंगे बिना कुछ लिए! खाली हाथ आना, खाली हाथ जाना! किसका महल है! लगने दो, चिंता न करो। स्नान पूरा करो।"
लेकिन यह सुनने को वह संन्यासी वहां मौजूद न था; वह लंगोटी छोड़ आया था किनारे पर, वह महल के पास ही थी। वह भागा। उसने कहा कि महल तो ठीक, मेरी लंगोटी भी महल के पास रखी है, दीवाल के बिल्कुल पास।
महल और लंगोटी में कोई फर्क नहीं है--तुम्हारे लोभ के लिए कोई भी खूंटी बन सकता है। तुम बड़ी छोटी खूंटी पर, बड़े विराट लोभ को लटका सकते हो। क्योंकि लोभ का कोई वजन थोड़े ही है; विस्तार है, और सपने का है, खाली हवा है। तो खूंटी कोई बहुत बड़ी चाहिए, ऐसा नहीं है; खीली भी, तीली भी काम दे जाएगी। लोभ में कोई वजन नहीं है, बिना खूंटी के लटक जाएगा।
तो जब कबीर कनक और कामिनी की बात करें तो समझना कि उनका प्रयोजन क्या है। कबीर कोई पंडित नहीं हैं कि गलती कर रहे हों; कबीर परम ज्ञानी हैं। ये प्रतीक हैं। वे यह कह रहे हैं कि कामिनी तो पैदा होती है काम से। तुम्हारा काम ही किसी स्त्री को खूंटी बना लेता है। और जब तुम्हारे काम की ऊर्जा किसी स्त्री पर खूंटी की तरह टंग जाती है, तब अचानक तुम पाते हो, इस स्त्री से सुंदर स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। कल तक भी यही स्त्री थी। अनेक बार रास्ते पर तुमने इसे देखा था; तुम्हारे भीतर कोई भनक भी न पड़ी थी। यह स्त्री बहुत बार निकली थी, तुम्हारा ध्यान भी आकर्षित न हुआ था। एक हवा का छोटा सा झोंका भी इस स्त्री की तरफ न बहा था। आज अचानक क्या हो गया कि यह स्त्री परम सुंदर हो गई? और दूसरे अब भी हंस रहे होंगे कि तुम किस स्त्री के चक्कर में पड़ गए हो; कुछ भी वहां नहीं रखा है।

मजनू को उसके नगर के राजा ने बुला कर कहा था कि तू बिल्कुल पागल है। लैला कुरूप है। (लैला सच में काली-कलूटी थी।) तू बिल्कुल पागल हो गया है। नाहक चिल्लाता फिरता है लैला! लैला!
राजा को भी दया आ गई थी, तो उसने महल के बाहर सुंदर युवतियां सामने खड़ी करवा दीं। उसने कहा, तू कोई भी चुन ले। महल की सुंदर युवतियां थी, निश्चित सुंदर थीं; लेकिन मजनू ने आंख उठा कर भी न देखा। उसने कहा, "मुझे सिवाय लैला के और कोई दिखाई ही नहीं पड़ता। और आप शायद ठीक कहते होंगे कि आपको लैला काली-कलूटी दिखाई पड़ती है।"
असल में मजनू ने बड़े सार की बात कही कि लैला को देखना हो तो मजनू की आंख चाहिए।
जब तुम काम की आंख से किसी स्त्री की तरफ देखते हो, तब अपूर्व सौंदर्य
की वर्षा हो जाती है; तब तुम्हें कुछ दिखाई पड़ने लगता है जो वहां नहीं है। यही संसार है। तब तुम्हें वहां कुछ दिखाई पड़ने लगता है जो वहां कभी भी नहीं था; तुमने ही डाल दिया, तुम्हारे काम ने ही कामिनी को निर्मित कर लिया।
जब तुम सोने पर नजर डालते हो, तो सोने में क्या है? क्या हो सकता है? ऐसी जातियां हैं जिनमें सोने का कोई मूल्य नहीं रहा है। आदिम जातियां हैं कुछ अभी भी। अफ्रीका के कुछ कबीले हैं जिनमें सोने का कोई मूल्य नहीं है। सोने की डली पड़ी रहे, उस कबीले को कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कोई मूल्य ही नहीं है, तो बात खतम हो गई। मूल्य तो हम डालते हैं। लेकिन तुम्हें सोना दिखाई पड़ जाए तो प्राणों की बाजी लगा दोगे। कुछ सोने में है या तुम्हारा लोभ खूंटी बनाता है।
लोभ से सोना निर्मित होता है, सोने से लोभ नहीं। काम से कामिनी निर्मित होती है, कामिनी से काम नहीं।
उलटे मत चलना, नहीं तो भटक जाओगे। बहुत भटक गए हैं। इसलिए बार-बार इसको दोहराता हूं। बहुत हैं जो स्त्रियों को छोड़कर भाग रहे हैं। बेचारी स्त्री का कोई कसूर नहीं है। बहुत हैं जो सोने को छोड़ कर भाग रहे हैं। सोने ने किसी का कभी कुछ बिगाड़ा नहीं। सोना बिगाड़ेगा भी क्या? सोने की सामर्थ्य क्या है?
और जो बात स्त्री के संबंध में लागू है, वही पुरुष के संबंध में लागू है। स्त्री की कामवासना ही पुरुष को पुरुषोत्तम बना लेती है। जैसे ही स्त्री की कामवासना किसी पुरुष के आस-पास खड़ी होती है, रूपांतरण हो जाता है। अब उसका सपना है वहां। इसलिए बड़ी कठिनाई होती है जीवन में। तुम अपना सपना एक स्त्री पर ढाल देते हो, स्त्री अपना सपना तुम पर ढाल देती है। न तुम उसके सपने हो, न वह तुम्हारा सपना है। अड़चन आएगी, क्योंकि तुम अपेक्षा करोगे कि वह तुम्हारा सपना पूरा करे। वह अपेक्षा करेगी कि तुम उसका सपना पूरा करो। और जल्दी ही असलियत जाहिर होनी शुरू हो जाएगी, क्योंकि असलियत किसी का सपना नहीं मानती। असलियत को तुम्हारे सपने से लेना-देना क्या है? तुम जब किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो तो तुम कहते हो--"स्वर्ण-काया! सोने की देह! स्वर्ग की सुगंध!" तुम्हारे कहने से कुछ फर्क न पड़ेगा। गर्मी के दिन करीब आ रहे हैं--पसीना बहेगा, स्त्री के शरीर से भी दुर्गंध उठेगी। तब तुम लाख कहो--"स्वर्ग की सुगंध," तुम्हारे सपने को तोड़ कर भी पसीने की बास ऊपर आएगी। तब तुम मुश्किल में पड़ोगे कि धोखा हो गया। और शायद तुम यह कहोगे, इस स्त्री ने धोखा दे दिया। क्योंकि मन हमेशा दूसरे पर दायित्व डालता है, कहेगा, यह स्त्री इतनी सुंदर न थी जितना इसने ढंग-ढौंग बना रखा था। यह स्त्री इतनी स्वर्ण-काया की न थी जितना इसने ऊपर से रंग-रोगन कर रखा था। वह सब सजावट थी,शृंगार था--भटक गए, भूल में पड़ गए।
स्त्री भी धीरे-धीरे पाएगी कि तुम साधारण पुरुष हो और जो उसने देवता देख लिया था तुममें, वह जैसे-जैसे खिसकेगा, वैसे-वैसे पीड़ा और अड़चन शुरू होगी। और वह भी तुम पर ही दोष फेंकेगी कि जरूर तुमने ही कुछ धोखा दिया है, प्रवंचना की है। और जब ये दो प्रवंचनाएं प्रतीत होंगी कि एक-दूसरे के द्वारा की गई हैं तो कलह, संघर्ष, वैमनस्य, शत्रुता खड़ी होगी। तुम्हारा मन किसी और स्त्री की तरफ डोलने लगेगा। तुम नई खूंटी तलाश करोगे। स्त्री का

मन किसी और पुरुष की तरफ डोलने लगेगा। वह किसी नई खूंटी तलाश करेगी। और इसी तरह तुम जन्मों-जन्मों से करते रहे हो। लाखों खूंटियों पर तुमने सपना डाला। लाखों खूंटियों पर तुमने अपनी वासना टांगी। लेकिन अब तक तुम जागे नहीं और तुम यह न देख पाए कि सवाल खूंटी का नहीं है; सवाल कामिनी का नहीं है; काम का है। यह तुम्हारा ही खेल है। तुम जिस दिन चाहो, समेट लो। लेकिन जब तक समझोगे न, समेटोगे कैसे? भागना कहीं भी नहीं है; तुम जहां हो वहीं ही अपने मन की वासनाओं के जाल को समेट लेना है। जैसे सांझ मछुआ अपने जाल को समेट लेता है, ऐसे ही जब समझ की सांझ आती है, जब समझ परिपक्व होती है, तुम चुपचाप अपना जाल समेट लेते हो। वह तुमने ही फैलाया था, कोई दूसरे का हाथ नहीं है। कोई दूसरा तुम्हें भटका नहीं रहा है।
सोने का क्या कसूर है? तुम नहीं थे तब भी सोना अपनी जगह पड़ा था। तुम्हारी प्रतीक्षा भी नहीं की थी उसने। तुम नहीं रहोगे तब भी सोना अपनी जगह पड़ा रहेगा।
भर्तृहरि ने अपने जीवन में उल्लेख किया है। राज्य छोड़ दिया। और राज्य ऐसे ही नहीं छोड़ दिया था, बड़ी परिपक्वता से छोड़ा था, जान कर छोड़ा था। भोगा था जीवन को और जीवन के भोग से जो पीड़ा पाई थी और जीवन के भोग में जो व्यर्थता पाई थी, उसके कारण छोड़ा था। लेकिन तब भी छोड़ते-छोड़ते भी धुएं की एक रेखा भीतर रह गई होगी।
जीवन जटिल है। पर्त दर पर्त अज्ञान है। एक पर्त पर छोड़ देते ही, दूसरी पर्त पर प्रगट होना शुरू हो जाता है।
सब छोड़ कर संन्यस्त होकर जंगल में भर्तहरि बैठे हैं, अपनी गुफा में बैठे हैं। एक पक्षी ने गीत गुनगुनाया, आंख खुल गई। पक्षी को तो देखा ही देखा, राह पड़ा एक चमकदार हीरा दिखाई पड़ा। अनजाने कोने से, अचेतन की किसी पर्त से, जरा सा लोभ सरक गया, जरा सा हलका झोंका, पता भी न चले--भर्तहरि को ही पता चल सकता है जो कि जीवन को बड़ा समझ कर बाहर आया था--जरा सा कंपन हो गया। लौ हिल गई भीतर--उठा लूं! फिर थोड़ी हंसी भी आई। इससे भी बड़े-बड़े हीरे- जवाहरात छोड़ कर आया, और अभी भी उठाने का मन बना है। बहुत कुछ था, बड़ा साम्राज्य था। यह हीरा कुछ भी नहीं है। ऐसे बहुत हीरों के ढेर थे। वह सब छोड़ आया, और आज अचानक इस साधारण से हीरे को राह पर पड़ा देख कर मन में यह बात उठ आई।
खूंटियां छोड़ने से लोभ नहीं छूटता। महल छोड़ देने से भी लोभ नहीं छूटता। धन के अंबार त्याग देने से भी त्याग नहीं हो जाता।
मगर भर्तहरि बड़ा सचेत, जागरूक व्यक्तित्व है। पहचान लिया, पकड़ लिया, होश में आ गया कि नहीं, यह बात क्या हुई! और जब यह मन में मंथन चलता था, यह जब मन का विश्लेषण चलता था कि लोभ कहां से उठ आया, क्षण भर पहले नहीं था; आंख बंद थी, ध्यान में लीन था--कहां से, किस पर्त से? बाहर से तो नहीं आया? कोई हीरा तो नहीं भेज रहा है यह लोभ? --इस विश्लेषण में लगे थे, तभी देखा कि दो घुड़सवार दोनों तरफ से राह पर आ गए हैं और दोनों की नजर एक साथ ही हीरे पर पड़ गई। दोनों की तलवारें बाहर निकल आईं। दोनों सैनिक हैं। दोनों ने अपनी तलवारें हीरे के पास टेक दीं और कहा कि पहले नजर मेरी पड़ी, तो दूसरे ने कहा, तुम गलती में हो, पता भी नहीं कि एक तीसरा व्यक्ति भी छिपा गुहा में बैठा है, जो देख रहा है। तलवारें चल गईं। क्षण भर पहले दोनों जीवित थे, क्षणभर बाद दोनों की लाशें पड़ी थीं। हीरा अब भी अपनी जगह था--न रोया, न पछताया, न चिंतित, न बेचैन। जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। हीरे को क्या हुआ? लेकिन भर्तहरि को बड़ा बोध जागा--हीरा अपनी जगह ही पड़ा रहेगा; हम आएंगे और चले जाएंगे; हम चलेंगे संसार में और विदा हो जाएंगे। हीरे हमारे लिए पछताएंगे न। न विदा देते समय एक आंसू उनकी आंखों में झलकेगा, न हमें देख कर वे प्रसन्न हैं। सब अपने ही मन का खेल है। हम ही टांग लेते हैं।
देख कर यह घटना भर्तहरि ने फिर आंख बंद कर ली। और इस घटना ने भर्तहरि
को बड़ा बोध दिया।
सब पड़ा रह जाएगा। न तुम लेकर आते हो, न तुम लेकर जाते हो; लेकिन घड़ी भर
को बड़े सपने संजो लेते हो, बड़े इंद्रधनुष फैला लेते हो।

मन संसार है। काम कामिनी का निर्माता है, स्रष्टा है। लोभ स्वर्ण का जन्मदाता है।
अब हम इन सूत्रों में प्रवेश करें।
बड़ी बारीक बात है और बड़े सरल शब्दों में कही गई है। शब्द इतने सरल हैं
कि लगेगा, समझाने जैसा क्या है? इन सरल शब्दों में इतना कुछ भरा है कि समझाए-समझाए भी समझाया नहीं जा सकता। तुम समझते रहो, मैं समझाता रहूं--कोई अंत न आए।
ज्ञानियों के शब्द सदा ही सरल होते हैं। सिर्फ अज्ञानी पंडितों के शब्द कठिन होते हैं। पंडित कठिनाई से जीता है। कठिनाई पर ही उसका धंधा है। वह जितना कठिन बना लेता है चीजों, को उतना ही लोगों में भ्रांति फैलती है कि बड़े रहस्य की बात है। अगर चीजें बिल्कुल सरल करके पंडित कह दे, तो पंडित की कौन पूजा करे? वह जटिल बनाता है। वह उलझाता है। वह गोल-गोल रास्तों से चलता है। वह बड़े कठिन शब्दों का प्रयोग करता है। वह बड़े पारिभाषिक तर्कों का जाल बुनता है। वह ऐसा धुंआ खड़ा कर देता है चारों तरफ कि कुछ दिखाई न पड़े; सिर्फ इतना ही समझ में आए कि पंडित कोई बड़ा महान कारीगर है।
ज्ञानी सदा सरल होते हैं। शब्द उनके सीधे होते हैं; गोल-गोल नहीं, सीधे हृदय पर चोट करते हैं। उनका तीर सीधा है। और इसलिए कई बार ऐसा होता है कि लोग पंडितों के जाल में पड़ जाते हैं और ज्ञानियों से वंचित रह जाते हैं। क्योंकि, लोगों को लगता है कि इतनी सरल बात है, इसमें है ही क्या समझने जैसा?
ध्यान रखना, जहां सरल हो वहीं समझने जैसा है; और जहां कठिन हो वहां सब कचरा है। वह कठिनाई इसीलिए पैदा की गई है ताकि कचरा दिखाई न पड़े।
तुम डाक्टर के पास जाते हो तो डाक्टर इस ढंग से लिखता है कि तुम्हारी समझ में न आए कि क्या लिखा है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने तय कर लिया कि अपने लड़के को डाक्टर बनाना है। मैंने पूछा, आखिर कारण क्या है? उसने कहा, आधा तो यह अभी से है; क्या लिखता है, कुछ पता नहीं चलता। आधी योग्यता तो उसमें है ही। अब थोड़ा-सा और, सो पढ़ लेगा कालेज में।
पता नहीं चलना चाहिए। क्योंकि जो लिखा है वह दो पैसे में बाजार में मिल सकता है। और डाक्टर लेटिन भाषा का उपयोग करता है, जो किसी की समझ में न आए। क्योंकि अगर वे उस भाषा का उपयोग करें तो तुम्हारी समझ में आती है तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम कहोगे कि यह चीज तो बाजार में दो पैसों में मिल सकती है, इसका बीस रुपया! तुम कैसे दोगे? बीस रुपया लेटिन भाषा की वजह से दे रहे हो।
जो डाक्टर का ढंग है, वह पंडित का ढंग है। वह संस्कृत में प्रार्थना करता है, या लेटिन में, या रोमन में, या अरबी में, कभी लोकभाषा में नहीं। लोगों की समझ में आ जाए तो प्रार्थना में कुछ है ही नहीं। समझ में न आए तो लोग सोचते हैं, कुछ होगा। बड़ा रहस्यपूर्ण है। पंडित की पूरी कोशिश है कि तुम्हारी समझ में न आए, तो ही पंडित का धंधा चलता है। ज्ञानी की पूरी कोशिश है कि तुम्हें समझ में आए, क्योंकि ज्ञानी का कोई धंधा नहीं है।
कबीर के शब्द बड़े सीधे-सादे हैं; एक बेपढ़े-लिखे आदमी के शब्द हैं। पर बड़े गहरे हैं। वेद फीके हैं। उपनिषद थोड़े ज्यादा सजाए-संवारे मालूम पड़ते हैं। कबीर के वचन बिल्कुल नग्न हैं, सीधे! रत्तीभर ज्यादा नहीं हैं; जितना होना चाहिए उतना ही हैं।
"जंग सूं प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।"
संसार से प्रेम न कर मेरे मन; समझ! क्योंकि संसार से जिसने प्रेम किया--और संसार से अर्थ है तुम्हारे ही खड़े किए संसार से--वह भटका। भटका क्यों? क्योंकि वह सत्य को कभी जान न सका। उसके अपने ही मन ने रंग इतने डाल दिए सत्य में, कि सत्य का रंग ही खो गया। वह कभी स्त्री को सीधा न देख पाया; देख लेता तो मुक्त हो जाता।
बुद्ध कहते हैं, क्या है स्त्री में--हड्डी, मांस-मज्जा! क्या है स्त्री की देह में? --अस्थिपंजर। काश! तुम काम को हटा दो, तो दूसरे की देह

में क्या दिखाई पड़ेगा? मल-मूत्र, मांस-मज्जा! लेकिन काम से भरी आंखें स्वर्ण-काया को देखती हैं। काम से भरी आंखें जो हैं, उसे देखती ही नहीं। ऐसा हुआ कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे एक पूर्णिमा की रात ध्यान करते थे। शहर से कुछ युवक एक वेश्या को लेकर जंगल में आ गए हैं। नशे में धुत उन्होंने वेश्या को नग्न कर दिया है। वे हंसी-मजाक कर रहे हैं। वे अपनी क्रीड़ा में लीन हैं। उनको बेहोश देख कर, शराब में धुत देख कर वेश्या भाग निकली। थोड़ी देर बाद जब उन्हें होश आया और देखा कि वेश्या तो जा चुकी है, तो वे उसे खोजने निकले। कोई और तो न मिला, राह के किनारे, वृक्ष के नीचे बुद्ध मिल गए। तो उन्होंने पूछा कि "ऐ भिक्षु, यहां से तुमने एक बहुत सुंदर स्त्री को नग्न जाते देखा?"
बुद्ध ने कहा, "कोई यहां से गया--कहना मुश्किल है कि स्त्री है या पुरुष। क्योंकि वह भेद तभी तक था जब अपनी कामना थी। अब कौन भेद करता है! किसको लेना-देना है! क्या पड़ी है! कोई गया जरूर; तय करना मुश्किल है कि स्त्री थी या पुरुष था। और तुम कहते हो, सुंदर! --तुम और कठिन सवाल उठाते हो, सुंदर और असुंदर भी गया। वह अपने ही मन का खेल था। हां एक अस्थिपंजर, मांस-मज्जा से भरा, गुजरा है जरूर। कहां गया, यह कहना मुश्किल है। क्योंकि, मैं आंखों को भीतर ले जाने में लगा हूं। बाहर कौन जा रहा है, यह देखता रहूं तो भीतर कैसा जाऊं? तुम मुझे क्षमा करो। तुम किसी और को खोजो। वह तुम्हें ठीक-ठीक पता दे सकेगा। मैं अपना पता खोज रहा हूं, दूसरों के पते की मुझे अब कोई चिंता न रही।"
काश! काम के बिना तुम स्त्री को देखो या पुरुष को देखो क्या पाओगे वहां? शरीर में तो कुछ भी नहीं है। और अगर कुछ है तो वह अशरीरी है। लेकिन काम की आंखें तो उसे देख ही न पाएंगी--उस आत्मा को जो इस हड्डी-मांस-मज्जा की देह में छिपी है। उस चैतन्य को, उस ज्योति को तो काम से भरी आंखें तो देख ही न पाएंगी। तुम देह पर ही भटक रहोगे।
जब काम गिर जाता है, शरीर ना-कुछ हो जाता है; मिट्टी से उठा, मिट्टी में वापस लौट जाएगा। लेकिन जैसे ही शरीर ना-कुछ हुआ, वैसे ही शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी पहली झलक मिलनी शुरू हो जाती है। तब न तो तुम स्त्री को पाते हो न पुरुष को; तुम सब जगह परमात्मा को पाते हो।
"जग सूं प्रीत न कीजिए... ।"
इसलिए काम की आंख से मत देखो। जो जग तुमने अपने चारों तरफ धारणाओं का, दृष्टियों का बना रखा है, वासनाओं का, तृष्णाओं का--उससे मत देखो।
"जग सूं प्रीत न कीजिए, समझि मन मेरा।"
मेरे मन समझ! ना-समझी काफी हो चुकी।
"स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।"
लेकिन मन सदा कहता है कि बड़ा स्वाद है। समझ से बचना चाहता है, क्योंकि
डर लगता है कि समझ कहीं स्वाद न छीन ले; कहीं देख लिया स्त्री की मांस-मज्जा को, हड्डी को, मल-मूत्र को, भीतर छिपी हुई देह की जो स्थिति है, अगर एक बार दिख गई तो फिर स्वाद लेना मुश्किल हो जाएगा।
पश्चिम में एक बड़ा विचारक है, मनोवैज्ञानिक है--विक्टर फ्रेन्कल। वह हिटलर के कैदखाने में था। और वहां उसने एक घटना देखी। और उस घटना के बाद उसका भोजन में रस चला गया, जो नहीं लौटा अब तक।
कैसी घटना रही होगी?
उसने देखा, कैदी थे। एक बार रोटी के कुछ टुकड़े मिलते थे, और दिन भर भूखे रहते थे। लोग अपने टुकड़ों को बचाए रखते थे, ताकि थोड़ा-सा जब भूख लगे तो फिर खा लेंगे, फिर थोड़ा सा खा लेंगे। चौबीस घंटे की भूख!
एक दिन उसने देखा कि एक कैदी को वमन हो गया, उलटी हो गई। इसमें तो कुछ बड़ी बात न थी। बहुत लोगों को वमन करते हुए देखा होगा। लेकिन फ्रेन्कल ने देखा कि वह उस वमन को ही उठा कर फिर से खा रहा है। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन के बाद फिर मेरा भोजन में रस नहीं रहा। भोजन करता हूं, मुझे वह आदमी जरूर दिखाई पड़ता है।
एक बार तुम्हें सत्य दिखाई पड़ जाए तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। इसलिए तो
मन कहता है कि समझ से बचो; यह समझदारी अपने काम की नहीं, नासमझी भली। नहीं

तो स्त्री की देह पर हाथ रखोगे, कविता कहती है कि संगमरमरी देह है; लेकिन अगर तुम्हें भीतर की मांस-मज्जा और हड्डी दिखाई पड़ रही हो, तो संगमरमरी देह तुम न कह सकोगे। सत्य सब कविताओं को तोड़ देगा। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे।
इसलिए मन कहता है, समझ-वमझ में मत पड़ो, नासमझ भली। इसलिए तो कहते हैं
कि अज्ञान में भी बड़े आशीर्वाद छिपे हैं। स्वाद ले लो; जल्दी क्या है--मन कहता है--थोड़ा और! और स्वाद के साथ बड़ी हैरानी है कि स्वाद काल्पनिक है और दूसरे से नहीं आ रहा है। दूसरे से आ नहीं सकता स्वाद। स्वाद तुम्हारा डाला हुआ है।
कभी तुमने कुत्ते को देखा? सूखी हड्डी को कुत्ता चूसता है। सूखी हड्डी में कुछ भी नहीं है। कोई रस तो निकल नहीं सकता, इसलिए चूसोगे क्या? सूखी हड्डी कोई गन्ने की पोंगरी नहीं है। उसमें कुछ है ही नहीं, बिल्कुल सूखी है। कोई मांस भी नहीं लगा है आस-पास। खून का धब्बा भी नहीं है। बिल्कुल सूखी हड्डी है और कुत्ता चूसता है, बड़ा रस लेता है; और अगर कोई दूसरा कुत्ता उस हड्डी को छीनने आ जाए तो जी-जान से बचाने की कोशिश करता है।
क्या, हो क्या रहा है?
एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना घट रही है। वह तुम्हारे जीवन में भी घट रही है। उसे समझ लेना ठीक है।
जब कुत्ता सूखी हड्डी चूसता है, तो सूखी हड्डी की टकराहट से उसके भीतर मुंह का मांस कट जाता है, खून बहने लगता है। खून का स्वाद आने लगता है। स्वभावतः कुत्ता सोचता है, हड्डी से खून आ रहा है। तर्क बिल्कुल सीधा साफ है। वह जितना चूसता है सूखी हड्डी को, उतना ही मुंह भीतर कटता जाता है। जीभ कट जाती है। मसूढ़े कट जाते हैं। तालु कट जाता है। खून बहने लगता है। खून गले में आता है, कुत्ते को स्वाद आता है।
और सभी स्वाद ऐसे हैं। स्वाद बाहर से नहीं आते; तुम्हीं ले रहे हो। तुम्हारा ही खून बह रहा है। सूखी हड्डियां चूस रहे हो। वहां कुछ है ही नहीं कि कुछ आ जाए।
जब तुम सोचते हो कि स्त्री से तुम्हें सुख मिल रहा है, तब तुम्हीं सुख
पा रहे हो--तुम्हारी धारणा का ही सुख है। तुम जब सोचते हो कि सोने से सुख मिल रहा है, तो तुम ही सुख पा रहे हो--तुम्हारी धारणा का ही सुख है। और सोने के कारण कितनी जगह से तुम कट जाते हो, तुम्हें पता नहीं। सोने का बोझ तुम्हें कैसे दबा देता है, इसका तुम्हें पता नहीं। तुम्हारे लोभ और काम में तुम कैसे कारागृह में बंद हो जाते हो जहां कि जीना ही असंभव हो जाता है, इसका तुम्हें पता नहीं!
"स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।"
कबीर कहते हैं, स्वाद के कारण उलझ जाता है व्यक्ति, और फिर कोई बहुत बहादुर ही हो, शूरवीर हो, तो ही बाहर निकल पाता है। सिर्फ साहसी ही बाहर निकल पाते हैं--दुस्साहसी। क्योंकि, दूसरे से लड़ना तो बहुत आसान है; अपने ही मन से लड़ना बहुत कठिन है। और अपने ही मन को समझना बहुत कठिन है कि क्या हो रहा है।
कुत्ते को कैसे पता चले कि सूखी हड्डी से अपना ही खून बह रहा है, उसका
ही मैं स्वाद ले रहा हूं। जब मनुष्यों को पता नहीं चलता, तो बेचारे कुत्ते का तो कोई कसूर नहीं।
तुमने जहां-जहां स्वाद लिया है, वह तुम्हारे ही रक्त का स्वाद है। और जहां-जहां तुमने स्वाद लिया है वहां-वहां तुमने अपने जीवन को गंवाया है। जहां-जहां तुमने स्वाद लिया है, वहां अपनी ऊर्जा खोई है। उससे तुम दीन हुए हो। उससे तुम निर्धन हुए हो। और मैं भीतर के धन की बात कर रहा हूं, जब कहता हूं, निर्धन हुए हो। और मैं भीतर की दीनता की बात करता हूं, जब मैं कहता हूं, दीन हुए हो। क्योंकि, जितने तुमने स्वाद लिए हैं, उतना ही तुमने अपने को खोया है। और आज एक ऐसी घड़ी आ गई है कि तुम्हें पक्का पता नहीं कि तुम कौन हो, क्या हो, हो भी या नहीं? इस बुरी तरह खो दिया है तुमने, गंवा दिया है

अपने को कि कोई बहादुर ही इसके बाहर निकल सकता है, कोई शूरवीर--"को निकसै सूरा।"
क्यों साहस की जरूरत है? सबसे बड़े साहस की जरूरत वहां पड़ती है, जहां आदतों के जाल से बाहर निकलना हो। अब तुम्हारी यह आदत हो गई है--अपने को ही काटना और गलाना और अपना ही स्वाद लेना। इस आदत से तुम इतने ज्यादा ग्रस्त हो गए हो कि अब बाहर आना करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है। करीब-करीब ऐसा लगता है कि तुम अपनी आदतों के जाल ही हो, बाहर कौन आएगा? भीतर बचा कौन है जो बाहर आ जाए? इसलिए तुम टालते हो कि कल, परसों, आगे देखेंगे; अभी तो उम्र शेष है, थोड़ा और भोग लें।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आप युवकों को संन्यास दे रहे हैं; संन्यास तो बुढ़ापे के लिए है। संन्यास का क्या बुढ़ापे से संबंध? बुढ़ापे तक क्यों टाल रहे हो? तब तक टालोगे तुम जब तक तुम बिल्कुल अशक्त न हो जाओ। जब कुछ बचेगा ही नहीं, जब तुम बिल्कुल मरने की घड़ी में आ जाओगे, तभी तुम अपनी सूखी हड्डी छोड़ोगे। वह भी तुम छोड़ोगे नहीं, छूट जाएगी। क्योंकि तब पकड़ने योग्य सामर्थ्य, क्षमता भी न रह जाएगी। तब भी तुम तो चेष्टा करोगे कि थोड़ी देर और। क्योंकि बूढ़ा भी अपने को बूढ़ा थोड़े ही मानता है; भीतर तो अपने को जवान ही मानता है। क्योंकि वासना कभी बूढ़ी होती ही नहीं। वासना सदा जवान है। शरीर थक जाए, मन नहीं थकता; शरीर टूट जाए, मन नहीं टूटता। मन कहता है, चले जाओ, और खींचो, थोड़ा और स्वाद ले लो। आखिर मरते क्षण तक भी मन स्वाद से लपटाए रखता है।
इसलिए कबीर कहते हैं, "स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा।"
वह जो निकल आए बाहर, वह बड़ा वीर।
संन्यास केवल साहसियों के लिए है; संसार कायरों के लिए। बड़े से बड़ा साहस है जाग जाना और देख लेना स्थिति को। जागने में डर है, क्योंकि तुमने स्थिति में बहुत सा अतीत गंवा दिया है।
ऐसा समझो कि एक आदमी आंख बंद किए कागज की नाव में बैठा सागर को पार कर रहा है, और तुम अचानक उससे कहो, "आंख खोल नासमझ! यह कागज की नाव; लेकिन जब तक पता नहीं है, तब तक तो निश्चिंत है, तब तक तो वह नाव ही मान रहा है। अब तुमने उसे झंझट में डाल दिया--यह बताकर कि यह कागज की नाव है, डूबेगी। अब मुश्किल खड़ी होगी। अब वह कंपेगा और डरेगा और परेशान होगा। वह तुम पर नाराज होगा। अब तक सपना ही सही; लेकिन भरोसा तो यह था कि ठीक है, पहुंच जाएंगे।
धन में तुमने अपना जीवन गंवाया। आज अचानक कोई कहता है कि धन में कुछ
भी नहीं है, तो तुम्हारा पूरा अब तक गंवाया जीवन व्यर्थ हो जाता है। एक आदमी पचास मील चल कर आया और तुम कहते हो कि "फिर लौटो, यह तो रास्ता ही नहीं है। पचास मील वापस जाओ। वहीं से चौराहे से बदलाहट होगी, दूसरा रास्ता पकड़ना।"
पहला मन तो उसका तुम पर नाराज होने को होता है। होता है, क्योंकि तुम उसकी पचास मील की यात्रा को खराब किए दे रहे हो। और फिर पचास मील जाना है वापस। तो पहले तो वह तुम पर भरोसा न करेगा। वह कोई ऐसा आदमी खोजेगा जो कहेगा कि नहीं ठीक हो, बिल्कुल ठीक जा रहे हो।
इसलिए तो लोग ज्ञानियों के पास जाने से डरते हैं, भयभीत रहते हैं। कितने थोड़े-से लोग बुद्ध के पास पहुंचे। कितने थोड़े से लोग कबीर के पास पहुंचे। क्यों इतना बड़ा विराट संसार, जब सत्य का कहीं आविर्भाव होता है तो दौड़ कर नहीं पहुंच जाता? हजार कारण वे खोज लेते हैं न जाने के। जाने का कारण वे नहीं खोजते, क्योंकि भीतर एक भय है कि इस तरह के आदमी के पास जाने का मतलब यह है कि अब तक तुम जो थे, तुमने जो भी किया, वह सब गलत। यह जरा जरूरत से ज्यादा घबड़ाने वाला है। तो फिर पूरा जीवन अब तक का बेकार गया? तो तुम मूढ़ थे, नासमझ थे?
ज्ञानी के पास जाने का भय यह है, वही भय जो ऊंट को हिमालय के पास जाने
से लगता है। इसलिए ऊंट रेगिस्तान में रहते हैं, हिमालय की तरफ नहीं जाते। रेगिस्तान में वही ऊंट हिमालय हैं।
जब तुम ज्ञानी के पास जाते हो तो अचानक तुम्हारा अज्ञान साफ होता है-- घबड़ाहट होती है। ज्ञानी की प्रकाश-रेखा के समझ तुम्हारी अंधेरी रेखा

बिल्कुल प्रकट हो जाती है। तो आदमी मित्रता अपने से ज्यादा अज्ञानियों की करता है। कोई साहसी, कोई शूरवीर ही ज्ञानियों के पास जाता है। इससे बड़ा कोई साहस नहीं है कि कोई इस बात को समझने को राजी हो कि अब तक जो मैं था वह गलत था। इससे बड़ा कोई साहस नहीं है कि अब तक जिस रास्ते पर मैं चला, वह भ्रांत था, और मैं फिर से अ ब स से शुरू करने को राजी हूं।
मन समझाएगा कि इतने दिन चले लिए, थोड़े दिन और बचे हैं, अब क्यों परेशानी में पड़ते हो? थोड़े दिन और गुजार लो इसी रास्ते पर। पहुंचें, नहीं पहुंचें; लेकिन पहुंचने की आशा तो बनी है।
मेरे एक शिक्षक थे। आस्तिक थे--भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ करते थे। मैं जब
भी गांव जाता, मुझे स्कूल में पढ़ाया था, तो उनको मैं मिलने जाता। कुछ बात होती। एक बार मैं गांव गया, तो उनका लड़का आया और मुझे कह गया कि "आप घर मत आना। पिताजी ने खबर भेजी है। यद्यपि वे दुखी हैं, असमर्थ हैं, लेकिन घर मत आना।"
मैंने कहा, "एक बार तो आऊंगा, कम से कम यह पूछने के लिए कि मामला क्या है? फिर कभी नहीं आऊंगा।"
मैं गया तो वे रोने लगे और उन्होंने कहा कि वर्ष भर तुम्हारी राह देखता हूं कि कब आओगे। पर मैं बूढ़ा आदमी हूं, और तुम सब गड़बड़ कर देते हो। मेरी पूजा ठीक चलती है, प्रार्थना ठीक कर लेता हूं, मंदिर जाता हूं, उपवास करता हूं, और अब बूढ़ा आदमी हूं; और तुम जब आते हो तो तुम सब गड़बड़ कर देते हो कि "इस पूजा से कुछ भी न होगा। यह प्रार्थना व्यर्थ है। यह उपवास से क्यों अपने को भूखा मार रहे हो?" और तुमसे मैं भयभीत हो गया हूं। और अब मेरी मौत करीब है। कृपा करके अब मुझे मत डगमगाओ। मैं जैसा हूं... । क्योंकि अब इस क्षण में नये रास्ते पर जाना मुश्किल है। अब तुम मुझे आश्वस्त मर जाने दो। नहीं तो मरते वक्त भी तुम्हारी आवाज मुझे सुनाई पड़ती रहेगी कि यह गलत है; जिंदगी मैंने ऐसे ही गंवा दी। तुम मुझे कम से कम भरोसा दो। तुम मुझे कहो, सब ठीक है।
मैंने उन्हें कहाः "क्रांति के लिए समय की जरूरत ही नहीं है; एक क्षण में क्रांति हो सकती है। क्योंकि यह क्रांति समय के बाहर की घटना है। तो तुम यह मत सोचो कि जिंदगी गंवा दी, तो अब एक क्षण में, अब थोड़े से दिनों में, थोड़ा सा समय जो हाथ में बचा है--हाथी तो निकल गया है, अब पूंछ ही बची है--अब कैसे बदलाहट होगी? तुम यह बात ही छोड़ो। सौ साल अंधेरा रहा हो, अगर दिया जलाओ, एक क्षण में अंधेरा विलीन हो जाता है। भयभीत मत रहो कि अब सौ साल दिया जलाना पड़ेगा, तब सौ साल का पुराना अंधेरा जाएगा। यह गणित यहां लागू नहीं है। और अंधेरा यह भी नहीं कह सकता है कि मैं सौ साल पुराना हूं, इसलिए इतनी जल्दी नहीं जाऊंगा।"
"एक क्षण में में घटना घट सकती है। लेकिन मन गणित करता है। और मन कहता
है कि अब आखिर में आश्वस्त मर जाने दो। आश्वस्त तुम मर ही नहीं सकते, क्योंकि तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं है। और मैं तुम्हें नहीं डिगा रहा हूं; तुम खुद ही जानते हो कि जो तुम कर रहे हो वह थोथा है। अन्यथा मैं कैसे डिगाऊंगा?"
गलत करने वाला बिल्कुल भलीभांति जानता है, कितना ही समझाए, कितना ही अपने को उलझाए, कितना ही शब्दों का जाल रचे, सांत्वना का घर बनाए, गलत करने वाला गहन तल पर जानता है कि गलत हो रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा था। जिंदगी भर अल्लाह ही का नाम लिया; प्रार्थना, पूजा, मस्जिद, कुरान का पाठ किया नियमित; और मरते वक्त, आखिरी क्षण में उसने जोर से कहाः "हे शैतान! हे अल्लाह! कृपा कर!"
पास खड़े हुए मौलवी ने पूछा कि नसरुद्दीन, मरते वक्त यह क्या कह रहे हो? उसने कहा कि अब सच्ची बात ही कह दूं। मुझे पक्का नहीं है कि अल्लाह मालिक है दुनिया का कि शैतान। और अभी पक्का नहीं रहा। और मरते वक्त दोनों को राजी कर लेना उचित है, जो भी हो। यह मौका कोई जिद्द करने का नहीं है। जीवन भर का संदेह मरते क्षण उठ आएगा, ऊपर आ जाएगा। मरते क्षण में तुम धोखा न दे पाओगे, जीवन में भला धोखा दिया हो। मरते क्षण में सत्य जाहिर हो जाएगा। मरते क्षण में तुम जानोगे, सोना मिट्टी था। मरते क्षण में तुम

जानोगे कि कोई स्त्री सुख देने वाली नहीं थी, कोई पुरुष सुख देने वाला नहीं था। मरते क्षण में तुम जानोगे कि जिंदगी गंवाई। लेकिन तब करने को कुछ भी न बचेगा।
शूरवीर वही हैं जो मरने से पहले मरने की हिम्मत रखते हैं। और क्या मतलब होता है शूरवीर का? कायर किसको कहते हो तुम? कायर उसको कहते हो कि जहां भी मरने की बात उठी कि वह भागा, उसने पूंछ दबाई। शूरवीर वही है जो जीवन के लिए जीवन को दांव पर लगा सकता है। शूरवीर का अर्थ हैः जो जीवन के लिए जीवन को गंवा सकता है, जो मरने के लिए भी तैयार है, जिसकी तैयारी में आखिरी तैयारी सम्मिलित है--मरने की तैयारी।
और हम पढ़ेंगे आगे, कबीर कहते हैं कि जो जीते-जी मरने की कला जानता है, वही केवल परमात्मा को उपलब्ध होता है।
मरते तो सभी हैं, संन्यासी वही जो मरने से पहले मर जाता है--और जो कह देता है कि इस जीवन में कोई सार नहीं। इस जीवन के लिए मैं मरा हुआ हूं। मैं एक नये जीवन की शुरूआत करता हूं और एक नये प्रकाश-पथ की यात्रा... । बाहर खोज कर देख लिया, नहीं कुछ पाया। अपने ही मन की भ्रांतियां थीं, अपने ही मन का फैलाव था। अब पसारा वापस उठा लेता हूं, जाल उठा लेता हूं। अब भीतर की यात्रा पर चलता हूं।
अंतर्यात्रा निर्णय है साहस का। बाहर की तरफ तो सभी जाते हैं; भीतर की तरफ कोई शूरवीर... । बाहर की तरफ तो पशु भी जाते हैं, पक्षी भी जाते हैं; तुम्हारा कुछ गुण-गौरव नहीं है कि तुम बाहर की तरफ जाते हो। भीतर की तरफ न पशु जाते हैं, न पक्षी जाते हैं, न पौधे जाते हैं; केवल मनुष्य जा सकता है; सभी मनुष्य नहीं जाते--कोई शूरवीर जा सकता है।
अंतर्यात्रा सबसे कठिन यात्रा है। चांद पर पहुंचना आसान है, क्योंकि
वह भी बाहर की यात्रा है। अपने भीतर आ जाना सबसे कठिन यात्रा है। क्योंकि उस भीतर आने में तुम्हें अपने जन्मों-जन्मों की आदतों के जाल तोड़ने पड़ेंगे; जन्मों-जन्मों के स्वाद व्यर्थ हैं, ऐसे जानने की क्षमता जुटानी पड़ेगी। और अब तक तुमने जो भी किया वह सपना था--इसे झेल लेने की हिम्मत बड़ी से बड़ी हिम्मत है। मैं अब तक गलत था, जन्मों-जन्मों तक गलत रहा--ऐसी जिसकी प्रतीति सघन हो जाती है, उसके जीवन में सही शुरूआत हो गई, सत्य की तरफ पहला कदम उठा। जिसने जान लिया कि मैं अज्ञानी हूं, उसने ज्ञान के मंदिर की तरह पहला कदम उठा लिया।
"एक कनक अरु कामिनी, जग में दोइ फंदा।" लोभ और काम--जग में दोइ फंदा। "इन पै जो न बंधावई ताका मैं बंदा।।" और कबीर कहते हैं, मैं उसके पैर दाबूं, जो इन दो में न बंधे--मैं उसका बंदा।
"देह धरे इन मांहि बास कहु कैसे छूटे।"
लेकिन सवाल यह है कि देह में रहते हुए, देह में बसते हुए, इनसे कैसे संबंध छूटे? लोभ, काम कैसे छूटे? यह बड़ा गहन है। क्योंकि देह में हम हैं ही इसलिए कि अतीत में हमने कामना की जन्मों-जन्मों तक हमने वासना जुटाई, उसके कारण ही हम देह में हैं। इसलिए तो ज्ञानी को फिर देह नहीं है; उसका पुनरागमन समाप्त है, उसका आना-जाना बंद।
हम देह में आए ही इसलिए हैं कि हमने न मालूम कितनी वासना इकट्ठी की है,
और हम देह को चाहे हैं। मरते वक्त भी आदमी चाहता है, और दो क्षण रुक जाऊं। मरते वक्त भी नये जन्म की आकांक्षा रहती है, फिर जन्म-जन्म की आकांक्षा रहती है--फिर जन्म पा लूं। वही आकांक्षा नये जन्म में ले आती है, नई देह में ले आती है।
काम के कारण हम देह में हैं। देह का कण-कण कामवासना से बना है।
तीन वासनाएं तुममें मिल रही हैं। तुम एक संगम हो महावासनाओं के। एक तुम्हारी वासना जो कि मूल आधार है, जिससे तुम पिछले जन्म से इस जन्म में आए। फिर तुम्हारे पिता की वासना, तुम्हारी मां की वासना, जिन दोनों ने मिल कर तुम्हें देह दी। इन तीन वासनाओं से तुम बने हो। तुम्हारी देह इन तीन वासनाओं का संगम है। दो तो दिखाई पड़ती हैं, जैसे गंगा और यमुना। तीसरी सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। दो तो दिखाई पड़ते हैं--तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता, और तीसरी तुम्हारी वासना सरस्वती की तरह दिखाई नहीं पड़ती।

वह असली है। ये दो तो सहयोगी हैं। क्योंकि तुमने न चाहा होता तो तुम्हारे पिता और तुम्हारी माता की वासना तुम्हें इस जगत में न ला सकती। तुमने चाहा, उनकी वासना सहयोगी बन गई--"तुम गर्भस्थ हुए।"
तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं, कण-कण वासना से बना है।
और लोभ--इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए कि और सब लोभ शरीर के प्रति हमारी जो लोभ की दृष्टि है, उसी के फैलाव हैं। तुम अपने घर के प्रति लोभी हो। क्यों? जो व्यक्ति अपने शरीर के प्रति लोभ छोड़ देता है, उसका घर के प्रति लोभ अपने आप छूट जाता है। क्योंकि शरीर ही मूल घर है। फिर बाहर का घर तो इसी घर के लिए सुविधा है। जो व्यक्ति शरीर के प्रति लोभ छोड़ देता है उसका सोने के प्रति लोभ छूट जाता है। क्योंकि सोना तो फिर इसी घर की सजावट है। और जो इस शरीर के प्रति लोभ छोड़ देता है, धन-संपत्ति से उसका लोभ अपने आप छूट जाता है, क्योंकि उस सबका उपयोग इस शरीर के लिए ही है।
तो शरीर तुम्हारे काम और तुम्हारे लोभ का आधार है। इसलिए जगत में एक बहुत बड़ा चमत्कार है! अनेक बार बुद्ध से पूछा गया है कि जब आपकी वासना खो गई, जब आपको ज्ञान का आविर्भाव हो गया, जब बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए, तो फिर आप शरीर में कैसे जी रहे हैं? यह प्रश्न संगत है क्योंकि अब कोई कारण नहीं रहा है; न शरीर के प्रति वासना है, न कामना है, न लोभ है। अब आप शरीर में कैसे हो?
कठिन है समझना।
लेकिन बुद्ध कहते हैं, अतीत के बल के कारण--मोमेंटम; जैसे एक आदमी साइकल चलाता है, पैडल चलाता है, तो ही साइकल चलती है, फिर पैडल रोक लेता है तो भी कुछ दूर तक साइकल चलती जाती है। मोमेंटम--वह जो गति इतनी देर तक चलाने से पहियों को मिल गई है, अब पैडल की जरूरत नहीं है। कुछ यात्रा बिना पैडल के भी हो जाती है।
लोभ और काम, ये दो शरीर के पैडल हैं। इन दोनों से ही शरीर टिका है। इसलिए बुद्ध-पुरुष भी जी जाते हैं थोड़े दिन; लेकिन उनका जीना बड़ा कठिन हो जाता है। लोग आमतौर से सोचते हैं कि बुद्ध-पुरुष बहुत स्वस्थ होंगे। गलत है। बुद्ध-पुरुष बड़ी मुश्किल में जी पाते हैं।
जैसा तुम्हें पता होगा--अगर तुम साइकल चलाते हो, चलती है, लेकिन कब गिरी, कब गिरी। बिना पैडल के भी थोड़ी चलती है, लेकिन कभी भी गिरना बना रहता है।
बुद्धपुरुष का संबंध शरीर से तो टूट जाता है। अब वह शरीर में ऐसे है जैसे नहीं है। ऐसे जैसे तुम वृक्ष की जड़ें उखाड़ लो तो भी दो-चार दिन हरा रह जाता है--बस! जड़ें तो टूट गईं हैं जमीन से लेकिन वृक्ष दो-चार दिन हरा रह जाता है। इतनी संचित जल-राशि उसके भीतर है जिससे हरा रह जाता है--संचित बल है अतीत का जिससे हरा रह जाता है।
बुद्ध भी, महावीर, रमण, रामकृष्ण--ऐसे ही शरीर में रहते हैं... !
रामकृष्ण कैंसर से मरे। रमण भी कैंसर से मरे। बड़ी हैरानी मालूम होती
है कि रमण और रामकृष्ण अगर कैंसर से मरते हैं तो बड़ा अन्याय है। अन्याय वगैरह कुछ भी नहीं है; सीधी बात साफ है कि अब शरीर में कोई भीतरी बल नहीं है, किसी तरह चल रहा है। इसलिए किसी तरह की बीमारी के लिए आधार हो सकता है। क्योंकि भीतर का धक्का तो अब बंद हो गया है; अब तो पुराने धक्के पर चल रहा है। ऐसा समझो कि मूलधन तो चुक गया है, ब्याज से जी रहा है।
"देह धरे इन मांहि बास कहु कैसे छूटै।"
और फिर देह है, काम और लोभ से बना उसका सारा रूप है, आकार है--फिर कैसे इनसे संबंध छूटे?
सूत्र याद रख लेनाः "सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।" जो मुर्दे की भांति हो गए, वे उबर गए और जो जीए वे लुटे। "सीव भए ते ऊबरे"--शव हो गए जो वे उबर गए। "जीवत ते लूटै"--और जो जीते रहे, वे लुट गए।
जीसस ने कहा है, "बचाओगे--खो दोगे। खोने को राजी हो--कोई तुमसे छीन नहीं सकता। जीओगे--मरोगे। मरने को राजी हो--अमृत तुम्हारा है।"
कायर हजार बार मरता है--कहते हैं--बहादुर एक बार। कायर रोज मरता है, मरने से डरता है, हर घड़ी मौत मालूम होती है; साहसी एक बार। क्योंकि जैसे ही

कोई मरने को राजी हो गया है इस संसार के प्रति, उसने कहा, अब मैं ऐसे जीऊंगा, जैसे मुर्दा, वैसे ही कोई फिर मौत नहीं है। क्योंकि ऐसी प्रतीति में तत्क्षण भीतर के अमृत का अनुभव हो जाता है।
मरने की कला धर्म है। इसलिए मैं कहता हूं कि मैं मृत्यु सिखाता हूं।
कुछ और सिखाने योग्य है भी नहीं। जीवन तो तुम सीखे ही हो, जरूरत से ज्यादा सीख गए हो; इतना सीख गए हो कि अब उसको अन-सीखा करना मुश्किल हो रहा है।
मृत्यु सीखनी है।
धर्म मृत्यु की कला है; और तुम चाहो तो कह सकते हो, अमृत की कला भी। क्योंकि इधर मरे, उधर अमृत हुए। इधर तुमने संसार की तरफ से आंख बंद की कि अपनी तरफ आंख खुली। और आंख एक ही तरफ खुल सकती है--या तो बाहर देखो, या भीतर; दोनों तरफ एक साथ न देख सकोगे। कैसे देखोगे? दृष्टि या तो बाहर जा रही है तो तुम बाहर यात्रा कर रहे हो, तब अपनी तरफ पीठ है। इसलिए अमृत का पता नहीं चलता, कि तुम कौन हो।
जब जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ जा रही है--दृष्टि भीतर मुड़ती है, अंतर्मुखी होती है--तो आंख बंद हो जाती है, सब द्वार बंद हो जाते हैं। बाहर तुम अब नहीं जा रहे हो; अब तुम उन्मुख हो अपनी तरफ; अब तुम अपने सन्मुख हो-- तत्क्षण अमृत की वर्षा हो जाती है।
सहजोबाई ने कहा है, "उस घड़ी में--"बिन घन परत फुहार"।" कोई बादल नहीं दिखाई पड़ता और अमृत की वर्षा होती है। "बिन घन परत फुहार। रोआं-रोआं नहा जाता है। परमात्मा में स्नान हो जाता है।"
एक ही तीर्थ है--वह तुम हो। लेकिन तुम अपनी तरफ पीठ किए चल रहे हो।
"सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।"
क्या करो, कैसे करो, कि तुम जीते-जी मुर्दा हो जाओ?
ऐसा हुआ रूस में एक बहुत बड़ा विचारक और लेखक हुआ--दोस्तोवस्की। वह जब जवान था तो क्रांति के कारण पकड़ा गया और जार ने उसे मृत्यु का दंड दिया। दस और साथी थे, सब को मृत्यु का दंड मिला। एक दिन सुबह छह बजे उनको गोली मार देने का तय था। गड्ढे खोल दिए गए। दसों को गड्ढों के ऊपर खड़ा कर दिया गया। सैनिक संगीनें लेकर खड़े हो गए। चर्च की घड़ी में देख रहे हैं कि जैसे ही छः का घंटा बजे और कांटा छः बजाए, गोली मार दी जाए। एक-एक पल भारी हो गया होगा। पांच मिनट बचे, चार मिनट बचे, दो मिनट बचे--कि एक मिनट बचा--कि अब सेकंड-सेकंड का हिसाब होने लगा होगा। सबकी आंखें घड़ी पर टिकी हैं। छह बजे घड़ी का घंटा हुआ। गोली चलती इसके पहले एक घुड़सवार आया, भागा हुआ। संदेश दिया कि मृत्यु की सजा आजीवन कारावास में बदल दी गई है। लेकिन जैसे ही छह की घड़ी का घंटा बजा, एक आदमी तो गिर गया, यह सोचकर कि मरे, मर गए, खत्म हुआ मामला। एक आदमी तो गिर गया। खबर दे दी गई कि घबराइए मत, आजीवन कारावास में बदल दी गई है सजा।
लेकिन वह आदमी जिंदगी भर जिंदा रहा, लेकिन और ही ढंग से जिंदा रहा। वह लोगों से कहता, मैं तो मर गया। लोग उसे पागल समझते। लोग उसका मजाक उड़ाते। लेकिन उस आदमी की जिंदगी में क्रांति हो गई। न लोभ रहा, न मोह रहा, न कोई लगाव रहा, न कोई आसक्ति रही; रहता, चलता, उठता, बैठता, काम करता--लेकिन जब भी कोई उससे पूछता तो वह कहता कि फलां तारीख को सुबह छह बजे मैं मर गया। अचानक वह आदमी संन्यस्थ हो गया।
दोस्तोवस्की भी उनमें एक था। उसने भी लिखा है कि उस घड़ी के बाद मैं दूसरा ही आदमी हो गया। क्योंकि पक्का ही मान लिया था कि मौत होने ही वाली है। छह बजते बजते साफ हो गया था कि बस खत्म हो गए। फिर बच गए। लेकिन उस घड़ी जो खत्म होने का भाव हो गया, वह क्रांति ले आया।
संन्यस्थ ऐसी ही भावदशा है कि तुम्हारा बोध एक ऐसी जगह आ जाए, जहां तुम इस बात को ठीक से समझ लो कि इस जिंदगी में कुछ भी पाने जैसा नहीं है। इस जिंदगी में सिवाय मौत के और कुछ मिलता ही नहीं है। बोध इतना सघन हो जाए कि तुम अपने हाथ से ही कह दो कि हम मर गए। उसी दिन से तुम जल में कमलवत हो जाओगे। चलोगे, काम करोगे, उठोगे, बैठोगे; लेकिन जीवन का जो स्वाद है, जो रस है, वह खो जाएगा; बाहर की तरफ जो दौड़ है वह मिट जाएगी; रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक--सब बराबर हो जाएगा।

कभी इसका छोटा सा प्रयोग करो--एक सात दिन के लिए ही सही--कि सात दिन के लिए ऐसे जियोगे जैसे मर गए। कोई गाली देगा तो क्रोध का कोई उपाय नहीं; क्योंकि तुम मर गए। कोई जेब से पैसे निकाल ले तो क्या करोगे?
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से पूछता था कि इस बात का पक्का कैसे होता होगा, जब आदमी मर जाता है, उसको खुद को कि मैं मर गया? वह कभी-कभी बड़े दार्शनिक सवाल उठा लेता है। पत्नी ने कहा, "सिर न खाओ और बेकार की बातें मत उठाओ। जब मरोगे, तब पा चल जाएगा। हाथ-पैर ठंडे हो जाएंगे।"
अब और क्या कहे?
एक दिन गया था जंगल में लकड़ी काटने, सर्दी के दिन थे और ठंडी हवा चल रही थी, हाथ-पैर ठंडे होने लगे। उसने कहा, मारे गए। कुल्हाड़ी नीचे पटक कर जैसा कि मुर्दा आदमी को करना चाहिए वह जल्दी से लेट गया। अपने गधे को जिस पर लकड़ी ले जानी थी उसने वृक्ष से बांध रखा था। वह लेट गया, आंखें बंद की लीं, उसने कहा, अब कुछ करने को नहीं बचा; मामला ही खत्म। अब घर खबर भी नहीं भेज सकते, काई है ही नहीं, और हाथ-पैर ठंडे हो रहे हैं। जाहिर है, पत्नी ने ठीक कहा था। वह बिल्कुल मर गया। तभी दो भेड़िए आ गए और उन्होंने हमला किया गधे पर। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः "अब क्या कर सकता हूं? काश! आज जिंदा होता तो यह भेड़िए मेरे गधे के साथ ऐसा व्यवहार न कर पाते। मगर अब बात खत्म हो गई।"
अगर तुम सात दिन के लिए भी सोच लो कि मर गए, तुम्हें जीवन का एक नया दर्शन होगा। कोई गाली देगा, तुम सुनोगे--करोगे क्या? जब मर जाओगे और कब्र में पड़े रहोगे और कोई आदमी आकर गाली देगा तो क्या करोगे?
च्वांगत्सु एक मरघट से निकलता था, एक खोपड़ी में लात लग गई। किसी की खोपड़ी पड़ी थी। उसने बड़ी क्षमा मांगी। उसके शिष्यों ने कहाः "क्या नासमझी कर रहे हो? बुढ़ापे में सठिया गए? इस खोपड़ी से क्या माफी मांगनी है?" च्वांगत्सु ने कहाः "यह कोई छोटे लोगों का मरघट नहीं है; सिर्फ राजा- महाराजा यहां दफनाए जाते हैं। पता नहीं कौन हो और पीछे झंझट दे।" उन्होंने कहाः "अरे, यह मर चुका है। यह राजा हो कि महाराजा, या भिखारी--सब बराबर। मौत बिल्कुल समाजवादी है। तुम इसकी फिकर छोड़ो। तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? इतने बड़े ज्ञानी पुरुष... ?"
लेकिन च्वांगत्सु खोपड़ी को साथ ले आया। जिंदगी भर उसने उसको अलग न किया। उसको हमेशा बगल में रखे रहता। लोग कहते कि जरा अच्छा नहीं मालूम पड़ता, भद्दा लगता है यह। आप क्या करते हो यह?
च्वांगत्सु कहता, "इससे मुझे याद बनी रहती है कि, आज नहीं कल, मेरी खोपड़ी मरघट में पड़ी होगी। तुम जैसे लोग निकलेंगे तो माफी भी नहीं मांगेंगे, पैर मार देंगे और मैं कुछ भी न कर सकूंगा। तो क्या फर्क है, आज भी कोई सिर में मार जाता है, तो मैं उस खोपड़ी की तरफ देख लेता हूं। खोपड़ी तो यही है। अभी चमड़ी से दबी है, ढकी है; कल चमड़ी से ढकी नहीं होगी, और क्या फर्क होगा? और जब जिंदगी तो सत्तर साल की, अस्सी साल की है, लेकिन खोपड़ी पड़ी रहेगी, न मालूम कितनी सदियों तक मरघट में! कितने लोग निकलेंगे! कितने लोग ठोकर मारेंगे! कोई क्षमा भी न मांगेगा। जब अनंत काल तक यह व्यवहार होना ही है, तो सत्तर साल के लिए क्यों व्यर्थ विवाद उठाना!"
सात दिन के लिए भी अगर तुम तय कर लो, तुम दुबारा वही आदमी न हो सकोगे। खेल-खेल में भी अगर तुम यह तय कर लो सात दिन के लिए कि मैं मर गया हूं, तो भी तुम पाओगे कि एक नई समझ का जन्म हुआ।
लेकिन जो लोग जीवन के अनुभव से जान कर मृतवत हो जाते हैं, उनका तो कहना क्या! तब वे जीते हैं, जहां तुम जी रहे हो, तुम जैसे ही जीते हैं, सब काम करते हैं, जो जरूरी है वह होता है; लेकिन उनके जीवन में फिर उन्माद नहीं रह जाता। लोभ, काम, क्रोध उनके जीवन से तिरोहित हो जाते हैं। क्योंकि लोभ, काम, क्रोध तो जीवन की आकांक्षा के हिस्से हैं। जीवेषणा, लस्ट फॉर लाइफ--वह जो जीने की आकांक्षा है, वही तो लोभ, काम, क्रोध बन गई है। और जब तुम अपनी तरफ से ही मर रहे, अपनी मौत से ही मर रहे, तो कैसा लोभ, कैसा काम? कुछ करना नहीं पड़ता, वे अपने आप ही खो जाते हैं।
इसलिए इसको मैं कहता हूं कुंजीः "सीव भए ते ऊबरे, जीवत ते लूटै।"

"एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।" और जो बाहर के जगत के लिए मर गया, वह भीतर के जगत के लिए जाग गया। जो बाहर के जगत के लिए सो गया, वह भीतर के जगत में प्रतिष्ठित हो गया। और वहां जो मिलन हो रहा है, वह मिलन है एक का एक से। बाहर जो मिलन है, वह एक का अनेक से। भीतर जो मिलन है, वह एक का एक से है।
"एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।"
और अनेक झूठ हैं--जैसे अनेक लहरें सागर की झूठ हैं; एक सागर सच है। लहरें बनेंगी, मिटेंगी; सागर रहेगा। जो सदा रहे वही सच है। जो बने और मिटे वह सपना है। अनेक असत्य है, एक ही सत्य है।
"एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।"
जो एक से मिल गया, उसने सत्य पा लिया।
"प्रेम मगन लौलीन मन, सो बहुरि न आया।।"
और वहां जो घटना घटती है, वह बड़ी अनूठी है। प्रेमी, प्रेम-पात्र दोनों
ही वहां मिट जाते हैं और प्रेम ही शेष रह जाता है।
जब प्रेमी मिलता है, इस संसार में भी बाहर किसी प्रेम-पात्र से तो वे
दो हो जाते हैं। और फिर जीवन भर यही तो कोशिश होती है कि किस भांति एक हो जाएं, और नहीं हो पाते। इसलिए जीवन में दुख और पीड़ा होती है। वह हो ही नहीं सकता बाहर। एक होने का कोई उपाय नहीं, कितनी ही चेष्टा करो। जितनी चेष्टा करो उतनी असफलता हाथ लगेगी। इसलिए प्रेमी बड़े दुखी हो जाते हैं। उनकी आकांक्षा तो सच है। वहां वे आकांक्षा को पूरा करने की चेष्टा कर रहे हैं, वह स्थान गलत है। वह आकांक्षा भीतर तृप्त होगी। उनकी प्यास तो सही है, लेकिन जिस सरोवर पर वे बैठे हैं, वह सूखा है, वहां जल नहीं है।
जैसे ही कोई भीतर आया, वहां तत्क्षण जैसे एक ज्योति आए, और दूसरी ज्योति से मिल कर एक हो जाए। दो दीयों की ज्योतियों को पास रखो, दीये तो दो ही रहेंगे, ज्योतियां एक हो जाती हैं। दीये तो कैसे एक हो सकते हैं? दीया तो अनेक की दुनिया का हिस्सा है।
शरीर दीया है मिट्टी का। उसके भीतर जलती आत्मा की ज्योति है। तुम दीयों को एक करने की कोशिश कर रहे हो, बड़ी मुश्किल में रहोगे, अड़चन ही अड़चन हाथ लगेगी, असफलता अंत में, विषाद, संताप, चिंता, रोग... ; लेकिन कभी तुम स्वस्थ न हो पाओगे। ज्योति मिल सकती है, क्योंकि ज्योति निराकार है।
एक ज्योति दूसरी ज्योति के आकार से टकराती नहीं है; आकार है नहीं। एक ज्योति दूसरी ज्योति में ऐसे लीन हो जाती है जैसे वह सदा से एक थी। तुम फर्क भी न कर पाओगे। गंगा और यमुना भी मिलती है तो तुम फर्क कर सकते हो कि यह रही गंगा, यह रही यमुना, रंग अलग-अलग; लेकिन जब दो ज्योतियां मिलती हैं तो तुम कोई फर्क न कर पाओगे।
अंर्तज्योति! जब तुम भीतर जाते हो, अचानक एक लपक--और सिर्फ एक बचा। वहां न प्रेमी है न प्रेयसी है, न भक्त है न भगवान है; सिर्फ प्रेम ही बचा, ऊर्जा बची, ज्योति बची।
"प्रेम मगन लौलीन मन सो बहुरि न आया।"
और जो ऐसा प्रेम-मग्न हो गया, वह फिर दुबारा नहीं आता। उसके आने की जरूरत न रही, उसका पाठ पूरा हो गया।
"कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया।"
और जो ऐसे अंतस में प्रवेश कर गया, उसकी ज्योति थिर हो गई, अब उसमें कोई कंपन नहीं--निश्चल! कोई हवा के झोंके अब उसे कंपाते नहीं; क्योंकि भीतर कोई हवा के झोंके पहुंचते ही नहीं।
जब तक तुम बाहर हो, तब तक तुम कंपते ही रहोगे। वहां हजार तूफान चल रहे हैं। लेकिन जब तुम भीतर अपने घर में लौट आए, वहां कोई तूफान कभी नहीं पहुंचता। वहां निश्चल... !
"कहै कबीर निहचल भया, निर्भय पद पाया।" और जब चेतना निश्चल होती है, तभी निर्भय होती है; इसके पहले निर्भय हो नहीं सकती, भय से कंपती रहती है। "संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।"
कबीर कहते हैं, जिस दिन सतगुरु ने यह बात समझा दी, यह कुंजी थमा दी, उसी दिन सब शंका मिट गई; उसी दिन सब मन के संदेह खो गए।

लेकिन समझ बड़ी कठिन है। बुद्धि की समझ का नाम समझ नहीं। तुम समझ रहे
हो जो मैं समझा रहा हूं, इसमें कोई अड़चन नहीं है, बात सीधी साफ है। तुम्हारी बुद्धि कहती है, ठीक है; मगर इससे तुम्हारा संशय न मिटेगा। अभी कहेगी, ठीक है; घड़ी भर बाद हजार संशय खड़ी कर देगी। क्योंकि बुद्धि की समझ असली समझ नहीं है। जब तुम अपने तन-प्राण से, जब तुम हृदय से, जब तुम अपनी समग्रता से समझोगे--तभी। सदगुरु के समझाने से नहीं; तुम्हारी समग्रता की समझ से... । सदगुरु तो समझाते रहे हैं और तुम न मालूम कितने सदगुरुओं को पा कर आए हो और समझे नहीं। तुम्हारी समग्रता से, प्राणपन से, तुम्हारे पूरे अस्तित्व से जब तुम समझोगे... ।
"संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया।"
समझाने को कुछ है भी नहीं; छोटी सी बात हैः "कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
तीसरा प्रवचन

मन के जाल हजार

सूत्र

चलत कत टेढ़ौ रे।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदै, तू दुरगंधि कौ बेढ़ौ रे।।
जे जारै तौ होइ भसम तन, रहित किरम उहिं खाई।
सूकर स्वान काग को भाखिन, तामै कहा भलाई।।
फूटै नैन हिरदै नाहिं सूझै, मति एकै नहिं जानी।
माया मोह ममता सूं बांध्यो, बूड़ि मुवौ बिन पानी।।
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहिं अयांना।
कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयांना।।

मन की चाल समझ लें, तो सब समझ लिया। मन को पहचान लिया, तो कुछ और पहचानने को बचता नहीं। मन की चाल समझते ही चेतना अपने में लीन हो जाती है। जब तक नहीं समझा है, तभी तक मन का अनुसरण चलता है। मन के पीछे चलता है आदमी यही मान कर कि मन गुरु है--जो कहता है, ठीक कहता है; जो बताता है, ठीक बताता है। एक बार अपने मन पर संदेह आ जाए, तो जीवन में क्रांति की शुरुआत हो जाती है। और मजा यही है कि मन सभी पर संदेह करता है। और तुम कभी मन पर संदेह नहीं करते। मन पर तुम्हारी श्रद्धा अपूर्व है; उसका कोई अंत नहीं। और मन रोज तुम्हें गड्ढे में डाले, तो भी श्रद्धा नहीं टूटती।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, लोगों की श्रद्धा उठ गई है। मैं उनसे कहता हूं कि लोगों की जैसी श्रद्धा मन पर है, उसे देख कर ऐसा नहीं लगता कि लोगों की श्रद्धा उठ गई है। कितना ही भटकाए मन, कितना ही सताए मन, कितना ही भरमाए मन--श्रद्धा नहीं टूटती। श्रद्धा तो भरपूर है--गलत दिशा में है। आज तक मुझे कोई अश्रद्धालु आदमी नहीं मिला। श्रद्धा गलत दिशा में हो सकती है; जिस पर नहीं आनी चाहिए, उस पर हो सकती है--लेकिन अश्रद्धालु कोई भी नहीं है।
और दो ही श्रद्धाएं हैं; या तो मन की श्रद्धा है और या आत्मा की श्रद्धा है। या तो तुम अपने पर भरोसा करते हो--अपने का अर्थ है, जहां मन की कोई भनक भी नहीं, जहां एक विचार भी नहीं तिरता, जहां शुद्ध चेतना है--या तो उस शुद्ध चेतना का तुम्हारा भरोसा है। अगर उसका भरोसा है, तो तुम जीवन में कहीं भी गड्ढे न पाओगे; तुम्हारा कोई पैर गलत न पड़ेगा। और या फिर आदमी भरोसा करता है मन पर। तब तुम गड्ढे ही गड्ढे पाओगे; तब तुम जीवन में जहां भी जाओगे, भटकोगे ही--क्योंकि मन की चाल ही ऐसी है।
मन की चाल को समझ लें।
एक, कि मन तुम्हें देखने नहीं देता। मन तुम्हें अंधा रखता है। मन तुम्हारी आंखों को धुंधला रखता है, धुएं से भरा रखता है। वह धुआं ही विचार है। इतनी तीव्रता से मन विचारों को चलाता है कि तुम्हें जगह भी नहीं मिलती कि तुम देख पाओ, कि तुम्हारे बाहर क्या हो रहा है, कि तुम्हारे जीवन में क्या घट रहा है। मन तुम्हें विचारों में उलझाए रखता है। जैसे छोटे बच्चे को हम खिलौने दे देते हैं--फिर उसकी मां मर भी रही हो, तो भी वह अपने खिलौने से खेलता रहता है, खिलौनों में उलझा रहता है।
मन तुम्हें विचार देता है; विचार खिलौने हैं। खिलौनों में भी थोड़ा- बहुत सत्य है, विचारों में उतना भी नहीं। लेकिन एक खिलौने से तुम चुक भी नहीं पाते कि मन तत्क्षण दूसरा निर्मित कर देता है। इसके पहले कि तुम जागकर देख पाओ, मन तुम्हें नया खिलौना दे देता है। पुराने से तुम ऊब जाते हो, तो मन नई उलझनें सुझा देता है। एक उपद्रव बंद भी नहीं हो पाया कि मन दस उपद्रवों में रस जगा देता है। और यह इतनी तीव्रता से होता है कि दोनों घटनाओं के बीच खिड़की बनाने लायक भी जगह नहीं मिलती, जहां से तुम देख लो कि जिंदगी में हो क्या रहा है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन जब बहुत बूढ़ा हो गया, नब्बे वर्ष
का हुआ, तब उसका बड़ा भरा-पूरा परिवार था। उसका बड़ा बेटा ही सत्तर वर्ष पार कर रहा था। उसके बेटों के बेटे पचास पार रहे थे। उसके बेटों के बेटे विवाहित हो गए थे। उनके भी बच्चे हो गए थे। अचानक एक दिन बूढ़े नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने फिर से शादी करने का तय कर लिया है। पत्नी मर चुकी थी। पहले तो लड़कों ने मजाक समझी; हंसे कि "अब इस बुढ़ापे में... । हम भी बूढ़े हो गए हैं। अब शादी! पिताजी मजाक कर रहे होंगे।" लेकिन नसरुद्दीन ने जब बार-बार दुहराया, तो उन्होंने गंभीरता से बात ली। और जब नसरुद्दीन ने एक दिन सुबह आकर घोषणा ही कर दी कि "मैंने लड़की भी तय कर ली", तब जरा सोचना पड़ा। सारा परिवार इकट्ठा हुआ। उन्होंने विचार किया कि इससे बड़ी फजीहत होगी, लोग हंसेंगे। ऐसे ही नसरुद्दीन की वजह से लोग जिंदगी भर हंसते रहे; और अब यह बुढ़ापे में आखिरी उपद्रव खड़ा कर रहे हैं। क्या कहेंगे लोग? बड़े लड़के को सबने कहा कि तुम्हीं जाकर कहो। बड़े लड़के ने जो सुना तो चकित हो गया। सुना कि सामने ही एक रंगरेज की लड़की से तय किया है नसरुद्दीन ने। लड़की की उम्र मुश्किल से सोलह साल है। उसने कहा, "यह नहीं हो सकता। पापा, यह बंद करो। यह सोच ही छोड़ दो। यह भी तो सोचो, उस लड़की की उम्र सिर्फ सोलह साल है।" नसरुद्दीन ने कहा, "अरे पागल! सोलह साल ही तो शादी की उम्र है। और जब फिर मैंने तेरी मां से शादी की थी, तब उसकी भी उम्र सोलह साल ही थी। इसमें बुरा क्या हुआ जा रहा है?"
मन तर्क दे रहा है। मन पीछे लौट कर नहीं देखता। मन अपनी तरफ नहीं देखता, मन सिर्फ दूसरे की तरफ देखता है।
लड़के बहुत परेशान हुए और बड़े बूढ़ों से सलाह ली। डॉक्टर से भी पूछा। डॉक्टर ने कहा, "यह बहुत खतरनाक है। इस उम्र में शादी जीवन के लिए खतरा हो सकती है।"
फिर बेटे को समझा-बुझा कर भेजा। बेटे ने कहा कि "हम सब सलाह-मशविरा किए हैं। डाक्टर कहता है, जीवन के लिए खतरा हो सकता है। जीवन को दांव पर मत लगाओ।" नसरुद्दीन ने कहाः "अरे पागल, यह लड़की मर भी गई तो कोई लड़कियों की कमी है? दूसरी लड़की खोज लेंगे।"
मन कभी पीछे की तरफ देखता नहीं--अपनी तरफ नहीं देखता है। मन सदा दूसरे में खोजता है सुख, दूसरे पर थोपता है दुख; दूसरे से पाना चाहता है शांति, दूसरे से ही पाता है अशांति। सदा ही नजर दूसरे पर लगी है, जब कि नजर अपने पर लगी होनी चाहिए। तो मन के जगत का उपद्रव, मूल आधार दूसरे पर दृष्टि है। दूसरे से क्या प्रयोजन है? दूसरा मौलिक नहीं है, मौलिक तो तुम हो; लेकिन मन सदा भरमाता है। अगर तुम दुखी हो तो मन कहता है, जरूर कोई तुम्हें दूसरा दुखी कर रहा है। तो तुम किसी न किसी पर दुख थोप देते हो। जब तुम सुखी होते हो तब भी मन कहता है, किसी दूसरे के कारण सुख मिल रहा है। तब तुम सुख दूसरे पर थोप देते हो; और मजा यह है कि दुख भी अपने कारण मिलता है, सुख भी अपने कारण मिलता है। नरक भी भीतर है, और स्वर्ग भी भीतर। अंततः तुम ही निर्णायक हो; क्योंकि तुम्हारी व्याख्या पर ही निर्भर करेगा कि क्या सुख है और क्या दुख है। चाहो तो सुख दुख जैसा हो जाता है; चाहो तो दुख सुख जैसा हो जाता है। क्षणभर में बदल जाती है बात।
दूसरा निर्णायक नहीं है; लेकिन मन सदा दूसरे पर मन को अटकाए रखता है।
और जन्मों-जन्मों से तुम यही कर रहे हो, और दूसरे पर थोप रहे हो। जहां से सुख-दुख उठते हैं, अगर वहां नजर जाए, तो सुख भी छोड़ दोगे और दुख भी छोड़ दोगे। तब जो शेष रह जाता है, वही आनंद है। तब जो सुगंध तुम्हें मिलेगी, तब जो सुवास तुम्हारे जीवन को भर देगी--वही मोक्ष है।
जब तुम दूसरे पर देखते हो कि दूसरा सुख दे रहा है तो तुम्हारी कोशिश होती है दूसरे को बदलने की; स्वभावतः, जो सुख देता है उसको बदलता है, ताकि दुख न मिले। अनंत लोग हैं। तुम उनको बदलने में लगे हो। पति पत्नी को बदल रहा हो, पत्नी पति को बदल रही है; बाप बेटे को बदल रहा है, बेटा भी कोशिश में लगा है कि बाप को बदल दे; मित्र मित्र को बदल रहे हैं--सब एक-दूसरे को बदलने में लगे हैं।

दूसरे को तुम कैसे बदल सकते हो? दूसरा स्वतंत्र है। उसकी अपनी नियति है। दूसरे का अपना आधार है, अपना केंद्र है, दूसरे का अपना स्रोत है, जहां से उसके मनोभाव उठते हैं। तुम दूसरे को नहीं बदल सकते। तुम अगर किसी को बदल सकते हो, तो स्वयं को। लेकिन वहां तो नजर ही नहीं। मन वहां देखने ही नहीं देता।
जैसे ही कोई व्यक्ति स्वयं को देखता है, वह पाता है सुख भी यहीं से उठते हैं, दुख भी यहीं से उठते हैं। न केवल यही, जल्दी ही उसको दिखाई पड़ने लगता है कि हर सुख के साथ उसका दुख जुड़ा है; हर फूल के पास उसका कांटा है; और हर दिन के पीछे छिपी उसकी रात है। जैसे-जैसे तुम भीतर आते हो, वैसे-वैसे साफ होने लगता है कि अगर तुमने सुख चुना, तो दुख भी चुन लिया। हर सुख का अपना दुख है। हर स्वर्ग के पास उसका नरक है; जरा भी दूर नहीं--संयुक्त हैं। एक ही द्वार है दोनों का। जैसे ही तुमने सुख को चुना, तत्क्षण तुमने दुख को चुन लिया--जैसे ये एक ही सिक्के के दो पहलू हों।
जिस दिन यह दिखाई पड़ जाता है--पहला अनुभव कि सुख-दुख भीतर उठते हैं, दूसरा अनुभव कि हर सुख और दुख संयुक्त हैं--तब दुख और सुख में कोई भी भेद नहीं रह जाता। और जो आदमी जान लेता है कि स्वर्ग और नरक में कोई भी भेद नहीं, वह दोनों को छोड़ देता है।
मन कोशिश करता है, दुख को छोड़ने की और सुख को बचाने की, ज्ञानी दोनों
को छोड़ देता है; क्योंकि दोनों या तो साथ बचते हैं, या साथ जाते हैं।
तुम सिक्के का एक पहलू बचाओगे--कैसे बचा पाओगे? दूसरा पहलू भी बच जाएगा। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकते हो कि जो पहलू तुम्हें पसंद है उसे ऊपर कर लो, जो पहलू तुम्हें पसंद नहीं है उसे नीचे कर दो; लेकिन वहीं दूसरा छिपा है।
हर दीये के तले अंधेरा है, और हर सुख के नीचे छिपा दुख है। देर-अबेर वह
जो नीचे छिपा है, प्रकट होगा। और जीवन का एक महत्वपूर्ण नियम है कि अगर तुमने सुख का ऊपर रखा और सुख को भोगा तो सुख चुक जाएगा; और जब सुख चुक जाएगा तो दुख उठना शुरू हो जाएगा। जिसको तुमने भोगा, वह चुकेगा; और जिसको नहीं भोगा, वह बचा हुआ है--उसको कौन भोगेगा? एक पहलू तुमने खर्च कर लिया; अब दूसरा पहलू बचा है, अब उसे भी भोगना पड़ेगा।
यह दूसरी प्रतीति है भीतर जाते यात्री की कि सुख-दुख संयुक्त हैं। तो इसका अर्थ हुआ कि सुख दुख हैं, उनमें जरा भी भेद नहीं। भेद मन की भ्रांति थी। मन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल के कारण भेद मालूम पड़ता था। सुख-दुख दोनों छूट जाते हैं। छोड़ना भी नहीं पड़ता। यह एहसास, यह प्रतीति, यह अनुभव कि दोनों एक हैं--फिर छोड़ना भी नहीं पड़ता। जैसे अंगारा हाथ में रखा हो--छोड़ना पड़ेगा? समझ में आया कि अंगारा है, कि छूट जाएगा। जैसे घर में आग लगी हो, तो निकलने के लिए कुछ प्रयास करना पड़ेगा? पता चला कि आग लगी है कि तुम बाहर हो जाओगे। तुम फिर यह भी न पूछोगे कि कहां से बाहर जाऊं, रीति-रिवाज क्या है, सभ्य मार्ग क्या होगा? तुम खिड़की से छलांग लगा कर निकल जाओगे; तुम यह न पूछोगे कि खिड़की से निकलना उचित-अनुचित, शिष्ट-अशिष्ट है। जब घर में आग लगी हो तो शिष्टाचार को कोई पूछता है? तब तुम कहीं से भी छलांग लगाकर निकल जाओगे। तुम बाहर हो जाओगे--घर में आग लगी है, यह एहसास भर हो जाए।
जैसे कोई भीतर जाता है, वैसे ही सुख-दुख एक ही हो जाते हैं, तत्क्षण छूट जाते हैं; जो शेष रह जाता है, वही मोक्ष है; जो शेष रह जाता है वही तुम हो; जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। लेकिन मन तुम्हें भीतर नहीं जाने देता; मन कहता है, दूसरे ने दुख दिया। मन कहता है, दूसरे ने सुख दिया। मन दूसरे पर अटकाए रखता है, यह मन की पहली कुशलता है।
दूसरी कुशलता मन की, कि वह हमेशा आधे को दिखलाता है और आधे को नहीं देखने देता। जैसे कि चांद को हम देखते हैं, तो आधा चांद दिखाई पड़ता है, आधा नहीं दिखाई पड़ता; उस तरफ का पहलू छिपा रहता है। मन जो भी देखता है, हमेशा आधे को देखता है। मन पूरे को नहीं देख सकता। चांद तो बड़ी चीज है। तुम्हारे हाथ में एक कंकड़ भी रख दें, छोटा सा, एक रेत का कण रख दें, उसको भी तुम पूरा नहीं देख सकते, आधा ही दिखेगा; आधा उस तरफ जो है, वह छिपा रहेगा। मन आधे को ही देख सकता है। मन आधे को देखने की व्यवस्था है।

इसलिए तो मन के कारण द्वैत पैदा होता है; क्योंकि आधे को देखता है, उसे समझता है; यह पूरा है; फिर दूसरे आधे को देखता है, उसे समझता है, यह पूरा है--और दोनों को कभी साथ तो देख नहीं सकता। इसलिए उनको एक कैसे माने? इसलिए जहां एक है वहां मन दो देखता है। और जब तुमने एक की जगह दो देख लिया, संसार खड़ा हो जाता है।
तुम देखते हो, यह आदमी मित्र है और वह आदमी शत्रु है; लेकिन मित्र में शत्रु छिपा है। मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु में मित्र छिपा है। शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है--कोई अड़चन नहीं है, कोई बाधा नहीं है। तुम्हारे प्रेम में घृणा छिपी है, घृणा में प्रेम छिपा है। लेकिन मन
दो करके देखता है--घृणा को अलग, प्रेम को अलग; शत्रु को अलग, मित्र को अलग; सुख को अलग, दुख को अलग। और जब तुम एक को दो करके देख लेते हो, फिर तुम जो भी करोगे वह गलत होगा। बुनियाद से गलती शुरू हो गई। प्रारंभ से ही भूल हो गई। मुल्ला नसरुद्दीन एक रात शराब पीकर घर लौट रहा है।
शराबी को एक की जगह अनेक चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। चीजें अनेक हो नहीं जातीं। अगर तुमने कभी शराब पी है या भांग के नशे में आ गए हो, तो तुम्हें पता होगा कि एक चीज दो दिखाई पड़ने लगती हैं, तीन दिखाई पड़ने लगती हैं, चार दिखाई पड़ने लगती हैं। जैसे-जैसे नशा बढ़ता है--क्या होता है? जैसे- जैसे नशा बढ़ता है, भीतर तुम्हारी चेतना कंपने लगती है। उसकी जो थिरता है खो जाती है, चैन है वह खो जाता है, चेतना कंपने लगती है। और जब चेतना कंपने लगती है, तो उसके कंपन के कारण एक चीजें बहुत होकर दिखाई पड़ती हैं। जैसे चांद झील पर प्रतिबिंब बना रहा है; झील शांत है--अकंप, तो एक चांद दिखाई पड़ता है झील में। एक कंकड़ फेंक दो, झील में लहरें उठ गई हैं, कंपन हो गया, झील कंप गई--अब एक चांद हजार चांद में टूट गया। अगर तुम झील को बहुत ही कंपा दो तो चांद दिखाई ही न पड़ेगा, बस चांद के टुकड़े ही टुकड़े पूरी झील पर फैल जाएंगेः चांद एक है; झील कंप गई।
नशा तुम्हारी चेतना को कंपा देता है। झील कंप गई है--अब चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन घर आया है, नशे में डूबा है। ताले में चाबी डालने की कोशिश करता है, लेकिन ताले में चाबी नहीं जाती। छेद और चाबी को मिला नहीं पाता। हाथ कंप रहे हैं। एक पुलिसवाला रास्ते पर खड़ा देख रहा है। आखिर उसने कहा, "नसरुद्दीन, क्या मैं सहायता करूं? ताले में चाबी डाल दूं?" नसरुद्दीन ने कहाः "अगर सहायता ही करनी है तो जरा तुम मकान को सम्हाले रखो, तो मैं चाबी डाल लूं।" नशेलची को यह नहीं दिखाई पड़ता है कि मैं कंप रहा हूं; उसे दिखाई पड़ता है कि मकान कंप रहा है--"मकान को सम्हाले रखो!"
एक और दिन ऐसा ही नशा करके नसरुद्दीन घर लौटता था, एक वृक्ष से टक्कर
हो गई। बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वृक्ष तो एक था, उसको दो दिखाई पड़ रहे थे। तो वह दोनों के बीच से निकलने की कोशिश कर रहा था। जैसे ही कोशिश करता, सिर टकरा जाता। वृक्ष तो एक ही था। अनेक बार कोशिश की। तब वह जोर से चिल्लाया कि मारे गए, यह तो बड़ा जंगल है। यह कोई एक वृक्ष नहीं है यहां, जिसमें से निकल जाओ; बहुत वृक्ष हैं।
बड़ी पुरानी कथा है। एक कुत्ता एक राजमहल में प्रवेश कर गया। उस महल के राजा ने उस महल को सिर्फ दर्पणों से बनाया था। दीवाल पर दर्पण ही दर्पण थे। पूरा कांच का ही बना था। कुत्ता मुसीबत में पड़ गया। जहां देखा, अनेक कुत्ते दिखाई पड़े। घबड़ा गया, यह तो कोई एकाध कुत्ता नहीं है, कुत्तों की पूरी सेना मालूम पड़ती है। और भागने का उपाय नहीं दिखता; चारों तरफ घेरे खड़े हैं। और जैसा कि कुत्तों की आदत होती है, कि पहले उसने डराने की कोशिश की कि डर जाएं ये लोग; लेकिन जितना उसने कुत्तों को डराया, उतना कुत्तों ने उसे डराया, क्योंकि वे उसी के प्रतिबिंब थे। जैसे ही कुत्ता झपटा और भौंका, हजारों कुत्ते झपटे और भौंके। क्योंकि वे वहां थे ही नहीं, वे उसी की छायाएं थे। कुत्ता दर्पणों से टकराया, झपट्टा मारा, उसके प्रतिबिंब कुत्ते से टकराए, सिर लहूलुहान हो गया; सुबह कुत्ता मरा हुआ पाया गया! ... वहां कोई भी न था।

जहां कुछ भी नहीं है, वहां भी तुम्हारे भीतर के कंपन झूठे अस्तित्व को निर्मित कर लेते हैं। उस झूठे अस्तित्व को ही हमने माया कहा है। माया बाहर नहीं है। तुम्हारे कंपते हुए चित्त के कारण, जो है, वह तो एक है, लेकिन वह अनेक होकर दिखाई पड़ रहा है। और तुम्हारी कोशिश वही है जो मुल्ला नसरुद्दीन ने सिपाही से कही थी कि जरा तुम मकान को सम्हाल लो, तो मैं ताले में चाबी डाल दूं।
तुम्हारी भी कोशिश यही है कि कैसे मकान को थिर कर लिया जाए। कोई कभी नहीं कर पाया। ज्ञानियों ने मकान की फिकर छोड़ दी; अपने को थिर कर लिया--सब थिर हो जाता है। जरूरत है कि नशा उतर जाए। मकान तो थिर ही है, वह कभी हिला न था। यह अस्तित्व कभी हिला ही नहीं है। यह बिल्कुल थिर है। यह अपने में बिल्कुल लीन है। यह स्वभाव में डूबा है। तुम हिल गए हो। लेकिन तुम अस्तित्व को सम्हालने की कोशिश कर रहे हो।
मन द्वैत का सूत्र है, और अनेक का भी सूत्र है। मन से गुजर कर चीजें वैसे ही हो जाती हैं, जैसे सूरज की किरण को अगर तुम एक कांच के टुकड़े से गुजरने दो। कई पहलुओं का कांच का टुकड़ा ले लो--प्रिज्म उस टुकड़े को कहा जाता है। उसमें तराशे हुए कई पहलू हैं। सूरज की किरण गुजरती है उससे। जब आती है तो एक होती है; जब उससे बाहर निकलती है तो सात हो जाती हैं। इसलिए तो इंद्रधनुष निर्मित होता है। इंद्रधनुष निर्मित इसलिए हो जाता है कि हवा में वर्षा के दिनों में पानी के कण लटके होते हैं। वे पानी के कण प्रिज्म का काम करते हैं। उन पानी के कणों में से सूरज की किरण गुजरती है, टूट कर सात हो जाती हैं, सात रंग दिखाई पड़ने लगते हैं।
जगत तुम्हारे मन से गुजरा हुआ इंद्रधनुष है। किरण तो परमात्मा की एक है। उसकी रोशनी एक है। अस्तित्व का स्वभाव एक है। अस्तित्व एक है। लेकिन तुम्हारे मन की लटकी हुई बूंद से, एक गुजर कर सात में टूट जाता है, सब चीजें खंड-खंड हो जाती हैं, और मन कहता है यही सत्य है। और मन तुम्हें कभी लौटकर नहीं देखने जाता, जहां से सात पैदा हुए, जहां एक से सात का जन्म हुआ।
सारे ध्यान के प्रयोग मन से पीछे लौटने के प्रयोग हैं।
मन की तीसरी टेढ़ी चाल है कि मन बड़ा तर्कनिष्ठ है। वह हर चीज के लिए तर्क देता है, और तर्क ऐसी सुगमता से देता है कि तुम्हें भी लगने लगता है कि ठीक ही तो बात है।
अस्तित्व तर्क से बहुत बड़ा है। और मन छोटे-छोटे तर्क के आंगन बना लेता है--साथ-सुथरे; सब ठीक-ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन आंगन के पार जो अस्तित्व है, वह अतर्क्य है। वह तर्क जैसा नहीं है। वह गणित का कोई प्रयोग नहीं है। वह गणित से ज्यादा काव्य है। काव्य से भी ज्यादा रहस्य की अनुभूति है।
तो मन कहता है, "ईश्वर हो ही नहीं सकता। कहां है दिखाओ? क्योंकि जो भी है, वह दिखाया जा सकता है। और तुम तो कहते हो ईश्वर ही ईश्वर है, वही सब जगह है--तो दिखाओ, मौजूद करो।" मन ने एक सवाल उठाया जिसका जवाब तुम न दे पाओगे, क्योंकि ईश्वर दिखाया नहीं जा सकता; वह देखने वाला है! वह बाहर दृश्य की तरह नहीं है, तुम्हारे भीतर द्रष्टा की तरह है। और मन ने एक सवाल उठाया जो कि बड़ी अड़चन का है; वह कहता है, दिखा दो। न दिखा पाओगे तो मन हंसेगा, और कहेगाः मूढ़ हो, नासमझ हो, अज्ञानी हो, अंधविश्वासी हो; जो दिखाया नहीं जा सकता उसको मानते हो। मन कहता है, हम तो अनुभव को मानते हैं; और जब तक अनुभव न हो जाए तब तक हम मानते नहीं।
मन ठीक ही कहता लगता है, तर्क में कहीं भी भूल-चूक नहीं है। भूल-चूक है
तो इतनी बुनियादी है कि जब तक तुम मन से थोड़े सरकोगे न, तुम्हारी समझ में न आएगी।
मन कहता है कि दृश्य की तरह परमात्मा को दिखा दो। लेकिन परमात्मा का स्वभाव दृश्य की तरह नहीं है। परमात्मा का स्वभाव द्रष्टा का है, साक्षी का है। परमात्मा चैतन्य है, वस्तु नहीं है। चेतना को देखा नहीं जा सकता; चेतना में लीन हुआ जा सकता है। चेतना को गणित से सिद्ध नहीं किया जा सकता; चेतना का तो रहस्य की एक अनुभूति में अनुभव किया जा सकता है। चेतना को प्रयोगशाला में पकड़ा नहीं जा सकता; अगर पकड़ने की कोशिश की तो तुम खो दोगे।

एक जिंदा आदमी को ले जाओ प्रयोगशाला में अंग-अंग काट डालोः हड्डी मिलेगी, मांस-मज्जा मिलेगी, चमड़ी मिलेगी, खून मिलेगा; एल्युमिनियम, लोहा, सब धातुएं मिल जाएंगी; बस एक चीज न मिलेगी--आत्मा; लाश मिलेगी, जीवन न मिलेगा। क्योंकि तुमने काटा, उसी वक्त जीवन तिरोहित हो जाता है। ऐसे ही जैसी कि एक फूल का कोई विश्लेषण करे। तुम्हें मैं एक फूल दिखाऊं, कहूं कि देखो, यह गुलाब का फूल कितना सुंदर है, और तुम कहो, "कहां है सौंदर्य? गुलाबी रंग दिखाई पड़ता है, मान लेते हैं; पंखुड़ियां हैं, कोमल हैं, मान लेते हैं; गंध है, मान लेते हैं--लेकिन सौंदर्य कहां? सौंदर्य दिखाओ, प्रयोगशाला में सिद्ध करो।" तो फूल को तुम तोड़ डालो जीवित पंखुड़ियां मुर्झा जाएंगी, मृत हो जाएंगी। जहां रस की धार बहती थी, वहां रस की धार सूख जाएगी। जहां से सुगंध उठती थी, जल्दी ही सुगंध तिरोहित हो जाएगी। फिर पंखुड़ियों का तुम रासायनिक विश्लेषण कर लो, तो पांच-सात छोटी-छोटी बोतलों में लेबल लगा कर तुम बता दोगे कि उसमें इतनी मात्रा में फलां पदार्थ है, इतनी मात्रा में फलां पदार्थ है। लेकिन ऐसी तो एक बोतल न होगी उनमें, जिसमें तुम कहो कि इतनी मात्रा में सौंदर्य है।
मन तर्कनिष्ठ है। जीवन एक रहस्य है। जीवन कोई गणित नहीं है। जीवन किसी दुकानदार का हिसाब नहीं है। जीवन तो किसी प्रेमी की अनुभूति है। जीवन तो किसी कवि का स्वर है। जीवन तो किसी संगीतज्ञ की लहर है। जीवन सौंदर्य जैसा है; काव्य जैसा है, प्रेम जैसा है। जीवन परम रहस्य है, और मन कहता है गणित।
मन की चाल बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है। इसको ख्याल में ले लें, फिर कबीर का यह पद एकदम साफ होने लगेगा।
"चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।"
कबीर कहते हैं, "ए मन, टेढ़ा-टेढ़ा क्यों चलता है, सीधा क्यों नहीं जाता?"
और मन बड़ा टेढ़ा-टेढ़ा चलता है।
तुमने कभी शराबी को चलते देखा है? --सीधा नहीं चल सकता, टेढ़ा-टेढ़ा चलता रहा है; एक पैर इस दिशा में, दूसरा पैर दूसरी दिशा में। इसलिए तो अक्सर वह नाली में गिरा हुआ पाया जाता है। तुम बीच सड़क में शराबी को गिरा हुआ न पाओगे; नाली में गिरा हुआ पाया जाता है। टेढ़ा-टेढ़ा चलता है। टेढ़ेपन ये हैं कि जहां रहस्य है, वहां तर्क उठाता है। तर्क बड़ी टेढ़ी चीज है। तर्क से ज्यादा टेढ़ा इस संसार में कुछ भी नहीं है। क्योंकि तर्क से तुम, जो है, उसे सिद्ध कर सकते हो कि नहीं है। तर्क से, जो नहीं है, उसे तुम सिद्ध कर सकते हो कि वह है। लेकिन ये हवाओं में बनाए गए घर हैं; इनका अस्तित्व में कोई अर्थ नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा स्कूल से पढ़ कर लौटा, विश्वविद्यालय से शिक्षित हुआ था। सबसे बड़ी उपाधि लेकर घर आया। तो जैसा कि अक्सर युनिवर्सिटी से लौटने वाले बच्चों को जल्दी होती है दिखाने की कि वे कितना जानकर आए हैं, कितना सीख कर आए हैं, प्रभावित करने का मन होता है। और युनिवर्सिटी से लौटने वाले सभी बच्चे मां-बाप को मूढ़ समझते हैं। सांझ को खाना खाने बैठे थे, नसरुद्दीन की पत्नी ने लाकर दो अमरूद एक प्लेट में रखे। बेटे ने कहा कि देखें, विश्वविद्यालय में कैसी अदभुत बातें सिखाई जाती हैं! मैं तर्क का स्नातक हूं।" उसने अपनी मां को कहा कि "इसमें, प्लेट में कितने अमरूद हैं?" उसकी मां ने कहा, "दो हैं"। बेटे ने कहा कि मैं सिद्ध कर सकता हूं तर्क से कि तीन हैं। मां उत्सुक हुई। नसरुद्दीन तो बैठा रहा चुपचाप, देखता रहा। मां उत्सुक हुई। उसने कहा, सिद्ध करो। तो बेटे ने कहा कि देखो, यह अमरूद एक, यह अमरूद दो--दो और एक मिल कर कितने होते हैं? मां ने कहा कि बात तो ठीक है; दो और एक मिल कर तीन होते हैं। मां सीधी, भोली-भाली-- थोड़ी मुश्किल में पड़ गई। बेटे ने नसरुद्दीन की तरफ देखा। नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल ठीक। एक हम ले लेंगे। दो तेरी मां खा लेगी, तीसरा तू खा लेना।

तर्क हवा है; उसे खाया नहीं जा सकता। न तर्क को जीया जा सकता है, न तर्क
को भोगा जा सकता है। लेकिन तर्क मन पर भारी है। और मन तर्क से चल रहा है। इसलिए जीवन से तुम वंचित हो।
जीवन सीधा-सीधा है। उससे सरल और सुगम कुछ भी नहीं है। तर्क टेढ़ा-टेढ़ा है। इसलिए कबीर कहते हैं, "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे"--सीधा क्यों नहीं चलता? साफ रास्ता है, इधर-उधर क्यों उतरता है? यहां-वहां की बहकी-बहकी बातें क्यों करता है?
अपने मन को समझने की कोशिश करना। जब तक तुम तर्क ही करते रहोगे तब तक समझना, तुम टेढ़े-टेढ़े जा रहे हो; तब तक जो सीधे-सीधे मिलता था, उससे तुम वंचित रहोगे।
मंदिर के द्वार खुले हैं। राह सीधी-साफ है। जरा भी कोई बाधा नहीं है। लेकिन मन तुम्हें यहां-वहां उतार ले जाता है। मन तुम्हें राह से उतार देता है। मन तुम्हें बेराह कर देता है, और इतनी कुशलता से करता है कि तुम्हें कभी ख्याल भी नहीं आ पाता।
एक मित्र मेरे पास आए, कुछ दिन पहले। कहा कि "मन बड़ा अशांत है, और शांति एकदम आवश्यक है; नहीं, नहीं तो मैं जी न सकूंगा। आत्मघातक का मन होता है।" धनी है, सब सुख-सुविधा है। राजनीति के बड़े पदों पर रहे हैं। मैंने उनसे कहा, तो फिर प्रार्थना करो। कहने लगे, प्रार्थना में मन नहीं लगता।... "ध्यान करो।" कहने लगे, ध्यान की बिल्कुल इच्छा नहीं होती।
मन अशांत है, लेकिन ध्यान में मन नहीं लगता! मन अशांत है तो भी मन की ही सुन रहे हो। मन आत्महत्या के करीब ले आया है। कहता हूं, प्रार्थना करो; कहते हैं, चाह नहीं उठती मन में। जो आत्महत्या के करीब ले आया है, उस पर भरोसा नहीं छूटता। मन अशांत है; श्रद्धा उसी पर है! जिसने इतनी अशांति दी, मैं कहता हूं, इसे छोड़ो, इसकी मानना बंद करो। वे कहते हैं कि मैं मन के ऊपर जाने के लिए आप के पास नहीं आया हूं; मैं तो सिर्फ मन की शांति चाहता हूं। अब यहीं बड़ा खेल है और यहीं मन के तर्क उलझा देते हैं। मन कहता है कि
मन की शांति चाहिए, और मन की शांति कभी होती नहीं; क्योंकि जब तक मन होता है तब तक शांति होती ही नहीं।
मन ही तो अशांति है। तो मन कभी शांत होने वाला है? तुमने कभी सुना कि किसी का मन शांत हो गया हो?
यह तो ऐसे ही है, जैसे कि तुम चिकित्सक के पास जाकर पूछो कि मेरी बीमारी को स्वस्थ होने का कोई उपाय बता दो। तुम स्वस्थ होओगे, बीमारी स्वस्थ नहीं होगी; तुम शांत होओगे, मन शांत नहीं होगा। और जब तक बीमारी है, तब तक तुम स्वस्थ कैसे होओगे? और तुम पूछ रहे हो बीमारी को स्वस्थ करने की कोई औषधि दे दें।
सागर में तूफान उठता है; पहाड़ों की तरह लहरें उठती हैं। उस क्षण में सागर अशांत है, तूफान है। क्या तुम पूछते हो कि जब सागर शांत हो जाएगा, तब क्या होगा? तूफान रहेगा? शांत होकर रहेगा? तूफान नहीं रहेगा। शांति का अर्थ हैः तूफान का न हो जाना; शांति का अर्थ हैः मन का न हो जाना।
मन तूफान है, मन तुम्हारे भीतर उठी तरंगें हैं, लहरें हैं। मन का ही सारा उपद्रव है। और तुम पूछते हो, "उपद्रव कैसे शांत हो?" उपद्रव शांत होने को एक ही उपाय है कि उपद्रव न हो।
वे कहने लगे, "आप तो गहरी बातें करने लगे; मैं तो केवल मन की शांति के लिए आया था।"
मन से गहरे न जाओ, तो मन की शांति नहीं हो सकती; क्योंकि मन से गहरे न
हो जाओ तो तुम मन में ही मस्त रहते हो। उससे पीछे हटने का तुम्हारे पास उपाय नहीं है। पीछे हटने का उपाय बताया जाए तो तुम कहते हो, मन को भाता नहीं। तुम बीमारी से पूछते हो कि औषधि भाती है या नहीं? बीमारी से पूछोगे तो औषधि भाएगी ही क्यों?
समझ लो कि तुम्हें बीमारी है कोई--क्षयरोग हो गया है। क्षयरोग के कीटाणु तुम्हें खाए जा रहे हैं। उन कीटाणुओं से पूछो कि औषधि भाती है? वे कीटाणु कहेंगे, "हमारी जान लेनी है?" क्योंकि उन कीटाणुओं के लिए तो औषधि मौत है। उन कीटाणुओं का जीवन तुम्हारी मौत है।

विचार कीटाणुओं की तरह हैं। मन एक रोग है, महारोग है। और जब कोई कहता है, ध्यान करो, तो तुम कहते हो, मन को भाता नहीं। इसी मन से पूछते हो और मन तो कहेगा कि नहीं भाता, क्योंकि किस को अपनी मौत भाती है?
ध्यान मन की मौत है।
तो मन तुम्हें ध्यान से बचाएगा। वह हजार बहाने खोजेगा। वह कहेगा कि इतनी सुबह, इतनी सर्द सुबह कहां उठ कर जा रहे हो? थोड़ा विश्राम कर लो। रात भर वैसे तो नींद ही नहीं आई, और अब सुबह से ध्यान? वैसे तो थके हो, अब और थक जाओगे। शांत पड़े रहो। कल चले जाना। इतनी जल्दी भी क्या है? कोई जीवन चुका जा रहा है?
हजार बहाने मन खोजता है। कभी कहता है, शरीर ठीक नहीं है, तबीयत जरा ठीक नहीं है; कभी कहता है, घर में काम है; कभी कहता है, बाजार है, दुकान है। हजार बहाने खोजता है। ध्यान से बचने; की मन पूरी कोशिश करता है। क्योंकि ध्यान सीधा रास्ता है जो मंदिर में ले जाता है; वह यहां-वहां नहीं ले जाता है। "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।"
मन सीधा चल ही नहीं सकता। अगर तुम मेरी बात ठीक से समझो, तो मन का अर्थ
ही है टेढ़ा-टेढ़ा चलना। टेढ़ी चाल का नाम मन है। जैसे ही चाल सीधी हुई, मन गया। मन सीधी चाल में बचता ही नहीं। इसलिए सरलता से मन भागता है, जटिलता को चुनता है। जितनी जटिल चीज हो, उतनी मन को रुचती है। जितनी कठिन चीज हो उतनी मन को रुचती है। हिमालय चढ़ना हो, जंचता है। परमात्मा में जाना हो, नहीं जंचता; क्योंकि इतनी सरल घटना है कि वहां कोई चुनौती नहीं है, वहां कोई चैलेंज नहीं है। कठिन को जीतने में मजा आता है मन को। सरल को जीतने का उपाय भी नहीं है। सरल को क्या जीतोगे।
परमात्मा से लोग वंचित हैं--इसलिए नहीं कि वह बहुत कठिन है, इसलिए वंचित है कि वह बहुत सरल है; इसलिए वंचित नहीं है कि वह बहुत दूर है, इसलिए वंचित है कि वह बहुत पास है। उसमें चुनौती नहीं है।
दूर की यात्रा पर तो मन निकल जाता है, पास की यात्रा में यात्रा नहीं है--जाना कहां है?
तो जितना तुम्हारा मन किसी चीज में जटिलता पाता है, उतना ही रस लेता है; क्योंकि चाल टेढ़ी-मेढ़ी चलने की सुविधा है। सीधे-सीधे में साफ-सुथरे में मन कहता है, "कुछ रस नहीं, क्या करोगे? बात इतनी साफ-सुथरी है, कोई भी पहुंच सकता है--तुम्हारी क्या विशिष्टता?"
इसलिए तुम्हें कहूं इसे ठीक से सुन और समझ लेना, धर्म बड़ी सीधी चीज है, लेकिन मन के कारण पुरोहितों ने धर्म को बहुत जटिल बनाया, क्योंकि जटिल की ही अपील है। तो उलटी-सीधी हजार चीजें धर्म के नाम से चल रही हैं। उपवास करो, शरीर को सताओ, शीर्षासन करके खड़े रहो--उलटा-सीधा बहुत चल रहा है। और वह चलता इसलिए है, क्योंकि तुम्हें जंचता है। अगर मैं तुमसे कहूं कि बात बिल्कुल सरल है, बात इतनी सरल है कि कुछ करना नहीं है, सिर्फ खाली, शांत बैठ कर भीतर देखना है--तुम मुझे छोड़ कर चले जाओगे। तुम कहोगे, "जब कुछ करने को ही नहीं है, तो क्यों समय खराब करना? कहीं और जाएं, जहां कुछ करने को हो।" सौ गुरुओं में निन्यानबे जटिलता के कारण जीते हैं। वे जितने दांव-पेंच बता सकते हैं, उतने बता देते हैं और दांव-पेंच में तुम उलझ जाते हो; मन बड़ा रस लेता है, पहुंचते कभी भी नहीं। नहीं पहुंचते तो गुरु कहते हैं, "पहुंचना कोई इतना आसान है? जन्मों-जन्मों की यात्रा है।" नहीं पहुंचते तो गुरु समझाते हैं कि यह तो कर्मों का बड़ा जाल है; यह कभी इतने जल्दी होने वाला है? कभी हुआ है ऐसा? जन्मों-जन्मों तक लोग चेष्टा करते हैं, तब होता है?" अब दूसरे जन्म में इन्हीं गुरु से मिलने का उपाय तो है नहीं। पिछले जन्म में जिन गुरुओं ने जटिल साधनाएं दी थीं, उनसे मिले इस जन्म में कि पूछ लो कि अब भी नहीं हुआ? वह बात ही नहीं होती, क्योंकि दुबारा मिलने का कोई उपाय नहीं। मिल भी लो तो पहचान नहीं होती। तुम खुद को भूल गए हो, तुम्हारे गुरु भी अपने को भूल गए हैं। इसलिए धंधा चलता है।
जटिलता पर सारा खेल है।
तुम समझो इसेः हीरे-जवाहरात बहुमूल्य हैं, क्योंकि न्यून हैं। उनका मूल्य उनकी न्यूनता में है; खुद में कोई मूल्य नहीं है। कोहिनूर दो कौड़ी

का नहीं है। क्या करोगे--खाओगे, पीओगे? समझ लो कि कोहिनूर हर सड़क पर पड़े हों, कंकड़-पत्थर की तरह पड़े हों, फिर क्या करोगे? कोहिनूर की कीमत खत्म हो जाएगी। दुनिया भर में हीरे-जवाहरात जितने हैं इतने बाजार में लाए नहीं जाते, क्योंकि बाजार में लाने से उनकी कीमत गिर जाएगी। बड़े-बड़े भंडार हैं हीरे-जवाहरातों के। उनको रोक कर रखा जाता है। और धीरे-धीरे बहुत कम संख्या में हीरे-जवाहरात बाहर निकाले जाते हैं, क्योंकि अगर उनको सारा का सारा निकाल दिया जाए तो उनकी कीमत ही मिट जाए इसी वक्त। उनकी कीमत उनकी न्यूनता में है।
कोहिनूर एक है, इसलिए मूल्यवान है। क्या कारण होगा इसके मूल्य का? इतना है कि इसको पाना कठिन है। चार अरब मनुष्य हैं और एक कोहिनूर है। तो चार अरब प्रतियोगी हैं और एक कोहिनूर है--बड़ा जटिल मामला है। चार अरब पाने की कोशिश कर रहे हैं, और एक कोहिनूर है! बहुत कठिन है। गांव-गांव, सड़क-सड़क, पहाड़-जंगल, सब जगह कोहिनूर पड़े हों, कौन फिकर करेगा? और कोई अगर बादशाह रणजीत सिंह या एलिजाबेथ अपने मुकुट में लगाएगी तो लोग हंसेंगे कि इसमें क्या है; कोहिनूर तो गांव-गांव पड़े हैं; बच्चे खेल रहे हैं।
न्यूनता का मूल्य है, क्योंकि न्यूनता के कारण पाने में जटिलता पैदा
हो जाती है। कुछ चीजों के मूल्य बाजार में बहुत ज्यादा रखने पड़ते हैं, इसलिए वे बिकतीं हैं। अगर उनके मूल्य कम कर दिए जाएं तो उनको खरीददार न मिलें। यह बड़े मजे का अर्थशास्त्र है। तुम सोचते होओगे कि चीजों के दाम कम हों, ज्यादा खरीददार मिलेंगे; कुछ चीजें ऐसी हैं कि उनके खरीददार तभी मिलते हैं, जब उनके दाम इतने हों कि ज्यादा खरीददार न उनको खरीद सकें। रॉल्स रॉयस खरीदनी हो तो कितने खरीददार खरीद सकत हैं? इसका मूल्य इतना ऊंचा रखना पड़ता है कि जो उसे खरीद ले, वह उसकी प्रतिष्ठा बन जाए कि रॉल्स रॉयस खरीद ली। वह प्रतिष्ठा का सिंबल है, प्रतीक है। इसका मूल्य इतना है नहीं, जितना मूल्य चुकाना पड़ता है। मगर लोग पागल हैं। और मन का यह पूरा खेल है।
अगर तुम्हें परमात्मा ऐसे ही घर के पीछे मिलता हो तो तुम्हारा रस ही
खो जाए। तुम कहोगे यह तो जन्मों-जन्मों की बात है, ऐसे कहीं मिलता है? ऐसे परमात्मा अचानक एक दिन आ जाए और तुम्हें उठा ले कि "भाई, मैं आ गया, तुम बड़ी प्रार्थना वगैरह करते थे, शीर्षासन लगाते थे--अब हम हाजिर हैं, बोलो!" तुम फौरन आंख बंद कर लोगे कि यह सच हो ही नहीं सकता।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन ने जाल फेंका, एक मछली पकड़ ली। मछली इतनी बड़ी थी कि कभी सुनी भी नहीं गई थी। सिर्फ मछुओं की कहानियों में कि एक मछुए एक-दूसरे को बताते हैं कि दस मन की मछली पकड़ी ली। लेकिन कोई मानता नहीं। सब समझते हैं कि गप्प मार रहा है। और मछुओं से ज्यादा गप्पबाज दूसरे नहीं होते, क्योंकि वे मछलियों की कहानी बताते रहते हैं कि "इतनी बड़ी मछली पकड़ ली; कि इतनी बड़ी मछली ठहरी हुई थी सागर के तट पर कि हम बैठ कर उसकी पीठ पर रोटी पकाए, और मछली को पता न चलता। जब तक मछली को पता चला तब तक हमारी रोटी पक गई, भोजन कर चुके, तब वह हिली--इतनी बड़ी थी!" एक बड़ी मछली पकड़ ली। भीड़ लग गई। नसरुद्दीन ने सब तरफ से उस मछली को जाकर देख लिया। सिर हिलाया और कहा कि नहीं, यह सच है ही नहीं, यह झूठ है, यह तो एक गप्प है। इसको कौन मानेगा? उसने कहा, "भाइयो मुझे सहायता दो, इसको सागर में फेंक देने दो। यह मछली है ही नहीं, यह एक झूठ है।"
अगर परमात्मा ऐसे ही आ जाए चुपचाप, और कहे कि मैं आ गया; तुमने याद किया था--तो तुम भरोसा न करोगे। तुम कहोगे कि यह एक झूठ है। कोई स्वप्न देख रहा हूं। यह हो ही नहीं सकता।
तुम सरल को मान ही नहीं सकते। और मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा ऐसे ही आता है। अगर तुम्हारे मन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल न हो, अगर तुम सीधे-सरल होकर बैठ जाओ तो परमात्मा ऐसे ही आता है कि उसकी पगध्वनि भी नहीं सुनाई पड़तीः एक क्षण पहले नहीं था और एक क्षण बाद है। अचानक तुम उससे भर गए हो। उसके मेघ ने तुम्हें घेर लिया है। उसके अमृत की वर्षा होने लगी। तुम कभी यह भी न समझ पाओगे कि मेरी क्या योग्यता थी और परमात्मा आया! क्योंकि योग्यता की बात तो तर्क की बात है। परमात्मा कुछ किसी योग्यता से थोड़े ही मिलता है। तुम

कभी समझ ही न पाओगे कि "मेरी पात्रता क्या थी? मैंने क्या किया था, जिसकी वजह से परमात्मा मिला? क्योंकि करने से थोड़े ही परमात्मा मिलता है। वह तुम्हें मिला ही हुआ है; तुम्हारे करने के पहले मिला हुआ है; तुम्हारे होने के पहले मिला हुआ है। तुम उसे खो ही नहीं सकते। मन की टेढ़ी-मेढ़ी चाल है कि तुम्हें लगता है, खो गया। फिर खोज का सवाल उठता है। जिसे कभी खोया नहीं, उसे तुम खोजने निकल जाते हो!
जिस दिन परमात्मा मिलता है, उस दिन प्रसाद-रूप, अकारण... । मिला ही हुआ है। तुम जरा बैठो। तुम दौड़ो मत। तुम थोड़ा मन को विसर्जित करो। तुम मन की बात मत सुनो। तुम मन के धुएं से जरा अपने को मुक्त करो और पार ले जाओ। तुम जरा मन की घाटी से हटो।
थोड़ा सा फासला मन से और परमात्मा से सारी दूरी मिट जाती है। इसे हम ऐसा कह सकते हैं कि जितने मन के पास हो तुम, उतने परमात्मा से दूर; जितने मन से दूर, उतने परमात्मा के पास--बस ऐसा ही सीधा-सा गणित है। जितने मन से दूर, उतने परमात्मा के पास। जिस दिन मन नहीं, उस दिन तुम परमात्मा हो। परमात्मा को तुमने खोया नहीं है। मन को तुमने पा लिया है--यही तुम्हारी अड़चन है।
"चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदै।। तू दुरगंधि कौ बेढ़ौ रे।।"
क्यों इतना तिरछा-तिरछा चलता है, और क्यों इतनी अकड़? क्योंकि अकड़ के कारण लोग तिरछे चलते हैं। पैसा मिल जाए तो आदमी अकड़ कर चलता है; इलेक्शन में जीत जाए तो पैर जमीन पर नहीं पड़ते--तिरछा-तिरछा चलता है।
कबीर कह रहे हैं कि तेरी अकड़ का कोई कारण समझ में नहीं आता, नाहक ही अकड़ा हुआ है। अगर सच्चाई कहनी है तो अकड़ का तो कोई भी कारण नहीं है। "नऊं दुवार नरक धरि मूंदै"--तेरे ही नौ द्वारों के कारण नरक में गिरेगा।
नौ द्वार हैं शरीर के नौ छिद्र--आंख, कान, नाक, शरीर के नौ छिद्र--जिनसे
मन अपनी वासनाओं को संसार में फैलाता है; जिन द्वारों से मन बाहर जाता है, पदार्थ से चिपटता है, दूसरे को पकड़ता है, परिग्रह बनाता है, लोभ, काम, क्रोध को पैदा करता है।
कबीर कहते हैंः "नऊं दुवार नरक धरि मूंदै"--तेरे ही कारण और तेरे ही द्वारों के कारण नरक का द्वार खुलेगा। अकड़ किस बात की है? क्यों ऐसा तिरछा-तिरछा जा रहा है?
"तू दुरगंधि को बेढ़ौ रे"--और मैंने तुझसे कभी कोई सुगंध उठते देखी नहीं। सिवाय दुर्गंध के तुझसे कभी कुछ उठा नहीं। तू दुर्गंध का घर है, फिर भी अकड़ा फिर रहा है!
इसे थोड़ा समझो। अपने ही मन से बात करना, ध्यान का एक बड़ा गहरा प्रयोग है। जब तुम अपने मन से बात करने लगते हो तो फासला हो जाता है। जब तुम अपने मन से बात करते हो तो मन वहां, तुम यहां; तुम अपने मन से कहते हो, "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे"--फासला हो गया! तुम बोलने वाले हो गए, मन सुनने वाला हो गया, अपने मन से बात करना, ध्यान का एक गहरा प्रयोग है। कभी-कभी बैठ कर बात करने से तुम बड़ा लाभ पाओगे। और मन के पास कोई जवाब नहीं है। अगर तुमने ठीक से बात की और चीजें साफ रखीं, तो मन क्या कहेगा? मन के पास कोई जवाब नहीं है। "तू दुरगंधि को बेढ़ौ रे!" मन से सिवाय दुर्गंध के कभी कुछ नहीं उठता।
और कभी अगर तुम्हें सुगंध मालूम पड़ती है, तो तुम खोज करना, वह मन के पार से आती होगी, मन से नहीं आती। जैसे समझोः क्रोध मन से उठता है, घृणा मन से उठती है, वैमनस्य, ईर्ष्या मन से उठती है, जलन, द्वेष, मत्सर मन से उठता है--सब उपद्रव मन से उठता है। अगर कभी तुम्हें मन से कोई ऐसी चीज भी उठती मालूम पड़ती हो जो दुर्गंध जैसी नहीं है, तो तुम ठीक से खोजना, तुम फौरन पाओगे कि वह मन के पार से आ रही है। जो प्रेम मन से उठता है, वह तो दुर्गंध भरा ही होता है; वह तो घृणा का ही दूसरा रूप होता है। लेकिन एक ऐसा प्रेम भी है जो मन के पार से उठता है। और तुम उसे पहचान लोगे तत्क्षण। उसकी सुगंध ही और है! जब कभी कोई ऐसा प्रेम उठता है, जो कुछ भी नहीं मांगता, जो कुछ भी नहीं चाहता, जिसकी कोई अपेक्षा नहीं है--जैसा प्रेम बुद्ध की आंखों में दिखाई

पड़े--वह प्रेम मन से नहीं आ रहा है; वह मन के पार से आ रहा है; उसमें फिर कोई दुर्गंध नहीं है; उसमें फिर घृणा कोई पहलू नहीं है।
तुम बुद्ध के प्रेम को घृणा में नहीं बदल सकते। तुम्हारे प्रेम को घृणा में बदला जा सकता है। तो वह प्रेम मन से आ रहा है। तो क्या हुआ माप-दंड? माप-दंड यह हुआ कि जो भी चीज अपने से विपरीत में न बदली जा सके वह, मन के पार से आ रही है--यह क्राइटेरियन हुआ, यह निष्कर्ष हुआ। इस पर तुम कस लेना।
तुम किसी को प्रेम करते हो। एक स्त्री को प्रेम करते हो; आज वह सुंदर है, कल बूढ़ी हो जाएगी--फिर भी प्रेम करोगे? ऐसा ही प्रेम करोगे? आज स्वस्थ है, कल बीमार हो जाए, कैंसरग्रस्त हो जाए, कि कोढ़ आ जाए, सारा शरीर गलने लगे--फिर भी तुम ऐसा ही प्रेम करोगे? सिर्फ सोचो। तत्क्षण तुम जान लोगे कि नहीं कर पाओगे। आज स्त्री प्रसन्न है, तुम्हें पूछती है; कल गाली देख अपमान करे--तब भी ऐसा ही प्रेम करोगे? आज तुम्हारे पीछे छाया की तरह चलती है, तुम्हारे अहंकार को भरती है; कल किसी और की तरफ प्रेम की नजर से देख ले-- तब भी ऐसा ही प्रेम करोगे? कल किसी और के पीछे चलने लगे, किसी और की छाया बन जाए--तब भी तुम ऐसा ही प्रेम करोगे? तो तुम्हारा प्रेम सशर्त हैः उसमें कंडीशन है; वह लेन-देन है। और अगर स्त्री ने किसी और को प्रेम कर लिया तो प्रेम करना दूर, तुम उसकी हत्या कर दोगे। तुम उसे गोली मार दोगे। तुम्हारा प्रेम घृणा में बदल सकता है।
जो चीज अपने से विपरीत में बदल जाए, समझना कि मन से आ रही है; क्योंकि
मन के पास द्वैत है, मन के पार अद्वैत है। अगर तुम्हारा प्रेम घृणा में बदल सके, अगर तुम समझ लो कि यह संभव ही नहीं है कि मेरा प्रेम घृणा में बदल जाए तो खोजना गौर से, अपने को धोखा देने का कोई सार नहीं है, क्योंकि किसी और को तुम धोखा नहीं दे रहे हो। तुम्हारी शांति अशांति में बदल सकती है, तो समझ लेना कि मन का ही खेल है। तुम अगर ऐसी शांति को अनुभव करो जिसे कि कुछ भी न बिगाड़ सकेगा, जिसमें कोई विघ्न-बाधा न डाल सकेगा; तुम्हारी शांति ऐसी होगी, उसे अशांति में बदलने का कोई उपाय न हो सकेगा; चारों तरफ तूफान चलता रहे तो भी तुम्हारी शांति अडिग बनी रहेगी--तो तुम समझ लेना कि कुछ मन के पार से आ रहा है। मन के पार से जो आता है, वह विपरीत में बदल नहीं सकता, क्योंकि उसका विपरीत है ही नहीं; वह अद्वैत से आ रहा है। उससे अन्य कोई है ही नहीं।
कभी-कभी तुम्हें सुगंध की खबर मिल सकती है--मन से भी। लेकिन वह सुगंध
मन की नहीं है। मन से तो दुर्गंध उठती है। और जो भी तुम मन से करोगे, तुम्हारा जीवन उतना ही दुर्गंध से भरता जाएगा।
अगर तुम दुर्गंध से भर गए हो तो चेतो! कब तक मन पर भरोसा किए जाओगे? काफी कर लिया। हर चीज की हद होती है।
"चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।"
"नऊं दुवार नरक धरि मुंदै, तू दुरगंधि को बेढ़ौ रे।"
घर है तू दुर्गंध का। नौ द्वार खुलते हैं तुझसे नरक के और अकड़ कर तू चलता है--कुछ समझ में बात आती नहीं; कबीर अपने मन से कहते हैं।
"जे जारै तो होइ भसम तन"--और जब जलाया जाएगा तो शरीर के साथ, शरीर भस्म
हो जाएगा, राख हो जाएगा, तू भी राख हो जाएगा। "रहित किरम उहिं खाई"--अगर कोई टुकड़े बच गए शरीर के आग से, तो कीड़े-मकोड़े खा लेंगे। अकड़ किस बात की है? किसलिए इतना सिर ऊंचा किए चल रहा है? ये पताकाएं किसलिए फहराई जा रही हैं? झंडा उठाने जैसा कुछ भी तो नहीं है।
"सूकर स्वान काग को भाखिन"--छोड़ देगी चेतना, उड़ जाएगा पखेरू, हंस यात्रा पर निकल जाएगा--तो तुझे सूअर, कुत्ते, कौवे भक्ष्य बना लेंगे। "तामै कहा भलाई"--कुछ बात समझ में नहीं आती कि क्यों तू इतना अकड़ा है? "फूटै नैन हिरदै नहिं सूझै, मति एकै नहिं जानी।"
तेरे कारण पाया तो कुछ भी नहीं, खोया बहुत। और बड़ी से बड़ी चीज जो खो दी है, मन के कारण, वह है--"फूटै नैन, हिरदै नहिं सूझै।" मन ने कब्जा कर लिया है, इतनी तीव्रता से कि हृदय को बिल्कुल अलग ही तोड़ दिया है। मन की आंख सजग

है और हृदय की आंख मन ने बिल्कुल अंधी कर दी--जैसे आंख पर तेजाब डाल दी हो हृदय की।
और मन समझाता है कि हृदय अंधा है; देखना है तो हमसे देखो। मन कहता है, प्रेम अंधा है, देखना है तो हमसे देखो, नहीं तो भटक जाओगे। और प्रेम एक-मात्र आंख है--मन अंधा कहता है। मन तुम्हें हृदय की नहीं सुनने देता। जब तुम सुनते ही नहीं बड़े-बड़े लंबे-लंबे समय तक, तो धीरे-धीरे हृदय की आवाज धीमी-धीमी, धीमी-धीमी पड़ती जाती है। और मन का शोरगुल इतना है कि वह आवाज सुनाई नहीं पड़ती। थोड़ा मन विदा हो, तुम्हारी थोड़ी दूरी बढ़े, तो पहली दफे पता तुम्हें चलेगा कि तुम्हारे भीतर हृदय भी है। और हृदय यानी एक अलग ही लोक; हृदय यानी एक नया ही आयाम; जीवन को जानने-पहचानने की एक नई कीमिया। तुम नए ही हो जाओगे जब तुम हृदय से देखोगे। वही चीजें जो तुमने मन से देखी थीं, वे ही चीजें जब तुम हृदय से देखोगे, तुम पाओगे बात ही बदल गई।
अगर तुम मन से परमात्मा को देखोगे तो पत्थर से ज्यादा दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर हृदय से तुम पत्थर को देखोगे तो परमात्मा से अन्यथा नहीं दिखाई पड़ेगा। जिन्होंने पत्थर की मूर्तियां बनाई हैं परमात्मा की, उन्होंने बनाई होंगी हृदय से--उन्हें परमात्मा दिखाई पड़ा। तुम भी जाते हो उसी मंदिर में, तुम्हें पत्थर दिखाई पड़ता है।
पत्थर की मूर्तियां बनाने का बड़ा राज है। राज यही है कि अगर हृदय की आंख हो, तो पत्थर दिखाई पड़ता ही नहीं; पत्थर रूपांतरित हो जाता है। पत्थर एक ऐसे अलौकिक रूप से आविष्ट हो जाता है कि कबीर ने कहा है, "महिमा कही न जाए!" पत्थर तो तिरोहित हो जाता है; पत्थर से प्रकट हो जाता है परमात्मा। क्योंकि वह सब जगह भरा है, जगह-जगह छिपा है--जरा खोदने की बात है। जैसे पानी जगह-जगह छिपा है, जरा खोदा कि कुआं बन गया। लेकिन वह खुदाई हो सकती है हृदय के उपकरणों से।
हृदय जोड़ता है, मन तोड़ता है। मन खंड-खंड करता है, हृदय अखंड करता है।
मन का सूत्र हैः विश्लेषण--एनालिसिस; हृदय का सूत्र हैः संश्लेषण-- सिंथीसिस। जहां चीजें खंड-खंड हैं, हृदय वहां अखंड देखता है; और जहां चीजें अखंड हैं, वहां मन खंड-खंड देखता है। हृदय जब परिपूर्ण रूप से सक्रिय होता है तो सारा अस्तित्व एक हो जाता है।
कबीर कहते हैं, पाया तो तुझसे कुछ भी नहीं। "फूटे नैन, हिरदै नहिं सूझै"--आंख फोड़ दी तूने, दृष्टि मिटा दी तूने, और हृदय की सारी सूझ खो गई। प्रेम के पंख काट डाले तूने, प्रार्थना का उपाय न छोड़ा--यही तेरी उपलब्धि है। "मति एकै नहिं जानी"--और प्रज्ञा की एक किरण तूने नहीं जानी है, और न तूने जानने दी।
मति का अर्थ हैः प्रज्ञा, परम ज्ञान, उसकी झलक। मन में बहुत ज्ञान इकट्ठा कर लिया है; लेकिन उस ज्ञान में मति की जरा भी झलक नहीं है। बहुत जानता है मन, और कुछ भी नहीं जानता। बड़ा संग्रह है ज्ञान का--शास्त्र, शब्द, सिद्धांत, लेकिन प्रतीति का एक कण भी नहीं है। और प्रतीति ही एक मात्र प्रज्ञा है। अपना ही अनुभव एक मात्र ज्ञान है। तो मन तोते की तरह हैः रटन लगाए रखता है, दोहराता रहता है--बासा, उधार।
कबीर कहते हैंः "मति एकै नहिं जानी।"
इसके दो अर्थ हो सकते हैं कि मति की एक भी किरण भी न जानी; इसका एक अर्थ
यह भी हो सकता है कि उस एक के संबंध में कुछ भी न जाना; बहुत के संबंध में जान लिया और एक के संबंध में कुछ भी नहीं जाना। और एक ही असली जानना है। उपनिषदों ने कहा है, "जो उस एक को जान लेता है, वह सब जान लेता है।"
"मति एकै नहिं जानी।"
"माया मोह ममता सूं बांध्यो, बूड़ि मुवौ बिन पानी।"
इतनी ही तेरी कुशलता है कि--"माया मोह ममता सूं बांध्यो"--स्वप्नों से बांध दिया तूने, सत्य से तोड़ दिया; मोह से बांध दिया तूने, ममता से बांध दिया; अहंकार से--मैं और मेरा! सपने तूने संजो दिए। झूठा एक जगत निर्मित कर दिया चारों तरफ। और एक ऐसी स्थिति बना दीः कहते हैं, कहावत है कि "चुल्लू भर पानी में डूब मरो"--कहते हैं उस आदमी से जिसको अब कोई बचने की जगह न रही, जिसने ऐसा अपराध किया है जीवन के साथ, जिसने ऐसा पाप किया है जीवन के साथ

कि वह चेहरा दिखाने योग्य न रहा, तो उससे हम कहते हैं, डूब मरो चुल्लू भर पानी में। चुल्लू भर पानी में क्यों? क्योंकि तुम इतने क्षुद्र हो गए कि चुल्लू भर पानी काफी होगा। चुल्लू भर पानी तुम्हारे लिए सागर जैसा होगा-- डूब मरो। तुम इतने क्षुद्र हो गए, यह मतलब है। इतने छोटे हो गए तुम कि अब तुम्हें कोई नदी, कोई सरोवर, सागर डूब मरने के लिए नहीं चाहिए; अपने ही चुल्लू भर पानी में डूब सकते हो।
कबीर कहते हैंः लेकिन तेरी कृपा से ऐसी स्थिति आ गई कि "बूड़ि मुवौ बिन पानी"--बिना ही पानी के डूब मरो; चुल्लू भर की भी कोई जरूरत नहीं है, पानी की जरूरत ही नहीं है, बस डूब मरो। तूने इतना क्षुद्र बना दिया, तूने इतना छोटा बना दिया--और विराट को, जिसकी कोई सीमा न थी, जिसका कहीं अंत न आता था! असीम को तूने ऐसी गति में डाल दिया कि अब बिना ही पानी के मरने की अवस्था है। "बूड़ि मुवौ बिन पानी!"
"बारू के घरवा में बैठो"--अकड़ किस बात की है तेरी?
यह वार्तालाप बड़ा प्यारा है! "बारू के घरवा में बैठो"--बैठा है रेत के
घर में--जो अब गिरा, तब गिरा; हवा का जरा-सा झोंका, और सम्हाले न सम्हलेगा। शरीर की अवस्था ऐसी तो हैः कब गिर जाएगा क्या पता! अभी है, क्षणभर बाद
न हो जाए। एक क्षण का भी तो भरोसा नहीं है। एक पल के लिए तो हम आश्वस्त नहीं हो सकते कि यह कल भी बचेगा।
महाभारत में छोटी सी कथा है, एक भिखारी ने भीख मांगी। युधिष्ठिर कुछ काम में लगे थे; कहा, कल आ जाना। भीम पास में बैठा था। उसने उठाया एक ढोल और जोर से बजाया, और भागा गांव की तरफ। युधिष्ठिर ने कहाः "तू यह क्या कर रहा है? क्या हो गया है?" उसने कहाः "मैं गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने समय को जीत लिया; कल का आश्वासन दिया है। भिखारी से कहा है कि आ जाना। इसका मतलब कि कल हम यहां रहेंगे। इसका मतलब कि कल तू भी रहेगा। मेरे भाई ने काल को जीत लिया है--इतनी बड़ी घटना घट गई है, तो मैं जरा ढोल पीट कर गांव में खबर कर आऊं।"
युधिष्ठिर को बात समझ में आ गई। दौड़े, भिखारी को वापस ले आए और कहाः "क्षमा कर। कल का क्या भरोसा, तू अभी ले जा।"
"बारू के घरवा में बैठो, चेतत नहिं अयांना।" अब तक चेतता नहीं। और ऐसा
भी नहीं कि कोई पहली दफा बैठा, बहुत बार बैठ चुका बालू के घर में, और बहुत बार घर गिर गया; मगर फिर-फिर बना लेता है।
"चेतत नहिं अयांना... ।" अयांना का अर्थ हैः अब तक, अभी तक। अभी तक चेतता नहीं!
"कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयांना।।"
और सयाने होने की अकड़ मत कर, क्योंकि एक "राम भगति बिन बूड़े बहुत सयांना"--बड़े-बड़े ज्ञानी डूब गए हैं। सिर्फ एक ही सहारा है जो बचाता है, वह है परमात्मा से प्रेम, राम-भक्ति।
अकड़ मत रख कि तू बहुत जानता है। ऐसे जानने वाले बहुत डूब मरे हैं। यह बड़ा प्यारा वचन है। बूड़े बहुत सयांना!" मन बड़ा सयाना है; हर चीज में सलाह देने को तैयार है--वहां भी जहां कुछ जानता नहीं; हर बात में गुरु बनने की तैयारी है। मन शिष्य नहीं बनना चाहता, गुरु बनने को सदा तैयार है। कूड़ा- करकट इकट्ठा कर लेता है यहां-वहां से।
तुम जरा अपने मन को देखो। जो भी तुम जानते हो, वह कहीं न कहीं से इकट्ठा कर लिया है--सब उधार, सब बासा, बड़ा सड़ा, जूठन फेंकी लोगों की--उसको इकट्ठा किए बड़े अकड़े और सयाने बने बैठे हैं।
ऐसा हुआ कि सूफी फकीर जुन्नैद एक गांव से गुजरता था। वह बड़ा पंडित था, बड़ा जानकार था। और जानकारों की बड़ी मुसीबत है कि वे जानते हैं तो दूसरे को जनाना चाहते हैं कि कोई मिल जाए जिसका सिखा दें। ऐसा हुआ उस दिन कोई न मिला। वह धार्मिक गांव रहा होगा। कई को पकड़ने की कोशिश की जुन्नैद ने लेकिन लोगों ने कहा कि अभी जरा दूसरे काम से जा रहे हैं, जब फुरसत होगी तब आएंगे। जो लोग जानते रहे होंगे इस पंडित को, कोई न मिला तो एक छोटा बच्चा मिल गया। वह एक दिया लिए जा रहा था एक मजार पर चढ़ाने को, तो जुन्नैद ने उसको कहाः "यह दिया तूने ही जलाया?" उस लड़के ने कहाः "निश्चित मैंने ही जलाया।"

तो तू क्या यह बता सकता है कि ज्योति जब तूने जलाई थी तो कहां थी? और जब तूने जलाई तो कहां से आई? --किस दिशा से?" उस लड़के ने कहा कि देखो! फूंक मार कर उसने दीया बुझा दिया और कहा कि "अब ज्योति कहां गई, आप ही बता दो, आप के सामने ही गई--तब मैं बता दूंगा कहां से आई।"
जुन्नैद को पहली दफा होश आया कि बड़ी-बड़ी ज्ञान की मैं बातें करता हूं
कि यह संसार कहां से आया, किसने बनाया, और यह ज्योति सामने ही मेरी आंखों के लीन हो गई और मैं नहीं बता सकता कि कहां गई! उसने झुक कर पैर छुए उस बच्चे के। और जुन्नैद ने लिखा है कि उसी दिन मैंने पंडित होने का त्याग कर लिया। ज्ञान कचरा है। क्या बकवास मैंने भी लगा रखी है? छोटी-छोटी बात का पता नहीं, बड़ी-बड़ी बात कर रहा हूं! अपना पता नहीं, संसार की बात कर रहा हूं। खुद की कोई खबर नहीं, खुदा की चर्चा चला रहा हूं! जुन्नैद उसी दिन परिवर्तित हो गया।
जुन्नैद ने कहा, अब हम सिखाने नहीं निकलते, अब सीखने निकलते हैं। वह शिष्य हो रहा। वह बड़ा विनम्र आदमी हो गया। उसकी विनम्रता अनूठी थी। उसने हर किसी से सीखा। और जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो उससे लोगों ने पूछा, तो उसने इस बच्चे को अपना पहला गुरु बताया। दूसरा गुरु एक चोर को बताया। लोगों ने कहा, चोर और गुरु!
उसने कहा, हां, एक गांव में मैं देर से पहुंचा। सारा गांव तो सोया था। धर्मशाला तो बंद हो चुकी थी, एक चोर एक अंधेरी गली में मुझे मिल गया। उसने कहा कि देखो, अब इस रात के अंधेरे में तुम्हें कहीं कोई जगह न मिलेगी, विश्राम न मिलेगा। मेरे घर तुम आ सकते हो, लेकिन मैं तुम्हें बता दूं, क्योंकि तुम फकीर हो, मैं चोर हूं--अपना धंधा बिल्कुल अलग-अलग, और फकीर से झूठ क्या कहना! सच-सच बता देता हूं, नहीं तो कहीं पीछे तुम पछताओगे कि कहां चोर के घर में रुक गए। मुझे कोई ऐतराज नहीं है, और मुझे डर नहीं है कि तुम मुझे बदल लोगे, मैं पक्का चोर हूं, तुम्हें अगर डर हो कि मैं तुम्हें बदल लूंगा, तुम कहीं और ठहर जाओ।
जुन्नैद ने कहा है कि मैंने सोचा, मन में मेरे भय तो आया था, चोर पहचान गया। मन में एक बात तो आई थी कि चोर के घर रुकना? --ठीक नहीं है, क्योंकि सत्संग सोच कर करना चाहिए। लेकिन जब चोर ने कहा कि "मैं पक्का चोर हूं, तुम मुझे न बदल पाओगे। इसलिए मुझे उसकी कोई चिंता नहीं है। हां तुम्हें अगर डर है कि मेरे पास रह कर मेरा रंग तुम्हें लग जाएगा। तुम अगर कच्चे फकीर हो तो कहीं भी ठहर जाओ। तुम्हारी मर्जी।" चोट लग गई। क्योंकि उसने कहा, "कच्चे फकीर!"
जुन्नैद रुक गया और फिर महीने भर रुका रहा, चोर अनोखा आदमी था। रोज सांझ चोरी के लिए निकलता, रोज बड़ी आशा से भरा हुआ निकलता और जुन्नैद से बड़ी बातें करता कि आज महल में ही प्रवेश करने वाला हूं, तो देखना कि तिजोरी ही उठा लाऊंगा। और रात जब लौटता तब भी उदास न दिखाई पड़ता। दरवाजा जब जुन्नैद खोलता और पूछता कि लाए? तो वह कहता आज तो नहीं लगा दांव, लेकिन कल पक्का है। ऐसे महीना बीत गया। दांव लगा ही नहीं। मगर उस आदमी की आंख की चमक न गई। उसकी आशा न खोई। उसने कभी भी निराशा प्रकट न की। वह हताश न हुआ। फिर जुन्नैद उसे छोड़ कर चला गया। बाद में जुन्नैद जब परमात्मा की खोज में डूबा और रोज दिन बीतने लगे और परमात्मा की कोई झलक न मिली तो एक दिन उसने तय कर लिया कि बस अब बहुत हो गया, अगर आज मिलता है परमात्मा तो ठीक, अगर न मिलता तो समझ लेंगे, है ही नहीं। तभी उसे चोर की याद आई। और उसने कहा कि कच्चे फकीर! और मैं पक्का चोर!" और वह चोर साधारण संपत्ति खोज रहा है, लेकिन निराश नहीं है। और मैं परम संपत्ति को खोजने निकला हूं और इतनी जल्दी हताश हो गया! फिर जाग गया, और फिर उस चोर ने मेरा साथ दिया, उसकी स्मृति ने मेरा साथ दिया। और जब तक मैंने परमात्मा न पा लिया तब तक मैं चोर के सहारे ही चला। इसलिए दूसरा मेरा गुरु वह चोर।" ऐसे उसने नौ गुरु गिनाए। उसने सबसे सीखा।
जब तुम मन का भरोसा किए हो, और जो जानता ही है उसे जनाना मुश्किल। जो जागा हुआ पड़ा ही हुआ है। वह जानता है ही, और जो जानता ही है उसे जनाना मुश्किल। जो जागा हुआ पड़ा हो और सोने का बहाना कर रहा हो, उसे जगाना

मुश्किल है। जिसको पहले से ही यह भ्रांति हो कि हम जानते हैं उसको जनाओगे कैसे? वह पहले ही अपने ज्ञान से भरा है और ज्ञान कौड़ी का नहीं है; सब उधार है; तोता-रटंत है; सीख लिया है; कहीं प्राण उससे भीगे नहीं है। बाहर-बाहर है ज्ञान। अंतस अछूता रह गया है। भीतर गहन अज्ञान है, अंधेरा है। रोशनी उधार है और बाहर है। रोशनी किसी और की, तुम्हारी रोशनी नहीं हो सकती। दीया किसी और का तुम्हारे काम नहीं पड़ सकता।
बुद्ध ने अंतिम क्षणों में कहा हैः "अप्प दीपो भव!" अपने दीये हो जाओ।
कब तक शास्त्रों के दीये लिए फिरोगे। वे तो बुझे दीये हैं। शब्दों के दीये कब तक काम आएंगे।
"कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयांना।"
कहते हैंः "चलत कत टेढ़ौ-टेढ़ौ रे।" और तेरे जैसे बहुत ज्ञानी डूब गए। अकड़ मत! यह झंडा मत उठा। तिरछा-तिरछा मत चल। तेरे सयानेपन में कुछ सार नहीं है। बचे तो केवल वे--"कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहुत सयाना।"--बचे तो केवल वे, जिन्होंने राम का सहारा ले लिया।
राम के सहारे का अर्थ हैः जिन्होंने एक का सहारा ले लिया और वह एक तुम्हारे भीतर छुपा है। जिन्होंने विचारों से दृष्टि हटा ली और चैतन्य की तरफ उन्मुख हो गए, जो स्रोत की तरफ लौट गए। जो गंगोत्री में पहुंच गए--जहां से सब आया है, जहां से सब फैलाव हुआ है; जो उस मूल उदगम पर पहुंच गए, और वह उदगम तुम्हारे भीतर है--"कस्तूरी कुंडल बसै।"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
चौथा प्रवचन

विराम है द्वार राम का

सूत्र

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।
लखत लखत लखि परै, कटै जमफंद है।।
कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।।
जोगी पड़े वियोग, कहैं घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है।।
बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै।।
ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।
नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है।।

प्रभु तो पास है। पास कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पास से पास में भी थोड़ी दूरी बनी रहती है। इसलिए यही उचित है कहना कि प्रभु दूर नहीं है।
वस्तुतः तो प्रभु तुम्हारा आत्यंतिक होना है।
जैसे, कली और फूल में क्या फासला है? कली होने वाला फूल है। अभी कली है, अभी फूल हो जाएगी। कली में फूल छिपा है; फूल में कली छिपी है। कली और फूल किसी एक ही घटना के दो कदम हैं। जो कली में छिपा है वही फूल में प्रकट हो जाएगा। जो कली में बंद है वही फूल में खुल जाएगा।
ऐसे ही तुम्हारा और प्रभु का नाता है। तुम अगर कली हो तो वह फूल है। तुम अगर बीज हो तो वह वृक्ष है। तुम्हारा होना और उसका होना दो बातें नहीं, किसी एक ही बात के दो चरण हैं।
इसे बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह समझ में इतना गहरा बैठ जाए, इतना गहरे बैठे जाए कि तुम्हारे रोएं-रोएं में यह प्रतीति होने लगे, तो प्रभु को पाने में फिर जरा भी देर नहीं। अगर यह प्रतीति समग्र हो जाए; अगर श्वास-श्वास, धड़कन-धड़कन यह अहसास कर ले कि मैं कली हूं, वह फूल है; यह धारणा इतनी सघन हो जाए कि इससे भिन्न धारणा की कोई जगह ही तुम्हारे भीतर न बचे-- तो इसी क्षण कली फूल हो जाए; इसी क्षण बीज टूट जाए, अंकुर निकल आए, क्षण की भी देरी न हो।
लेकिन यह प्रतीति आवश्यक है। और इस प्रतीति के होने में सबसे बड़ी बाधा तुम्हारा मन है। तुम्हारा मन कहेगा, यह हो ही कैसे सकता है? और बड़ी से बड़ी बाधा तुम्हारे आस-पास तुम्हें घेरे हुए पंडितों का जाल है। वे भी कहेंगे, यह कैसे हो सकता है? उन्होंने तो इससे उलटी ही बात तुम्हें सिखाई हैं। उन्होंने तुमसे यह नहीं कहा है कि परमात्मा तुम्हारे निकट है; उन्होंने तो तुमसे यही कहा है कि तुमसे ज्यादा निंदनीय और कोई भी नहीं; तुम ऐसे निंदित हो कि परमात्मा तुम्हारे निकट हो ही कैसे सकता है? उन्होंने तो सिर्फ तुम्हें नरक का आभास दिलाया है, स्वर्ग का नहीं। और हजारों-हजारों साल के शिक्षण-दिक्षण ने तुम्हारे मन में यह बात गहरे में जमा दी है कि तुम सिर्फ निंदा के पात्र हो। नरक के अतिरिक्त तुम्हें अपने होने के लिए कोई और दूसरा उपाय दिखाई नहीं पड़ता। और तुम जितना अपने को निंदित समझोगे, उतना ही परमात्मा दूर है; कली खिल नहीं सकती। तुम्हीं कली को न खिलने दोगे। तुम्हारा निंदा का भाव ही कली के खिलने में सबसे बड़ी बाधा बन जाएगी। और उन्होंने कैसी सरल-सीधी बातों को निंदित कर दिया है कि बड़ी कठिनाई है।
कल एक युवक आया। युवक है, तो स्वभावतः वासना जगेगी, कुछ आश्चर्यजनक नहीं है, न जगे तो ही आश्चर्यजनक है। युवक हो और अगर वासना न जगे तो उसका अर्थ यही हुआ कि कहीं न कहीं शरीर में, मन में कुछ कमी रह गई, कहीं कोई बात चूक गई। वासना तो स्वाभाविक है। लेकिन वह युवक अपने को बहुत निंदित और

दलित मान रहा है, आत्मग्लानि से भरा है। वह कहता है, "मेरे मन में बड़े पाप उठ रहे हैं। कैसे पाप से छुटकारा हो?"
जिस चीज को तुमने पाप कह दिया, उससे छुटकारा कभी भी न हो सकेगा। क्योंकि जिस चीज को तुमने पाप कह दिया, उतने ही में मामला समाप्त नहीं हो गया; उसके कारण तुम पापी हो गए। और पापी परमात्मा के निकट कैसे हो सकेगा? थोड़ा सा भोजन में रस है, तो पाप। थोड़ा कपड़ा पहनने में रस हो, तो पाप। थोड़ी ज्यादा देर सो जाते हो सुबह, तो पाप। सब तरफ से पाप खड़ा कर दिया है निंदकों ने। जहर फैलाने वालों का बड़ा लंबा इतिहास है। उन्होंने सब तरफ तुम्हें निंदित कर दिया है। उसके पीछे कारण हैं।
तुम जितने निंदित हो जाओ, उतने ही पंडित पूजित हो जाते हैं। यह गणित है। तुम जितने निंदित हो जाओ, उतना ही पंडित पूजित हो जाता है। क्योंकि वह सुबह पांच बजे उठता है और तुम नहीं उठ पाते। वह ब्रह्ममूहूर्त में उठता है। वह उपवास करता है, तुम नहीं कर पाते। त्यागी त्याग करता है, तुम नहीं कर पाते। लेकिन तुम जान कर चकित होओगे कि सौ में से निन्यानबे त्यागी इसलिए त्याग कर रहे हैं कि उनका त्याग एक अस्त्र है, जिसमें वे तुम्हें निंदित करते हैं। उनका त्याग उनके अहंकार की एक व्यवस्था है। उपवास में मजा उन्हें भी नहीं आता, लेकिन उपवास के कारण भोजन करने वालों को नरक में भेजने की जो सुविधा उनके मन में आ जाती है, वही उपवास का रस है।
उपवास में किसको रस आएगा? भूख तो पीड़ा देगी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन अगर मेरे एक दिन उपवास करने से लाखों लोगों की तरफ मैं निंदा से देखने का मौका पा सकता हूं, तो रस आ जाएगा।
सौ में से निन्यानबे ब्रह्मचारी सिर्फ इसलिए ब्रह्मचारी हैं कि उसके कारण तुम सभी पापी हो जाते हो।
मेरे एक मित्र हैं। उनके पास बड़ा मकान है। उस नगर में उससे बड़ा मकान किसी के पास नहीं था। फिर एक पड़ोसी ने और बड़ा मकान बना लिया। उनका मकान उतना का उतना ही रहा, कोई रत्तीभर फर्क न आया; पर वे उदास और दुखी हो गए। उनके घर में मैं मेहमान था, तो वे बड़े चिंतित थे। मैंने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हारा मकान ठीक वैसा का वैसा है।" उन्होंने कहा, "कैसे वैसा का वैसा रहेगा? पड़ोस में देखते नहीं, बड़ा मकान खड़ा हो गया? जब तक इससे बड़ा मकान मेरा न हो जाए, तब तक चित्त में अब शांति नहीं।
दूसरे को निंदित करना हो तो एक ही उपाय है कि तुम जिस बात की निंदा करते हो, उसको स्वयं न करो। और सरल से उपाय हैं कि कोई आदमी विवाह नहीं करता तो गैर-विवाहित रह कर विवाहित लोगों की निंदा करता है। सारी दुनिया विवाहित लोगों की निंदित हो जाती है। उसके अहंकार की कोई सीमा नहीं रहती। अब यह युवक, जो मेरे पास कल आया, वह कहता है, "बड़े पाप में पड़ा हूं, इससे छुटकारा दिलाएं।"
पाप कहां है? जो स्वाभाविक है उसमें कोई पाप नहीं। और ध्यान रखने की बात तो यह है कि अगर तुमने पाप समझा तो कभी छूट न पाओगे। अगर छूटना चाहा तो कभी छूट न पाओगे। और अगर तुमने प्रभु की अनुकंपा समझी इसे भी, तो इसके द्वारा भी तुम प्रभु को पास ले आए, दूर न किया। जरा सूक्ष्म है, ठीक से समझ लेना। अगर तुमने कहा पाप है, तो कितनी बातें घट रही हैं, तुम्हें पता नहीं है। किसी चीज को पाप कहा तो तुम पापी हो गए। किसी चीज को पाप कहा तो पूरी प्रकृति पापी हो गई, क्योंकि उसी प्रकृति से वह पाप जन्मा है। और किसी चीज को अगर पाप कहा तो बहुत गौर से देखना, परमात्मा भी पापी हो गया, क्योंकि उसके बिना इस जगत में कुछ भी नहीं घट सकता है। वही बनाता है, और पाप बनाता है--पापी हो गया।
जार्ज गुरजिएफ कहा करता था कि सभी धर्म परमात्मा के खिलाफ हैं। और यह बात सच है। क्योंकि, जितनी चीजों को तुम पाप कह रहे हो, उतने ही अंशों में परमात्मा की भी निंदा कर रहे हो।
अगर तुमने एक चीज की भी निंदा की तो तुमने उसके साथ पूरे अस्तित्व को निंदित कर दिया। और यह सब उसी का खेल है। ये सब उसी के रूप हैं। वह भी निंदित हो गया। फासला बहुत भारी हो गया। अब तुम कभी न पहुंच पाओगे। और अगर तुमने अपनी वासना को भी उसका ही खेल समझा... उसने ही दिया है तो जरूर कोई

राज होगा। शायद यही राज हो कि वासना में तुम्हें फेंके और तुम न फिंको; वासना में तुम्हें धकाए और तुम उबर जाओ; वासना में तुम्हें उतारे और तुम अतिक्रमण कर जाओ--यही राज होगा।
लेकिन तब यह पाप नहीं है, तब यह शिक्षण हुआ। तब यह पाप नहीं है, तब यह परमात्मा की अनुकंपा हुई। जैसे कि सोने को आग में फेंको तो निखर कर वापस आता है, ऐसे परमात्मा तुम्हें संसार में फेंकता है कि तुम निखर कर वापस आ जाओ। आग की निंदा मत करो। परमात्मा की अनुकंपा को खोजो। तत्क्षण तुम पाओगे, वह पास है--कली खुलने लगी!
बुरे से बुरे में भी उसी का हाथ जिसने देख लिया, वही साधु है। लेकिन जिनको तुम साधु कहते हो, वे अच्छे से अच्छे में बुराई खोज लेते हैं।
एक साधु मुझे मिलने आए। वे थोड़े चकित हुए। जिस मकान में मैं रहता था
उन दिनों, बड़ा बगीचा था उसके आस-पास, बड़े फूल खिले थे। उन्होंने कहा, "आप?"-- और मैं पौधों को पानी दे रहा था--"आप और फूलों में आपका रस है?"
फूल में तो कोई पाप नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन उन्होंने कहाः "आप, और फूलों में रस? आप जैसे व्यक्ति को तो सभी राग-रंग से विमुक्त होना चाहिए।" फूल भी राग-रंग हैं! है तो। अगर बहुत गौर से देखो तो फूल भी कामवासना
का ही हिस्सा है।
अगर तुम वैज्ञानिक से पूछो तो वह बताएगा कि फूल खिलता है, तो फूल में
जो मध्य में छिपे हुए कण हैं, वे कण उसके वीर्यकण हैं। मधुमक्खियों, और तितलियों के पंखों में लगाेकर उन कणों को वह दूसरे फूलों के पास भेज रहा है। वह फूल खुद तो नहीं चल सकता, इसलिए मादा को नहीं खोज सकता, तो उसने एक तरकीब निकाल ली है। वह तरकीब बड़ी कुशल हैः वह मधुमक्खी को आकर्षित कर लेता है। मधुमक्खी उस पर बैठती है तो उसके पैरों में उसके पराग के कण लग जाते हैं। मधुमक्खी के माध्यम से वह अपने वीर्यकण भेज रहा है। मधुमक्खी फिर मादा फूल पर बैठेगी और वीर्यकण छूट जाएंगे--दो का मिलन हो जाएगा।
गौर से देखो तो फूल भी कामवासना है। अगर गौर से देखो इस संसार में तो तुम्हें कामवासना के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। सब जगह नर-मादा का खेल है। इसलिए जिन्होंने धर्म की बड़ी गहरी खोज की है, जैसे कि हिंदुओं ने बड़ी गहरी खोज की है, तो हिंदुओं ने अपने सभी परमात्मा के रूप के साथ नारी रूप को संयुक्त रखा है। तो राम के साथ सीता है; साथ ही नहीं, राम से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसलिए हिंदू सीता-राम कहते हैं, राम-सीता नहीं कहते; सीता को पहले रखते हैं। वे राधा-कृष्ण कहते हैं; राधा को पहले रखते हैं।
जैनों को यह बात बहुत अखरती रही है कि तुम अपने भगवान के साथ स्त्री
को क्यों खड़ा किए हो?
महावीर अकेले खड़े हैं। महावीर ने विवाह किया था; लड़की हुई थी उनके; दामाद था। लेकिन महावीर का मानने वाला जो कट्टरपंथी संप्रदाय है--दिगंबर, वह कहता है, "उन्होंने कभी विवाह किया ही नहीं। महावीर और विवाह करें? पाप! यह असंभव है! यह कपोलकल्पित है। यह अफवाह है, विरोधियों की उड़ाई हुई।
राम और सीता को जैन नमस्कार भी नहीं कर सकता, क्योंकि कठिनाई सीता की वजह से है। राम को कोई अड़चन नहीं है; कर लेता, लेकिन यह सीता माता जो साथ खड़ी है, वह बर्दाश्त के बाहर है।
लेकिन पूरे जीवन का खेल नर और मादा-शक्ति का खेल है। सारी प्रकृति नर
और मादा-शक्ति का मिलन है।
तो क्यों तुम पाप समझते हो? उस युवक को मैंने कहाः "छोड़ो यह ख्याल, अन्यथा मरोगे, मुश्किल में पड़ोगे। पाप की तरह देखते क्यों हो? जो है उसके ऊपर तुम अपनी व्याख्या क्यों आरोपित करते हो कि यह पाप है? फिर पाप के कारण, पापी हो गए। फिर अपराध का भाव पैदा होता है, गिल्ट पैदा होती है।" मनसविद कहते हैं कि समस्त धर्मों ने आदमी का शोषण किया है--एक तरकीब से। वह तरकीब है कि आदमी को अपराधी सिद्ध कर दिया है। अपराधी आदमी डरता है। डरा हुआ आदमी घुटने टेक कर प्रार्थना करता है। अपराधी आदमी डरता है, यज्ञ-हवन करता है। अपराधी आदमी डरता है; पंडित को, पुजारी को दान देता है। अपराधी आदमी डरता है; धर्मशाला, मंदिर बनाता है। वह जो अपराध उसके भीतर है

कि इतने पाप किए हैं, इनके उत्तर में कुछ तो पुण्य कर लूं, नहीं तो परमात्मा के सामने क्या कहूंगा? बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा। पाप ही पाप है, और दूसरे पलड़े पर पुण्य बिल्कुल नहीं है--तो थोड़ा पुण्य कर लूं।
इसलिए पहले धर्मगुरु समझाता है कि तुम कितने पापी हो; फिर समझाता है,
अब कुछ करो, इन पापों को मिटाओ। इससे सारा धर्म का शोषण चलता है।
वस्तुतः जिन्होंने धर्म को जाना है--बुद्ध पुरुषों ने--उन्होंने तुम्हें पापी नहीं कहा। उन्होंने तो कहा कि तुम ब्रह्म-स्वरूप हो। उपनिषदों ने तुम्हें पापी नहीं कहा। उन्होंने तो कहा कि तुम परमात्मा हो। उन्होंने तो कहा कि तुम्हारे भीतर वही छिपा है जो आत्यंतिक है। तुम खालिस सोना हो। थोड़ी मिट्टी यहां-वहां से लग भी गई होगी तो क्या घबड़ा रहे हो? क्या डर का कारण है?
मिट्टी कितनी ही तुमसे लग जाए, तुम मिट्टी नहीं हो सकते। तुम गहनतम नरक में भी चले जाओ, तो तुम्हारी अंतरज्योति न बुझेगी, जलती ही रहेगी। महापाप से घिर जाओ, तो भी तुम्हारे उद्धार का उपाय समाप्त नहीं हो गया है। तुम एक क्षण में वहां से छलांग लगा सकते हो। तुम अपने को खो न सकोगे। तुम्हारे होने में ही परमात्मा छिपा है। तुम कितने ही उससे दूर निकल जाओ, जरा तुम मुड़ोगे, और उसे तुम पीछे खड़ा हुआ पाओगे। ऐसे ही जैसे कि कोई सूरज की तरफ पीठ करके चले, चलता रहे, हजारों मील चलता रहे--क्या तुम सोचते हो, सूरज उससे हजारों मील दूर हो जाता है? जिस क्षण वह लौट कर देखेगा, सूरज को पीछे पाएगा। सूरज तो फिर भी दूर है; जिस सूरज की कबीर बात कर रहे हैं, जिस सूरज की मैं बात कर रहा हूं--तुम कहीं भी भागोगे, तुम उससे भाग न सकोगे, क्योंकि तुम भी वही हो।
सबसे बड़ी उदघोषणा जो तुम्हें अपने जीवन में कर लेनी है, वह यह है कि मेरे भीतर छिपा परमात्मा है। इस उदघोषणा के साथ ही तुम्हारे पाप धुल जाएंगे। इस उदघोषणा के साथ ही कांटे झड़ जाएंगे। इस उदघोषणा के साथ ही तुम पाओगे कि अंधेरा खुद तुमसे डरने लगा। और मजा तो तभी है जब पाप तुमसे डरे। तुम पाप से डरो, मजा नहीं है--जीवन रुग्ण हो गया। मजा तो तभी है, जब तुम जहां जाओ, वहां रोशनी पहुंच जाए। तुम अंधेरे से भागो, यह बात शोभा नहीं देती। इसलिए कबीर के ये वचन तुम्हें बड़े क्रांतिकारी मालूम पड़ेंगे, हैं भी; जलते हुए अंगारे हैं। जिस हृदय को इन्होंने छू लिया, उस हृदय को रूपांतरित कर दिया। इन वचनों से जो बच गया, वह अभागा है।
एक-एक शब्द को गौर से सुनना।
"घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।"
कबीर कह रहे हैं, घर-घर में जल रहा है उसका दीया। घर-घर में उसी का नूर है। घर-घर यानी शरीर-शरीर, जल रही है उसी की ज्योति। बड़ी मजे की बात है, फिर भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती! कैसे अंधे हो।
और यह अंधापन भी साधारण अंधापन नहीं है। यह अंधापन ऐसा नहीं है कि आंख तुम्हारे पास न हो। तुम बने हुए अंधे हो। आंख तुम्हारे पास है, और बंद किए बैठे हो। अंधे भी होते तो क्षमा के योग्य थे। क्या करोगे? आंख ही नहीं होगी तो तुम भी क्या करोगे? पर आंख है। भीतर की आंख कभी भी अंधी नहीं होती। क्योंकि भीतर आंख का अर्थ केवल होता है, होश की क्षमता। वह तो सभी में है। चैतन्य तो सभी में है। वही भीतर की आंख है, लेकिन तुम बंद किए बैठे हो। न केवल तुम बंद किए बैठे हो, बल्कि तुमने बड़ी श्रद्धा कर ली है अपने अंधेपन पर।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मेरे पास आया। एक तो चश्मा वह लगाए हुए था,
दो हाथ में लिए हुए था। मैंने पूछा कि मामला क्या है, इतने चश्मे? उसने कहा कि एक पास देखने के लिए, एक दूर देखने के लिए और तीसरा दो को खोजने के लिए। मैंने कहाः "तुम एक काम करोः एक चश्मा और खरीद लो; तीन कम हैं।"
उसने कहाः "चौथा किसलिए?"
मैंने कहाः "तुम सोच कर आओ।"
रात भर सोचता रहा, सुबह आकर उसने कहा, "बहुत सोचा लेकिन कुछ समझा नहीं। तीन में बात खतम हो जाती है, चौथे की कुछ समझ में नहीं आती।"

मैंने कहाः "भीतर कैसे देखोगे? उसकी तो याद ही नहीं आती। दूर का इंतजाम कर लिया। पास का इंतजाम कर लिया। दोनों चश्मों को खोजने का भी इंतजाम कर लिया। सब इंतजाम तुमने कर लिया--लेकिन बाहर का। भीतर का भी कुछ ख्याल है?"
और भीतर ही जल रही है रोशनी। और जब तक तुम्हें अपने भीतर की रोशनी न दिखाई पड़े, तब तक तुम्हें किसी की भी भीतर की रोशनी न दिखाई पड़ेगी। जब तक तुम अपने को शरीर मानोगे, दूसरे भी तुम्हें शरीर जैसे ही दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि दूसरे का बोध तुम्हारे आत्मबोध से ऊपर नहीं जा सकता। जिस दिन तुम्हें भीतर का जलता हुआ प्रकाश दिखाई पड़ेगा, उसी क्षण तुम्हें सभी घर में दीए दिखाई पड़ जाएंगे। ऐसा ही नहीं कि मनुष्यों में, पशुओं में, पक्षियों में, पौधों में भी तुम्हें जलती हुई आंख दिखाई पड़ेगी।
सब रोशन है, सारा जगत रोशन है। यहां रोशनी के सिवाय कुछ है ही नहीं। प्रत्येक चीज रोशनी से बनी है। रोशनी मूल आधार है।
"घर-घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।"
पर बड़े अदभुत अंधे हो तुम कि घर-घर जो दीया जल रहा है, और दूसरों के घरों में ही नहीं, तुम्हारे घर में भी जो दीया जल रहा है, वह भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता।
एक आध्यात्मिक अंधापन है। तुम भीतर देखते ही नहीं। तुम भीतर देखने की कला ही भूल गए हो। तुम इतने समय तक बाहर देखते रहे हो कि तुम्हारी आंखें जड़ हो गई हैं; वे भीतर की तरफ मुड़ती ही नहीं।
पक्षाघात जैसे हो जाता है, पैरेलिसिस जैसे हो जाती है, जैसे एक आदमी बैठा ही रहे वर्षों तक और पैरों को न चलाए--तो फिर न चला सकेगा, फिर पैर जड़ हो जाएंगे, पक्षाघात हो जाएगा।
एक आदमी आंखों को बंद किए बैठा रहे कई वर्षों तक अंधेरे में, तो आंखें फिर रोशनी को देखने में समर्थ न रह जाएंगी। क्योंकि प्रत्येक चीज सक्रिय रहने से सतेज रहती है, निष्क्रिय होने से क्षमता खो देती है।
तुम्हारी भीतर की तरफ देखने की क्षमता जंग खा गई है; तुमने उसका उपयोग
ही नहीं किया। और इसलिए तुम अंधे जैसे मालूम पड़ रहे हो। अंधे तुम हो नहीं। अंधे तुम हो नहीं सकते। और अगर तुम्हें लगता हो कि तुम अंधे हो, और अगर तुमने यह मान लिया कि तुम अंधे हो तो तुम्हारी मान्यता ही तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।
लेकिन बड़े मजे की बात है! लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि "ईश्वर कहां है?
आप हमें दिखा दें।" वे यह नहीं पूछते कि क्या हो सकता है, ईश्वर तो हो और हमारे पास देखने की कला न हो। आप हमें देखने की कला सिखा दें; वह यह नहीं पूछते। वे पूछते हैं, "ईश्वर कहां है? अगर है तो दिखा दें।"
उन सभी को यही भ्रांति है कि जैसे अगर ईश्वर हो तो तुम्हें दिखाई पड़
ही जाएगा; तुम्हारे देखने की क्षमता की जैसे कोई जरूरत ही नहीं है। जैसे अंधा कहे, प्रकाश को दिखा दें--कैसे दिखाइएगा प्रकाश अंधे को? बहरे को कैसे सुनवाइएगा संगीत? नासापुट जिसके जड़ हो गए हों, उसे कैसे गंध का बोध दिलवाइएगा? सारा जगत भरा हो सुगंध से, पर जिसकी नाक में पक्षाघात लग गया है तो क्या कोई उपाय है? और वैसा आदमी अगर जिद्द कर ले कि जब तक परमात्मा न दिखेगा, तब तक मैं मान न सकूंगा, तो वैसा आदमी सदा के लिए अंधा रह जाएगा। क्योंकि वह यह कह रहा है कि मैं मानूंगा तभी जब दिखाई पड़ जाएगा।
यही श्रद्धा के सूत्र का अर्थ है।
श्रद्धा का अर्थ हैः जिसे मानने के लिए तर्क के पास कोई कारण न हो; जिसे मानना बिल्कुल असंभव मालूम पड़े, जिसे मानना बिल्कुल ही अतर्क्य हो-- उसे मान लेना। जो दिखाई न पड़ता हो, जिसका स्पर्श न होता हो, जिसकी गंध न आती हो, और जिसको मानने के लिए कोई भी आधार न हो--उसे मान लेने का नाम है श्रद्धा।
लेकिन श्रद्धा बहुमूल्य सूत्र है। वह अंत नहीं है, शुरूआत है। जिसे तुम मान लेते हो, उसकी खोज की संभावना शुरू हो जाती है। वैज्ञानिक हाइपोथिसिस निर्मित करते हैं। श्रद्धा हाइपोथिसिस है। हाइपोथिसिस का मतलब होता है कि पहले वैज्ञानिक एक सिद्धांत तय करता है, क्योंकि बिना

सिद्धांत तय किए तुम जाओगे कहां, खोजोगे कैसे क्या खोजोगे? खोज की शुरूआत ही न हो सकेगी। वह सिद्धांत सिर्फ प्रारंभ है, वह कोई अंत नहीं है। लेकिन उससे द्वार खुलता है, उससे संभावना निर्मित होती है--फिर आदमी खोज में निकलता है। हो सकता है वह मिले, हो सकता है न मिले। क्योंकि अंधेरे में तुमने जो तय किया था, उसके मिलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन एक बात पक्की हैः हो सकता है, तुमने जो तय किया था वह न मिले; लेकिन कुछ मिलेगा। परमात्मा को तुम अभी जानते नहीं, कोई पहचान नहीं, कभी देखा नहीं, कभी मिलन नहीं हुआ। श्रद्धा का अभी तो इतना ही अर्थ हो सकता है कि हम एक परिकल्पना स्वीकार करते हैं, और हम खोज में लगते हैं--शायद जो परिकल्पना है वैसा सिद्ध हो, न हो। लेकिन एक बात पक्की है कि खोज शुरू हो जाएगी। आर जिसकी खोज शुरू हो गई, अंत ज्यादा दूर नहीं है। और एक बात यह भी पक्की है कि अज्ञानियों ने जितने ढंग से परमात्मा को माना है, अंतिम अर्थ में वे कोई भी सही सिद्ध नहीं होती; वे सभी परिकल्पनाएं असिद्ध होती हैं। जो प्रगट होता है, वह सभी परिकल्पनाओं से ज्यादा अनूठा है। जो प्रकट होता है वह तुम्हारी सभी मान्यताओं से बहुत ऊपर है। जो प्रगट होता है, तुमने उसे सोचा था दीया; लेकिन जो प्रगट होता है वह महासूर्य है। किसी की परिकल्पना परमात्मा के संबंध में कभी सही सिद्ध नहीं होती, हो भी नहीं सकती।
छोटा सा मन है, छोटा सा उसका आंगन है--कितना बड़ा आकाश उस आंगन में समाएगा? छोटे-छोटे हाथ हैं। इन छोटे-छोटे हाथों से उस विराट को छूने की कोशिश--कितना विराट तुम छू पाओगे? बूंद जैसी क्षमता है, सागर को खोजने निकले हो--कितना सागर तुम अपने में ले पाओगे?
लेकिन श्रद्धा के बिना यात्रा शुरू नहीं होती। श्रद्धा का कुल इतना
ही अर्थ है कि साहस की हम तैयारी करते हैं, हम ज्ञात से न बंधे रहेंगे, अज्ञात में, उतरने के लिए हमारी हिम्मत है; हम डरे-डरे अपने घर में कैद न रहेंगे, हम खुले आकाश के महाअभियान पर निकलते हैं।
एक बात पक्की है कि तुम जो भी मान कर निकलोगे, वह तुम कभी न पाओगे; क्योंकि तुम अभी जानते नहीं तो तुम ठीक मान कैसे सकोगे?
सम्यक श्रद्धा तो ज्ञान से घटित होगी। लेकिन सम्यक श्रद्धा के पहले
एक परिकल्पित श्रद्धा है, हाइपोथेटिकल है। वैज्ञानिक भी उसके बिना काम नहीं कर सकता, तो धार्मिक तो कैसे कर सकेगा?
तो, श्रद्धाएं दो प्रकार की हैं। एक श्रद्धा है साहस का नाम, जो अज्ञान से बाहर लाती है, द्वार के बाद हृदय में आरोपित होती है। उस दूसरी श्रद्धा को फिर डिगाने का कोई उपाय नहीं है। पहली भी उखाड़ ले सकता है। नए रोपे की बड़ी सुरक्षा करनी पड़ती है, चारों तरफ बागुड़ लगानी पड़ती है, देखभाल रखनी पड़ती है। एक बार वृक्ष की अपनी जड़ें जमीन को पकड़ लेती हैं, एक बार वृक्ष जमीन के साथ एक हो जाता है, फिर बागुड़ की कोई जरूरत नहीं। फिर बच्चे उसे न उखाड़ पाएंगे। फिर कोई उसे नुकसान न पहुंचा पाएगा। फिर तो वृक्ष बड़ा हो जाएगा। फिर तो सैकड़ों लोग उसके नीचे बैठकर छाया पा सकेंगे।
इसलिए प्राथमिक रूप से जब श्रद्धा में कोई उतरता है तो बड़ी सावधानी
की जरूरत है, क्योंकि चारों तरफ अंधों की भीड़ है। वह तुमसे कहेगी, "क्या मान रहे हो? क्या कर रहे हो? पागल हो गए? दिमाग तो ठीक है?" वह अंधों की भीड़ बच्चों की तरह है; वह तुम्हारे पौधे को उखाड़ दे सकती है।
प्राथमिक चरण में श्रद्धा को ऐसे ही बचाने की जरूरत पड़ती है, जैसे स्त्री गर्भिणी होती है और अपने गर्भ को बचाती है, सम्हल कर चलती है, एक-एक पैर सम्हाल कर उठाती है--कहीं गिर न पड़े। क्योंकि अगर एक ही जीवन नहीं, दो जीवन दांव पर लग गए हैं। ऐसे ही जिस दिन तुम्हारे जीवन में श्रद्धा का बीज आरोपित होता है--तुम गर्भ से भर गए; अब परमात्मा ने तुम्हारे भीतर पहला रूप लिया है।
बीज वृक्ष की क्या खबर दे सकता है? बीज तो कंकड़-पत्थर जैसा मालूम पड़ता है। इससे फूलों का क्या नाता जोड़ोगे? तो पहली श्रद्धा कभी भी अंतिम श्रद्धा की कोई झलक नहीं दे सकती। लेकिन पहली श्रद्धा के बिना अंतिम श्रद्धा के आने का कोई उपाय नहीं। और पहली श्रद्धा ही तुम्हारे जीवन-चिंतना का ढंग बदलेगी, शैली बदलेगी। पहली श्रद्धा का अर्थ होता हैः अब तुम

यह न पूछोगे कि परमात्मा है या नहीं; अब तुम यह पूछोगे कि "मेरी आंख कैसे सुधर जाए कि अगर वह हो तो उसे मैं देख लूं; और अगर न हो तो उसके न होने को देख लूं। लेकिन आंख मेरी कैसे सुधर जाए?" तुम्हारी सारी वृत्ति, अब परमात्मा है या नहीं, इससे संबंधित न रही; अब इससे संबंधित हो गई कि मेरी देखने की क्षमता कैसे साफ हो जाए। होगा तो देखें लेंगे; न होगा तो न होना देख लेंगे। लेकिन अब बिना देखे न रहेंगे। जिसने यह तय कर लिया कि अब अंधे न रहेंगे; अब आंख चाहिए; बिना देखे न रहेंगे; न अब दर्शन चाहिए--वह पहली श्रद्धा को उपलब्ध हुआ।
"घर-घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।
लखत लखत परै, कटै जमफंद है।।"
और जिसने देखने की कोशिश की--"लखत लखत लखि परै"--ऐसा देखते-देखते एक दिन दिखाई पड़ जाता है; क्योंकि वह तो मौजूद है, सिर्फ आंख की कमी है। ये शब्द बड़े बहुमूल्य हैं--"लखत लखत लखि परै!" ऐसा देखते ही रहोगे, खोजते ही रहोगे, टटोलते ही रहोगे--इस कोने, उस कोने, इस दिशा में, उस दिशा में; इस आयाम, उस आयाम; रुकोगे न, देखते ही रहोगे, खोजते ही रहोगे--तो देखते-देखते- देखते एक दिन अचानक आंख खुल जाती है।
आंख तो है, सिर्फ उपयोग न करने से बंद पड़ी है। अंधे तुम हो नहीं। अंधा कोई भी नहीं है। अंधे भी अंधे नहीं हैं। अंधे को भी परमात्मा दिखाई पड़ सकता है, क्योंकि बाहर की आंख का कोई सवाल नहीं है, भीतर की ज्योति की बात है।
"लखत लखत लखि परै, कटै जमफंद है।"
और जैसे ही वह दिखाई पड़ जाता है, वैसे ही मृत्यु का पाश कट जाता है। फिर मरने वाला कोई भी न बचा। जिसने परमात्मा की एक झलक भी पा ली, उसने अमृत की झलक पा ली।
परमात्मा यानी अमृत। तुम यानी मृत्यु। तुम जब तक समझते हो कि तुम ही हो, परमात्मा नहीं, तब तक तुम मृत्यु के फंदे में हो। जिस दिन तुमने पाया कि मैं नहीं हूं, परमात्मा है, उसी क्षण--"कटै जमफंद है!"
लेकिन देखते-देखते-देखते दिखाई पड़ता है। ऐसे ही जैसे की तुम भरी दुपहरी में लंबी यात्रा करके घर लौटे, धूप से आंखें चकमका गई हैं, धूप ने लाखों को थका डाला है, धूप ने आंखों को बुरी तरह आक्रमित किया है--क्योंकि धूप हमला करती है आंख पर; हर क्षण बाहर की रोशनी आंख पर चोट करती है--थके- मांदे, धूप से थके-हारे तुम घर लौटे हो, अंधेरा मालूम पड़ता है घर में; कुछ दिखाई नहीं पड़ता; आंखें इतनी थक गई हैं और धूप की इतनी आदी हो गई हैं कि यह जो धीमी-सी शांत रोशनी है घर के भीतर, यह दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन अगर तुम शांत होकर, शिथिल होकर लेट गए, बैठे रहे थोड़ी देर--"लखत लखत लखि परै"--धीरे- धीरे आंख शांत रोशनी के लिए राजी हो जाती है; फिर से पा लेती है अपनी ऊर्जा--विश्राम से। धूप ने थकाया था; वह थकान मिट जाती है। धीरे-धीरे कमरे में रोशनी ज्यादा होने लगती है। कमरा वही है, रोशनी उतनी ही है; सिर्फ तुम्हारी आंख बदल रही है। अब आंख की क्षमता प्राप्त हो रही है। अब कमरे में तुम्हें परिपूर्ण रोशनी दिखाई पड़ने लगती है।
चोर अंधेरे घर में भी देख लेता है। तुम अपने घर में न चल सको, और चोर तुम्हारे घर में बड़ी शान से चल लेता है। तुम दिन में भी चलते हो तो चीजों से टकरा जाते हो; तुम्हारे पराए घर में जहां चोर कभी नहीं आया, वहां वह इतना देखकर चलता है, सम्हलकर चलता है कि तुम्हारी जमाई हुई चीजों से नहीं टकराता। अंधेरे में चोर को धीरे-धीरे दिखाई पड़ने लगता है।
अंधेरे में भी देखने से दिखाई पड़ने लगता है, तो भीतर तो बड़ी शांत रोशनी है, अंधेरा नहीं है। लेकिन जो लोग भी ध्यान में पहली दफा उतरते हैं, उनको यही प्रतीत होता है कि भीतर अंधेरा है। लोग मुझसे आकर कहते हैं कि आप कहते हैं रोशनी, हम आंख बंद करते हैं, सिवाय अंधेरे के कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
तुम रोशनी से थके हुए आए हो, जन्मों-जन्मों तक धूप से आक्रांत--थोड़ा समय चाहिए। "लखत लखत लखि परै।" थोड़ा बैठो भीतर, थोड़ा विश्राम करो। जल्दी मत करो। अभी तुम्हारी आंखों को भीतर की रोशनी के साथ तालमेल बिठाना

पड़ेगा। जब तालमेल बैठ जाएगा, तब तुम देख पाओगे। तब एक अनूठी रोशनी का दर्शन होता है, जो रोशन तो है लेकिन जलाती नहीं।
यहूदियों की बड़ी पुरानी कथा है कि हजरत मूसा जब सिनाई के पर्वत पर गए
तो अचानक उन्होंने आवाज सुनी कि जूते उतार दे, क्योंकि यह पवित्र भूमि है।
तो डर कर उन्होंने जूते उतार दिए। आगे बढ़े तो उन्होंने एक झाड़ी में आग को जलते देखा। वे बड़े हैरान हो गए। वह बड़ा चमत्कारी अनुभव था। आग तो जल रही थी और झाड़ी जल नहीं रही थी। आग में तो लपटें निकल रही थी; झाड़ी हरी की हरी थी। यहूदियों को बड़ी मुश्किल हुई यह समझाने में कि इसका क्या मतलब होगा। इसका मतलब बाहर की किसी कथा से नहीं है; इसका मतलब भीतर की आग से है। भीतर एक ऐसी आग है जो जलती है और जलाती नहीं। एक बड़ी ठंडी रोशनी है; ठंडी आग--बरफ जैसी ठंडी, और आग जैसी उज्जवल। जब तुम भीतर जाओगे तो बाहर की रोशनी से इस रोशनी का गुणधर्म अलग है। इसलिए तुम्हारे पास नई आंखें चाहिए जो इसे देख सकें। और तुम्हें अपनी आंखों को धीरे-धीरे समायोजित करना होगा।
ध्यान की सारी प्रक्रियाएं और कुछ भी नहीं हैं, सिवाय इसके कि तुम्हारी बाहर देखने के लिए जो आदत बनी है आंखों की, उसमें एक नई आदत को प्रवेश करवा दें कि तुम भीतर देखते रहो, कितना ही अंधेरा हो, अंधेरे को ही देखते रहो--अंधेरे को भी देखते-देखते-देखते तुम एक दिन पाओगे कि अंधेरा कम होने लगा; एक धीमी सी रोशनी आने लगी। अगर तुम देखते ही गए, देखते ही गए, तो एक नई रोशनी का जगत प्रारंभ हो जाता है।
"लखत लखत लखि परै, कटै जमफंद है।"
"कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है।"
कबीर कहते हैं, न तो कुछ कहने को है उस संबंध में, क्योंकि जो भी कहो,
वह गलत हो जाता है; जो भी कहो वह गलत है। क्योंकि भाषा तो बाहर की है और अनुभव भीतर का है--तालमेल नहीं बैठता। जो भी कहो गलत हो जाता है। सब शास्त्र गलत हो गए। सब ज्ञानी गलत हो गए। सिर्फ पंडित को ख्याल होता है कि वह जो कह रहा है वह सही है; ज्ञानी को तो पक्का ही ख्याल होता है कि वह जो कह रहा है वह सही नहीं है। वह कह रहा है इसलिए नहीं कि वह सोचता है कि कह सकेगा; वह कह रहा है इसलिए कि तुम बिना कहे न सुनोगे। तुम कहने से भी नहीं सुन पाते, तो बिना कहे तो सुनना बहुत असंभव है।
ज्ञानी के वचन भीतर की बात कहने के लिए नहीं हैं; जो बाहर भटक रहे हैं, उनको भीतर बुलाने के लिए हैं। ज्ञानी के वचन तो ऐसे हैं जैसे मंदिर का घंटा होता है; कुछ कहता नहीं, सिर्फ बुलाता है। हर मंदिर के सामने घंटा टंगा है। मस्जिद के पास सुबह अजान देने के लिए मुल्ला चढ़ जाता है। ज्ञानी के वचन तो अजान की तरह हैं--कुछ कहता नहीं; सिर्फ जो सोए हैं, उनको जगाता है, पुकारता है, बुलाता है। एक निमंत्रण है ज्ञानी के वचन में, सत्य की अभिव्यक्ति नहीं।
इसे ठीक से समझ लेना। पंडित भर को यह ख्याल होता है कि वह जो कह रहा है
वह ठीक कह रहा है, क्योंकि उसे पता नहीं है कि ठीक क्या है। उसे शब्दों का ही पता है। जिसे सत्य का पता है वह भलीभांति जानता है कि कोई शब्द सत्य को प्रकट करने में समर्थ नहीं है। वह चेष्टा ही असंभव है।
वह तो ऐसा ही है, समझो कि कोई सौंदर्य को गणित की भाषा में प्रकट करना चाहे--कैसे करिएगा? सौंदर्य और गणित का कोई मेल ही नहीं बैठता। अगर सौंदर्य को प्रकट करना हो तो काव्य की भाषा चाहिए। और वह भी कोई साधारण सौंदर्य हो तो काव्य की भाषा काम आ जाएगी; अगर कोई असाधारण सौंदर्य हो तो काव्य भी ठिठक कर खड़ा हो जाएगा, कविता भी मूक हो जाएगी।
अगर प्रेम की बात कहनी हो तो बाजार की भाषा में नहीं कही जा सकती। बाजार की भाषा प्रेम के लिए नहीं है, शोषण के लिए है। बाजार की भाषा बाजारू है। प्रेम की भाषा हृदय की है। और वह भी छोटा-मोटा प्रेम हो तो थोड़ा सा डगमगा कर कुछ कहा जा सकता है; लेकिन वह भी ऐसा ही होगा जैसे छोटे बच्चे तुतला रहे हों। अगर प्रेम परमात्मा से हो, भक्ति हो, फिर कुछ कहने का उपाय नहीं, वहां तो मौन ही एकमात्र भाषा है।
सारी भाषा बाहर की है। भीतर की कोई भाषा नहीं है, हो ही नहीं सकती।

पूछा जा सकता है कि हजारों-हजारों साल से ज्ञानी भीतर जा रहे हैं, अब
तक भीतर की भाषा विकसित क्यों नहीं हुई? कोई नई घटना तो नहीं है। उस भीतर के देश में न मालूम कितने लोग गए हैं! न मालूम कितने लोग वहां से डूबकर और सिक्त होकर आए हैं! न मालूम कितनों ने भीतर के उस अंतरध्यान में लीनता पाई है! अब तक भीतर की भाषा विकसित क्यों नहीं हो सकी? कारण है। भाषा की जरूरत होती है, जहां दो हों। भीतर तो तुम अकेले ही होते हो। अकेले में तो भाषा की कोई जरूरत नहीं होती। भाषा की जरूरत होती है जहां दो हों, जहां द्वैत हो; अद्वैत में तो भाषा का कोई सवाल ही नहीं उठता। जहां अकेले ही हैं, वहां किससे बोलना है, किसको बोलना है? तो भीतर तो आदमी जाकर बिल्कुल गूंगा हो जाता है। कबीर कहते हैंः "गूंगे केरी सरकरा, खाए और मुसकाए।" गूंगा खा लेता है शक्कर, और मुसकाता है।
वैसे ही भीतर का अनुभव है कि वहां एक ही बचता है, और वह भी इतने अपरिसीम आनंद-उत्सव में लीन हो जाता है कि कौन खोजे भाषा और किसके लिए खोजे? जब बाहर आता है भीतर से, तब अड़चन शुरू होती है--बाहर खड़े हैं लोग, इनको बताना मुश्किल हो जाता है। तो कबीर कहते हैंः "कहन सुनन कछु नाहिं"--न तो कुछ कहने को है, न कुछ सुनने को है। कहना-सुनना दोनों छोड़कर, मार्ग पकड़ना है "होने" का। बहुत कहा गया, बहुत सुना गया है--कुछ भी हुआ नहीं। "होने" का एकमात्र मार्ग है।
"नहीं कछु करन है"--करने को भी कुछ नहीं है।
इसलिए मैं कहता हूं, ये बड़े क्रांतिकारी वचन हैं। कोई करने की बात नहीं है। क्या करोगे उसे पाने के लिए? जिसे पाया ही हुआ है, उसे पाने के लिए क्या करोगे? जो भीतर छिपा ही है, मौजूद है, जो तुम्हारे साथ ही चला आया है, जो तुम्हारी अंतर-संपदा है--उसे पाने के लिए क्या करोगे? उसे जितना तुम पाने की कोशिश करोगे, उतनी ही अड़चन खड़ी होगी। जैसे कोई अपनी ही खोज में निकल जाए--भटकेगा। दूसरे की खोज, समझ में आती है; अपनी ही खोज--कहां खोजोगे? हिमालय जाओगे? मक्का-मदीना, काशी, गिरनार--कहां जाओगे?
एक दिन बाजार में लोगों ने देखा कि नसरुद्दीन अपने गधे पर बैठा तेजी
से भागा जा रहा है। भीड़ में से कुछ लोग चिल्लाए, "नसरुद्दीन, कहां जा रहे हो?" लेकिन उसने कहा कि अभी समय नहीं, जल्दी में हूं। और वह भी भागते हुए, गधे पर उसने चिल्ला कर कहा कि अभी समय नहीं है, बहुत जल्दी में हूं। घंटे भर बाद वापस लौट रहा था--बहुत उदास, तो लोगों ने पूछा, "मामला क्या था? इतनी जल्दी क्या थी?" उसने कहा कि मैं अपने गधे को खोजने जा रहा था और इतनी जल्दी में था कि यही भूल गया कि मैं गधे पर ही बैठा हुआ हूं। जल्दी के कारण इतनी भी फुरसत न मिली कि मैं ठीक से देख लूं।
बहुत बार ऐसा हो जाता है कि तुम चश्मा लगाए हो और चश्मा खोज रहे हो; चश्मे ही से चश्मा खोज रहे हो। और जल्दी में अक्सर हो जाता है। कभी अगर तुम्हें जल्दी ट्रेन पकड़नी है, तो तुम्हें पता होगा कि जो बटन सदा अपने ही काज में लगती थी, वह दूसरे काज में लग जाती है। जल्दी में... !
एक होटल में आग लग गई। बड़ी घबड़ाहट फैल गई। विक्षिप्तता आ गई लोगों में। भयंकर आग थी, बामुश्किल लोग बाहर निकल पाए। नसरुद्दीन भी होटल में ठहरा हुआ था। वह नीचे बढ़ा, शान से सीढ़ियां उतरते हुआ और और उसने कहा, "क्या मर्द होकर, और इस तरह शोरगुल मचा रहे हो? एक मुझ को देखो। जब मैंने देखा कि आग लग गई, तो उस वक्त मैं चाय पी रहा था। तो पहले तो मैंने अपनी चाय पूरी की, फिर अपनी टाई बांधी। टाई की गांठ ठीक न लगी थी तो आइने के पास जाकर गांठ ठीक की। एक मैं आदमी हूं, और एक तुम नामर्द की तरह चिल्लाए, भागे जा रहे हो।"
भीड़ ने कहा, "वह तो ठीक है, लेकिन आप पायजामा क्यों नहीं पहने हुए हैं?"
वे बिना ही पायजामा के खड़े थे!
जल्दी में होश खो जाता है; तुम वही खोजने लगते हो, जिसे तुमने कभी खोया नहीं था। और आदमी बड़ी जल्दी में है। मौत पास खड़ी है; वह घबड़ाहट और एक जल्दबाजी पैदा करती है।

पूरब के लोग इतनी जल्दी में नहीं हैं। इसलिए पूरब के लोग कभी-कभी आत्मा को खोज लेते हैं; पश्चिम के लोग नहीं खोज पाते, क्योंकि वे और भी जल्दी में हैं।
पश्चिम में एक बड़ा दुर्भाग्य घटित हो गया। वह दुर्भाग्य यह था कि ईसाई, यहूदी और मुसलमान तीनों ने एक ही जन्म का सिद्धांत मान लिया--बस यह एक ही जन्म; जन्म और मृत्यु सत्तर साल बस! इस अनंत यात्रा में कुल सत्तर साल का वक्त है--बहुत कम; करने को बहुत ज्यादा, समय बहुत कम। इसलिए पश्चिम एक हड़बड़ाहट में है, सदा भागा हुआ है; तेजी है, और तेजी को बढ़ाया जाता है। ये जो जेट और अंतरिक्ष-यान पैदा हो रहे हैं, अगर इनको कोई किसी दिन गौर से समझेगा कि ये भीतर की जल्दबाजी के परिणाम हैं। गति को बढ़ा रहे हैं--स्पीड, ताकि समय बड़ा हो जाए गति के माध्यम से।
अगर तुम बैलगाड़ी में चलते हो तो जहां पहुंचने में तुम्हें दो दिन लगेंगे वहां तुम दस मिनट में हवाई जहाज से पहुंच जाते हो--तो तुमने दो दिन बचा लिए।
समय बहुत कम है, और समय को बचाना है, तो जितनी स्पीड हो जाए हर चीज में उतना ज्यादा समय बच जाएगा। ऐसा ख्याल है, बचता नहीं है। क्योंकि, जो समय बचता है, उसको भी तुम स्पीड में ही लगाते हो ताकि वह और बच जाए। अंततः तुम पाते हो कि दौड़े बहुत, पहुंचे कहीं भी नहीं।
ऐसा हुआ कि अमरीका में पहली दफा ट्रेनें चलाई गईं; ट्रेन की पटरियां डाली गईं; तो एक आदिवासी कबीले में भी पहली दफे ट्रेन गुजरने वाली थी। अमरीकी प्रेसीडेंट उसका उदघाटन करने गया। स्टेशन पर झाड़ के नीचे एक आदिवासी लेटा हुआ सारा दृश्य बड़े मजे से देख रहा है; बीच-बीच में अपने हुक्के से दम लगा लेता है, फिर अपने लेट कर वही देख रहा है--ऐसे जैसे दुनिया में कुछ करने को नहीं है। प्रेसीडेंट उसके पास गया और उसने कहा कि तुम्हें शायद पता नहीं कि यह बड़ी ऐतिहासिक घटना है, इस ट्रेन का गुजरना। उस आदिवासी ने पूछा, इससे क्या होगा? तो प्रेसीडेंट ने उसे समझाने के लिए कहा कि तुम लकड़ियां काट कर शहर जाते हो बेचने--कितने दिन लगते हैं? उसने कहा कि दो दिन जाने में लगते हैं, एक दिन बेचने में लग जाता है, दो दिन लौटने में लगते हैं--सप्ताह में पांच दिन लग जाते हैं और फिर दो दिन घर आराम करना पड़ता है, फिर जाना पड़ता है। अभी ये आराम के दिन हैं--दो दिन।
प्रेसीडेंट ने कहाः "अब तुम समझ सकोगे। ट्रेन से तुम घंटे भर में पहुंच जाओगे, और दिन भर में बिक्री करके रात घंटे भर में घर वापस आ जाओगे।" सोचा था प्रेसीडेंट ने कि आदिवासी बहुत प्रसन्न होगा, वह थोड़ा उदास हो गया। उसने कहा, "फिर छह दिन, बाकी दिन क्या करेंगे? यह तो बहुत झंझट हो गई।" समय कम हो तो बचाओ, बचाने का अर्थ है गति को तेज कर लो, सब चीजों में गति कर लो। सब चीजों में गति हो जाती है, एक हड़बड़ाहट पैदा हो जाती है, भीतर एक तनाव पैदा हो जाता है। तुम सदा भागे-भागे हो; जहां हो वहां नहीं हो। तुम्हें कहीं और आगे होना था, वहां तुम अभी पहुंचे नहीं हो। जब तुम वहां पहुंचोगे, तब तुम वहां नहीं हो। तुम सदा अपने से आगे भागे जा रहे हो। चित्त बहुत अशांत और बेचैनी से भर जाता है। ऐसी हड़बड़ी में कैसे तुम स्वयं को पा सकोगे? क्योंकि स्वयं को पाने के लिए एक स्थिति चाहिए--जैसे कहीं नहीं जाना, कुछ नहीं करना, सिर्फ आंख बंद करके बैठे रहना है, अपने में डूबना है। इसलिए पूरब में तो कभी-कभी आत्म-ज्ञान की घटना घट जाती है। पश्चिम में बहुत मुश्किल हो गई है। और पूरब में घट जाती है, क्योंकि पूरब को ख्याल है कि जल्दी कुछ भी नहीं है यह जन्म ही नहीं, अनंत जन्म हैं। यात्रा लंबी है। समय बहुत है। विश्राम किया जा सकता है।
जिसने विश्राम की कला सीख ली, जिसने विराम का राज समझ लिया, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाएगा। यह बात तुम्हें बड़ी बेबूझ लगेगी। श्रम से कभी किसी ने परमात्मा को नहीं पाया। श्रम से संसार पाया जाता है, बाहर की वस्तुएं पाई जाती हैं; विश्राम से परमात्मा पाया जाता है, भीतर का अस्तित्व पाया जाता है।
बाहर कुछ पाना हो तो दौड़ना, नहीं तो न पा सकोगे। इसलिए तो भारत नहीं पा सका; बाहर की दुनिया में गरीब रह गया। पूरब बाहर की दुनिया में कुछ भी नहीं

पा सका, मुश्किल से जी रहा है। पश्चिम ने बाहर की दुनिया में अंबार लगा लिए; इतनी चीजें इकट्ठी कर लीं कि अब यही समझ में नहीं आता है कि इनका उपयोग करो कैसे, इनका उपयोग क्या हुआ? पूरब दरिद्र रह गया, पश्चिम अमीर हो गया।
बाहर की दुनिया में कुछ करना हो तो बड़ी सक्रियता चाहिए। क्योंकि बाहर
की दुनिया तुम्हें मिली ही नहीं हुई है। उसे पाने के लिए चेष्टा करनी पड़ेगी। और भीतर की दुनिया में कुछ करना हो तो विश्राम चाहिए, परम विश्राम चाहिए। क्योंकि वहां तो मिला ही हुआ है, वहां कुछ करना नहीं है; सिर्फ विश्राम की अवस्था लानी है ताकि चित्त के तनाव तुम्हें बाहर न खींचें, ताकि चित्त की तरंगें तुम्हें उलझाएं न, चित्त निस्तरंग हो जाए--तो अचानक तुम गिर गए उस गहन खाई में जिसका नाम परमात्मा है।
"कहन सुनन कछु नाहिं, नहिं कछु करन है।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।।"
और यही बात है, जिसको मैं विश्राम कह रहा हूं, उसको कबीर जीते-जी मरना
कह रहे हैं। आखिर रात जब तुम नींद में सोते हो तो करते क्या हो? --थोड़ी देर को मर जाते हो। नींद रोज-रोज का छोटा-छोटा मरना है, और मृत्यु लंबी देर के लिए मरना है। फिर पैदा हो जाओगे। जैसे रात सोओगे, सुबह जग जाओगे--ऐसे ही इस शरीर में मरोगे, दूसरे शरीर में पैदा हो जाओगे। अंतर केवल परिमाण का है, गुण का नहीं है। इसलिए निद्रा मृत्यु जैसी है और मृत्यु निद्रा जैसी है। "जीते-जी मरि रहै"--तो फिर जीते-जी मरने की क्या कला होगी? वह यही होगी
कि जब तुम्हें मौका मिले, आंख बंद करके मर रहो बाहर की तरफ, जैसे बाहर नहीं है, जैसे तुम नींद में खो गए। होश में रहते हुए नींद में खो जाओ। जागे-जागे बाहर की तरफ मर जाओ। बाहर मिट जाए, तुम बाहर के लिए मिट जाओ--सिर्फ भीतर रह जाए; एकमात्र अस्तित्व भीतर का बचे।
"जीते-जी मरि रहै, बहुत नहिं मरन है।" और जिसने ऐसे मरने की कला सीख ली फिर वह कभी नहीं मरता। फिर तो वह मरते समय भी भीतर जीता है। फिर तो मरते समय भी वह भीतर जागता है। फिर तो मौत को भी वह देखते हुए गुजरता है। फिर मृत्यु में भी वह होश को कायम रखता है। क्योंकि होश भीतर की बात है। तुम्हें एक दफा भीतर जाना आ गया, मरते वक्त तुम रोओगे, चिल्लाओगे, चीखोगे नहीं; तुम आंख बंद कर लोगे, चुपचाप भीतर डूब जाओगे। और यह जो भीतर डूबना है, अगर तुम्हें मौत में आ गया, फिर कैसी मौत!
शरीर मरेगा, मन मरेगा, तुम नहीं मरोगे। वह जानने वाला, जगाने वाला जागा ही रहेगा, जीवित ही रहेगा--वही अमृत है।
"जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है।" फिर न उसका कोई जन्म है, न कोई मृत्यु; वह आवागमन के पार हो गया।
"जोगी पड़े वियोग, कहैं घर दूर है।" कबीर बड़ा मजेदार व्यंग कर रहे हैं।
वे कह रहे हैं, "जोगी पड़े वियोग!"
योगी का अर्थ होता है, जो मिले ही हुए हैं--वे वियोग कर रहे हैं! परमात्मा से जो मिले ही हुए हैं, वे भी रो रहे हैं और पूछ रहे हैं कि परमात्मा कहां है!
"जोगी पड़े वियोग।" वियोग कभी हुआ नहीं उससे। योग की बात ही करनी बेकार है। जिससे कभी हम दूर ही नहीं हुए, उसको पास लाने का क्या कारण है?
मछली ने कभी सागर छोड़ा है? वह सागर में ही पैदा होती है, सागर में ही लीन होती है। परमात्मा में हम जी रहे हैं, उसी में श्वास लेते, उसी में उठते-बैठते, चलते, भटकते, पाते--सब उसी में घट रहा है। खोते भी हैं, तो भी उसी के भीतर हैं; पाते हैं तो भी उसी के भीतर हैं। उससे बाहर होने का कोई उपाय नहीं है। मछली तो कभी-कभी छलांग लगा कर तट पर भी आ सकती है और तड़फ सकती है, लेकिन परमात्मा के बाहर होने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि उसके बाहर कोई तट ही नहीं है। वह तटहीन सागर है। उससे बाहर जाने की कोई जगह नहीं है, क्योंकि उसके बाहर कुछ नहीं है; वही सब कुछ है।
कबीर बड़ी गहरी मजाक कर रहे हैं। कह रहे हैं, "जोगी पड़े वियोग"--जो जुड़े
ही हुए हैं, वे विरह का गीत गा रहे हैं, वे कह रहे हैं, कब होगा मिलन? रो रहे

हैं, छाती पीट रहे हैं। यह विधि वह विधि कर रहे हैं; त्याग, तप, यज्ञ चला रहे हैं।
"जोगी पड़े वियोग, कहैं, घर दूर है।"--कि घर बहुत दूर है। "पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है"--और वे तुम्हारे पास ही बैठे हैं, उनको खोजने के लिए आप खजूर पर चढ़ रहे हैं। नाहक गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे। बहुत से योगी खजूर पर चढ़ कर गिरते हैं। खजूर पर चढ़ने का मतलब ही है कि गिरने का उपाय करना। इसलिए बड़ा प्रसिद्ध शब्द है--"योगभ्रष्ट"; वह खजूर पर चढ़ने से होता है। कोई जरूरत ही न थी खजूर पर चढ़ने की और भ्रष्ट होने की। सिर्फ योगी ही भ्रष्ट होते हैं। तुमने किसी और को भ्रष्ट होते देखा? जो जमीन पर चल रहा है, वह भ्रष्ट किसलिए होगा? वह गिरेगा कैसे? खजूर पर चढ़े कि अड़चन आई।
दूर नहीं है परमात्मा, खजूर पर नहीं बैठा है। वह कोई पागल नहीं है कि खजूर पर बैठे। लेकिन अहंकार को चढ़ने में मजा आता है, खजूर चढ़ने में खासकर, क्योंकि और किसी झाड़ पर चढ़ना आसान है--कुछ सहारे रहते हैं, कुछ शाखाएं रहती हैं, कुछ पकड़ सकते हो। खजूर बिल्कुल सर्कस का नाम है। उस पर तो बड़ी कुशलता हो, बड़ा अभ्यास किया हो, योग-साधना की हो, तभी कोई चढ़ सकता है। बड़े संयम की जरूरत है खजूर पर चढ़ने में और आखिरी-आखिरी पहुंच कर भी आदमी गिर जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन चढ़ा। खजूर पक गए थे और उससे न रहा गया। डरा
तो बहुत, क्योंकि अभ्यास न था कोई। मगर पके फल! रस बहने लगा। रुक न सका। सुरक्षा करने के लिए उसने कहा कि हे परमात्मा! अगर सही-सलामत पहुंच गए और फल पा लिए, तो चार आने चढ़ाऊंगा, नकद चार आने! ध्यान रखना, अपने भक्त की फजीहत न करवा देना।
वह चढ़ा याद करते हुए परमात्मा को। पहुंच गया। जब बिल्कुल फल करीब आ गए
तो उसने कहा कि फल चार आने के मालूम ही नहीं पड़ते। चार आने में इतनी मेहनत और चार आना चढ़ाना? दो आना काफी है। ऐसा मन में उठा कि दो आना काफी है। और पहुंच भी गए, ऐसी कोई जरूरत भी नहीं है सुरक्षा की। जब फल हाथ में ही आ गए, तो उसने सोचा कि अरे, मैं तो सोचता था, पके हैं, आधे तो कच्चे हैं। एक आने से चल जाएगा। और जब वह बिल्कुल तोड़ने के ही करीब था फल, तो उसने सोचा कि चढ़ें तो हम और पैसा तुम्हें चढ़ाएं?
इसी चिंता में पैर चूक गया, भड़ाम से नीचे गिरा। ऊपर आकाश की तरफ मुंह करके कहा कि हद हो गई, जरा मजाक भी नहीं समझते! अगर फल पा लिए ही होते तो चार आने क्या, आठ आने चढ़ा देता!
चढ़ने में एक चुनौती है; और अहंकार के लिए चढ़ाई बड़ी प्रीतिकर है। जो अहंकार चढ़ाता है, फिर वही अहंकार गिराता भी है।
चढ़कर भी जाओगे कहां? खजूर कोई मार्ग थोड़े ही है जो कहीं पहुंचता है। अंततः अंत आ जाएगा। फिर क्या करोगे?
सब योग-विधियां अखीर में उस जगह आ जाती हैं, जहां से आगे जाने का कोई उपाय नहीं, विधि का अंत आएगा ही। साधना की एक सीमा है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है, और साधना की सीमा है। तो तुम साधना से असीम को कैसे पा सकोगे?
नहीं, कुछ करने से नहीं पाया जाता परमात्मा; न करने से पाया जाता है। इसको कबीर "सहज योग" कहते हैं। इसलिए कबीर बार-बार दोहराते हैं, "साधो सहज समाधि भली।"
सहज का मतलब हैः नाहक चढ़ो मत खजूर; शांत जीवन को जीओ; सहजता से जीओ; स्वाभाविकता से जीओ; सरलता से जीओ; व्यर्थ की उलझनें मत खड़ी करो। न तो कोई नाक बंद करने की जरूरत है, न कोई शीर्षासन करने की जरूरत है। कोई खजूर नहीं चाहिए--"पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है।।"
"बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै।।"
कबीर कहते हैं, ब्राह्मणों से जिन्होंने दीक्षा ली... । ब्राह्मण यानी पंडित--जिसने जाना नहीं और जिसे जानने का ख्याल है; जो बिना जाने ज्ञानी हो गया है, वह अज्ञानी से भी बदतर है। क्योंकि अज्ञानी कम से कम दूसरे को न भटकाएगा। अज्ञानी कम से कम डरेगा कि मुझे पता नहीं। अज्ञानी कम से कम विनम्र होगा। लेकिन ब्राह्मण, पंडित? वह तो जानता ही है, और वह दूसरों को

भटकाता है। वह दूसरों को दीक्षा दे रहा है, वह लोगों को कह रहा है कि चलो इस मार्ग पर। कोई वेद के मार्ग पर, कोई कुरान के मार्ग पर कोई बाइबल के मार्ग पर--पंडित अनंत हैं और वे दूसरे लोगों को भी चला रहे हैं।
जीसस ने कहा हैः "अगर अंधे अंधे को चलाएं तो क्या होगा?" कबीर ने जवाब दिया है, "अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत"--अंधे ने अंधे को चलाया, दोनों ही कुएं में गिरे--गुरु और शिष्य दोनों, उस्ताद-शागिर्द दोनों।
"बाह्मन दिच्छा देता सो, घर-घर घालिहै"--और जिन्होंने पंडितों से दीक्षा ली, वे विनष्ट हो गए।
काशी के पंडित अगर कबीर से नाराज थे तो अकारण नहीं। और काशी में ही-- पंडितों के घर में ही कबीर बैठे थे।
"घर-घर घालिहै"--उससे घर-घर का नाश हो गया है। जिन्होंने पंडितों से दीक्षा ले ली है, उनका विनाश हो गया है। विनाश का इतना ही अर्थ है कि जो जानते नहीं थे, उनके मार्ग पर तुम चलने लगे।
ज्ञानी को खोजना। लेकिन उसमें कठिनाई है। पंडित को पाना सदा आसान है।
वह जन्म के साथ ही तुम्हें उपलब्ध रहता है। अगर तुम जैन घर में पैदा हुए, तो जैन पंडित तुम्हें शिक्षा दे रहा है, जन्म के साथ ही। अगर तुम मुसलमान घर में पैदा हुए, मुसलमान मौलवी तुम्हें शिक्षा दे रहा है, जन्म के साथ ही। उसे तुम्हें खोजने के लिए नहीं जाना पड़ता, वह तुम्हारी गर्दन को खुद ही पकड़ लेता है, इसके पहले कि तुम्हें होश आए।
लेकिन ज्ञानी को तुम्हें खोजने जाना पड़ेगा। ज्ञानी को तो तुम्हें सजग-सचेत होकर पाने के लिए यात्रा करनी पड़ेगी। और जरूरी नहीं है कि ज्ञानी तुम जिस संप्रदाय में पैदा हुए हो, वहां मौजूद हो; अक्सर तो संप्रदाय में ज्ञानी नहीं होता। क्योंकि जैसे ही कोई ज्ञानी होता है, संप्रदाय उसे निकाल बाहर कर देता है। क्योंकि ज्ञानी खतरनाक है।
जीसस यहूदी घर में पैदा हुए, लेकिन यहूदियों ने निकाल बाहर कर दिया। बुद्ध हिंदू घर में पैदा हुए, लेकिन हिंदुओं ने निकाल बाहर कर दिया। ज्ञानी तो हमेशा संप्रदाय के बाहर निकाल दिया जाएगा। क्योंकि अगर ज्ञानी बचे, तो पंडितों का क्या होगा? और जहां सूरज जल रहा हो, वहां बुझे दीयों के पास कौन आएगा? तो पंडित कभी ज्ञानी को बरदाश्त नहीं कर सकता। ज्ञानी की मौजूदगी पंडित के पूरे व्यवसाय को जड़ से काट देती है। इसलिए पंडित तो सदा संप्रदाय में मिलेगा; ज्ञानी सदा संप्रदाय के बाहर मिलेगा। और वही अड़चन है। तुम अपने संप्रदाय में खोजो कि कोई हिंदू ज्ञानी मिल जाए-- हिंदू ज्ञानी कभी हुआ ही नहीं; कोई मुसलमान ज्ञानी मिल जाए--मुसलमान ज्ञानी कभी हुआ ही नहीं। ज्ञानी कहीं मुसलमान और हिंदू होता है? ज्ञानी सिर्फ होता; उसका कोई विशेषण नहीं है।
तब तुम्हें अड़चन होगी। उसके लिए तो तुम्हें संप्रदाय की दृष्टि छोड़नी पड़ेगी। तुम्हें अपनी बंधी धारणाएं हटानी पड़ेंगी। अगर तुम्हें आंखवाला गुरु चाहिए तो तुम्हें अपने संप्रदाय के सारे वस्त्र छोड़ने पड़ेंगे, तभी तुम उसे पा सकोगे। नहीं तो तुम्हें कोई अंधा गुरु मिल जाएगा।
"बाह्मन दिच्छा देत सो, घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास तू पाहन पालिहै।।"
और जो परमात्मा पास था, पंडित ने तुझे उसकी जगह पत्थर पकड़ा दिए। तू पत्थर पूज रहा है। परमात्मा पास था। पंडित की दीक्षा ने तुझे पत्थर पकड़ा दिए। और पत्थरों की पूजा चल रही है। कुछ हर्जा नहीं है पत्थर की पूजा में, अगर पत्थर में परमात्मा दिखाई पड़ रहा हो। लेकिन जिसको पत्थर में परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा, वह पत्थर में पूजने जाएगा? फिर तो सब जगह उसी की पूजा है, उसका तो सारा जीवन उसी की अर्चना हो जाएगा। फिर तो मंदिर विराट है। फिर तो पौधे में भी वही है। फिर तो मस्जिद में भी वही है और मंदिर में भी वही है। तो अगर मस्जिद पास हो, तो तुम मंदिर काहे के लिए जाओगे? मस्जिद में ही चले जाओगे। मस्जिद भी जाने की क्या जरूरत?
सुना है मैंने कि बायजीद जब बूढ़ा हो गया--एक मुसलमान फकीर। सत्तर साल लोगों ने उसे सदा मस्जिद में जाते देखा। एक दिन अचानक वह मस्जिद नहीं आया। वह बीमार हो तो जाता, कोई भी स्थिति में कभी वह मस्जिद में आने से नहीं

चूका था। एक दिन नहीं आया तो मस्जिद के लोगों ने समझा कि मर गया होगा, और कोई कारण नहीं हो सकता, क्योंकि बीमार कितना ही वह हो, वह आता ही है। वे पहुंचे उसके घर, वह अपने झोपड़े के सामने खंजड़ी बजा कर गीत गा रहा था। वे बड़े नाराज हो गए। उन्होंने कहाः "बुढ़ापे में क्या नास्तिक हो गए या सठिया गए?" बायजीद ने कहा कि जब तक मिला नहीं था, तब तक आते थे; अब जब मिल गया तो सभी तरफ वही है। अब मस्जिद के सिवाय और कोई जगह ही नहीं है। वही सब जगह मस्जिद है। अब किसके लिए आना? अब तक खोजते थे; अब खोजना न रहा, अब उत्सव शुरू हुआ। अब तो नाचेंगे, गाएंगे। अब कोई मांग न रही। अब वह सब तरफ मौजूद है।
"मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै"--वह पास बैठा है और तू मंदिरों में पूजा करने जा रहा है?
"ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।
नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है।।"
कबीर कहते हैंः ऐसा है वह साहब कबीर का! "ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।" खुद तो बहुत सुंदर-सलोना है ही, उसके सलोनेपन की क्या बात! उसके सौंदर्य की क्या चर्चा करें! उसके रूप का क्या वर्णन! खुद तो बहुत सुंदर है ही, उसने तुम्हें भी सुंदर बनाया है। तुम्हें उसने अपने से कम सुंदर नहीं बनाया। "ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है। नहीं जोग नहिं जप, पुन्न नहिं पाप है।।" तुम्हारे लिए न तो जोग की जरूरत है, न जाप की जरूरत है; और न कहीं पुण्य की कोई जरूरत है, न पाप की कोई जरूरत है। जिसने तुम्हें बनाया, वह पुण्य और पाप के बाहर है; तुम भी बाहर हो। और जिसने तुम्हें बनाया, तुम जिसकी कृति हो, उसके हस्ताक्षर तुम पर हैं--तुम कैसे पापी हो सकते हो? तुम कैसे बुरे हो सकते हो?
कहावत है, फल से वृक्ष जाना जाता है। तो तुमसे परमात्मा जाना जाएगा, क्योंकि तुम उसके श्रेष्ठतम फल हो इस पृथ्वी पर। इस सृष्टि में मनुष्य उसका श्रेष्ठतम फल है। तो तुम कैसे पापी हो सकते हो? जिन्होंने तुम्हें कहा, तुम पापी हो, उन्होंने तुम्हारे जीवन से परमात्मा का संबंध बिल्कुल तुड़वा दिया। तो कबीर कहते हैं, "ऐसन साहब कबीर"--कबीर के साहब ऐसे हैं, खुद तो प्यारे, सुंदर, अनूठे, अद्वितीय हैं--उनसे तुम भी पैदा हुए हो।
बाइबिल में कहा है कि परमात्मा ने अपनी ही शकल में आदमी को बनाया; बनाया है, लेकिन तुम्हें अपनी शकल का पता ही नहीं।
"नहीं जोग नहिं जाप"--न तो कोई जाप करने की जरूरत है, न कोई जोग करने की जरूरत है; न तो पुण्य करने की जरूरत है, न पाप से भयभीत होने की जरूरत है।
क्योंकि उस परम की निकटता में न तो पाप बचता है, न पुण्य बचता है।
यह आखिरी बात थोड़ी समझ लेने जैसी है।
पापी और पुण्यात्मा में बहुत फर्क नहीं है। इतना ही फर्क है, जैसे एक आदमी पैर पर खड़ा है और एक आदमी सिर पर खड़ा है। तुम अगर शीर्षासन कर लो तो कुछ फर्क हो जाएगा? --तुम ही रहोगे--सिर के बल खड़े रहोगे। अभी पैर के बल खड़े थे। क्या फर्क होगा तुममें? --तुम उलटे हो जाओगे। पुण्यात्मा सीधा खड़ा है; पापी सिर के बल खड़ा है--वह शीर्षासन कर रहा है। और शीर्षासन करने में कष्ट मिलता है, तो पा रहा है। पुण्यात्मा कुछ विशेष नहीं कर रहा है। और पापी कुछ पाप का फल आगे पाएगा, ऐसा नहीं है; पाप करने में ही पा रहा है। सिर के बल खड़े होओगे, कष्ट मिलेगा। और पुण्यात्मा पैर के बल खड़ा है, इसलिए सुख पा रहा है। इसमें कोई भविष्य में कोई सुख मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा--ऐसा कोई सवाल नहीं है। तुम अगर ठीक-ठीक चलते हो रास्ते पर, तो सकुशल घर आ जाते हो, बस। अगर तुम उलटे-सीधे चलते हो, शराब पीकर चलते हो--गिर पड़ते हो, पैर में चोट लग जाती है, फ्रैक्चर हो जाता है। कोई जमीन तुम्हारे पैर में फ्रैक्चर नहीं करना चाहती थी; तुम्हीं उलटे-सीधे चले।
पापी उलटा-सीधा चल रहा है, थोड़ा डांवाडोल चल रहा है; पुण्यात्मा थोड़ा सम्हल कर चल रहा है। लेकिन कबीर कहते हैं कि जो अपने भीतर चला गया, वह तो स्वयं परमात्मा हो गया--वहां न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। उसकी चाल का क्या कहना!

ध्यान रखो, पाप से दुख मिलता है, पुण्य से सुख मिलता है। पाप रोग की तरह है, पुण्य स्वस्थ होने की तरह है। लेकिन भीतर जो चला गया, वह न तो दुख में होता है, न सुख में; वह आनंद में जीता है। आनंद बड़ी और बात है। आनंद का मतलब हैः सुख भी गए, दुख भी गए। क्योंकि जब तक दुख रहते हैं, तभी तक सुख रहते हैं। और जब तक सुख रहते हैं, तब तक दुख भी छिपे रहते हैं; वे जाते नहीं। पापी के लिए नरक, पुण्यात्मा के लिए स्वर्ग; और जो भीतर पहुंच गया, उसके लिए मोक्ष। वह स्वर्ग और नरक दोनों के पार है।
पुण्य और पाप, दोनों ही बंधन है। पाप होगा लोहे की जंजीर, पुण्य होगा सोने की जंजीर--हीरे, जवाहरातों से जड़ी। पर क्या फर्क पड़ता है? पापी भी बंधा है, पुण्यात्मा भी बंधा है। पापी दुख पा रहा है, पुण्यात्मा सुख पा रहा है; लेकिन दोनों को अभी उसकी खबर नहीं मिली जो दोनों के पार है। दोनों द्वैत में जी रहे हैं। भीतर जिसने स्वयं को जाना; जिसने साहब को जाना; जिसने अपने सलोने रूप को पहचाना; जिसने अपने निराकार-निर्गुण को देखा; जिसने अपनी अद्वैत प्रतिष्ठा पाई--उसके लिए न तो कोई पुण्य है, न तो कोई पाप है। वह द्वंद्व के बाहर हो गया--वह निर्द्वंद्व है। वह द्वैत के पार उठ गया--वह अद्वैत है।
और यह साहब बहुत दूर नहीं है। पास भी कहना उचित नहीं है। साहब तुम्हारे भीतर है। भीतर कहना भी उचित नहीं है। साहब तुम्हीं हो। "ऐसन साहब कबीर... !"
"कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
पांचवां प्रवचन

धर्म और संप्रदाय में भेद

सूत्र

साधो देखो जग बौराना।
सांची कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।
बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।
आतम छोड़ि पखाने पूजैं, तिनका थोथा ग्याना।।
आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ वर्त भुलाना।।
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना।।
घर घर मंत्र जो देत फिरत है, माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़ें, अंतकाल पछिताना।।
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।।
हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वां झटका मारै, आग दोउ घर लागी।।
या विधि हंसी चलत है हमको, आप कहावै स्याना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।।

धर्म क्या है? शब्दों में, शास्त्रों में, क्रियाकांडों में या तुम्हारी अंतरात्मा में, तुममें, तुम्हारी चेतना की प्रज्वलित अग्नि में? धर्म कहां है? मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में?
आदमी के बनाए हुए मंदिर-मस्जिदों में धर्म हो कैसे सकता है? धर्म तो वहां है जहां परमात्मा के हाथ की छाप है। और तुमसे ज्यादा उसके हाथ की छाप और कहां है? मनुष्य की चेतना इस जगत में सर्वाधिक महिमापूर्ण है। वहीं उसका मंदिर है; वहीं धर्म है।
धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की एक प्रतीति--ऐसे प्रेम की जहां बूंद खो देती है अपने को सागर में और सागर हो जाती है; जहां सागर खो देता है अपने को बूंद में और बूंद हो जाता है; व्यक्ति और समष्टि के बीच ध्यान का ऐसा क्षण, जब दो नहीं बचते, एक ही शेष रह जाता है; प्रार्थना का एक ऐसा पल, जहां व्यक्ति तो शून्य हो जाता है; और समष्टि महाव्यक्तित्व की गरिमा से भर जाती है। इसलिए तो हम उस क्षण को ईश्वर का साक्षात्कार कहते हैं। व्यक्ति तो मिट जाता है, समष्टि में व्यक्तित्व छा जाता है; सारी समष्टि एक महाव्यक्तित्व का रूप ले लेती है।
धर्म व्यक्ति और समष्टि के बीच घटी एक अनूठी घटना है; लेकिन ध्यान रहे--सदा व्यक्ति और समष्टि के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच नहीं। और जिनको तुम धर्म कहते हो, वे सभी व्यक्ति और समाज के संबंध हैं। अच्छा हो, तुम उन्हें संप्रदाय कहो, धर्म नहीं। और संप्रदाय से धर्म का उतना ही संबंध है जितना जीवन का मुर्दा लाश से। कल तक कोई मित्र जीवित था, चलता था, उठता था, हंसता था, प्रफुल्लित होता था; आज प्राण-पखेरू उड़ गए, लाश पड़ी रह गई--उस व्यक्ति की हंसी से, मुस्कराहट से, गीत से, उस व्यक्ति के मनोभाव से, उस व्यक्ति के उठने, बैठने, चलने से, उस व्यक्ति के चैतन्य से, इस लाश का क्या संबंध है? पक्षी उड़ गया, पिंजरा पड़ा रह गया--वह जो आज आकाश में उड़ रहा है पक्षी, उससे इस लोहे के पिंजरे का क्या संबंध है? उतना ही संबंध है धर्म और संप्रदाय का।
धर्म जब मर जाता है, तब संप्रदाय पैदा होता है। और जो संप्रदाय में बंधे रह जाते हैं, वे कभी धर्म को उपलब्ध नहीं हो पाते। धर्म को उपलब्ध

होना हो तो संप्रदाय की लाश से मुक्त होना अत्यंत अनिवार्य है। अगर तुम समझदार होते तो तुम संप्रदाय के साथ भी वही करते, जो घर में कोई मर जाता है तो उसकी लाश के साथ करते हो। तुम मरघट ले जाते, दफना आते, आग लगा देते। लाश को कोई सम्हालकर रखता है? लेकिन तुम समझदार नहीं हो और लाश को सदियों से सम्हाल कर रखे हो--लाश सड़ती जाती है, उससे सिर्फ दुर्गंध आती है। उससे पृथ्वी पर कोई प्रेम का राज्य निर्मित नहीं होता, सिर्फ घृणा फैलती है, जहर फैलता है।
धर्म तो एक है, लाशें अनेक हैं; क्योंकि धर्म बहुत बार अवतरित होता है
और बहुत बार तिरोहित होता है--हर बार लाश छूट जाती है। तीन सौ संप्रदाय हैं पृथ्वी पर, और सब आपस में कलह से भरे हुए हैं। सब एक-दूसरे की निंदा और एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने की चेष्टा में संलग्न हैं, जैसे घृणा ही उनका धंधा है।
तुम्हारे मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों से अब प्रेम के स्वर नहीं उठते, प्रार्थना की बांसुरी नहीं बजती, सिर्फ घृणा का धुआं उठता है। यह हो सकता है कि तुम घृणा के धुएं के इतने आदी हो गए हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता; या तुम्हारी आंखें उस धुएं से इतनी भर गई हैं कि अब और आंखों से आंसू नहीं गिरते; या तुम इतने अंधे हो गए हो कि आंख ही तुम्हारे पास नहीं कि जिससे आंसू गिर सकें।
लेकिन धर्म मरता है। थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि धर्म तो शाश्वत है-- धर्म कैसे मर सकता है? निश्चित ही धर्म शाश्वत है, लेकिन इस पृथ्वी पर उसका कोई भी रूप शाश्वत नहीं है। जैसे तुम तो बहुत बार पैदा हुए, मरोगे; तुम्हारे भीतर जो छिपा शाश्वत है, वह कभी पैदा नहीं होता, कभी नहीं मरता। लेकिन तुम? तुम तो आओगे, देह धरोगे; यह देह मरेगी, फिर और देह धरोगे, वह भी मरेगी। थोड़ी देर सोचो, अगर आदमियों ने यह किया होता कि जितने लोगों ने अब तक देह धरी हैं, सबकी लाशें बचा ली होतीं, अगर तुम्हारी अकेले एक व्यक्ति की सब लाशें बचा ली होतीं, तो पृथ्वी पूरी तुम्हारी ही लाशों से भर जाती। क्योंकि तुम कभी पक्षी थे, कभी पशु थे, कभी पौधे थे। हिंदू कहते हैं, चौरासी करोड़ योनियों से तुम गुजरे हो। अगर एक योनि से एक बार गुजरे हो--जो कि कम से कम है, जिसके लिए बहुत ज्ञानवान होना जरूरी है कि एक बार में ही छुटकारा हो जाए एक ही योनि से--अगर हम न्यूनतम मान लें कि तुम एक योनि से एक बार गुजरे हो तो तुम्हारी चौरासी करोड़ लाशें अगर सम्हाल कर रखी जाती होतीं, तो जमीन भर जाती, पट जाती उनसे।
तुम्हारी ज्योति बहुत दीयों में जली है। ज्योति उड़ जाती है; दीये को सम्हाल कर रखते जाओ, मुश्किल में पड़ जाओगे। जिस जगह पर तुम बैठे हो, एक-एक इंच जगह पर करोड़ों लाशें गड़ी हैं। क्योंकि कितने लोग हैं! कितनी आत्माएं हैं! और कितने वर्तुल सबने लिए हैं!
ज्योति चली जाती है, लाश को हम दफना आते हैं। धर्म के साथ ऐसा नहीं हो पाया--ज्योति तो चली जाती है, लाश रह जाती है। लाश को हम सम्हाल लेते हैं। लाश सूक्ष्म है, इसलिए दुर्गंध का भी पता उन्हीं को चलता है जिनके पास बड़े तीव्र नासापुट हैं। लाश इतनी सूक्ष्म है कि कबीर जैसी आंखें हों, तो ही दिखाई पड़ती है।
इसीलिए धर्म पर संप्रदाय इकट्ठे हो जाते हैं और जब भी कोई नया दीया आविर्भूत होता है--सनातन की ज्योति को लेकर, तब मरे हुए सारे संप्रदाय उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं। क्योंकि वह एक नया प्रतियोगी है, और प्रतियोगी असाधारण है। उसके साथ जीता भी नहीं जा सकता, क्योंकि वह जीवित है, तुम मुर्दा हो। इसलिए सारे संप्रदाय धर्म के दीये को बुझाने में संलग्न रहते हैं। इसलिए तो महावीर पर पत्थर फेंके जाते हैं; बुद्ध का अपमान किया जाता है; जीसस को सूली दी जाती है; मंसूर की गर्दन काटी जाती है। वे जो प्रतिष्ठित संप्रदाय हैं, वे जब भी धर्म की ज्योति जगेगी, तभी भयभीत हो जाते हैं--खतरा पैदा हुआ। क्योंकि यह एक ज्योति उन सबको मिटा देने के लिए काफी है।
इस संबंध में कुछ बातें समझ लें तो कबीर के सीधे-सादे पद बड़ी गहन गरिमा से भर जाएंगे; उनमें से बड़ी सुवास उठेगी।

पहली बात--धर्म भी वैसे ही पृथ्वी पर आता है, जैसे आत्मा आती है। जब भी कोई व्यक्ति तैयार हो जाता है, और दीया पूरा निर्मित हो जाता है, तत्क्षण ज्योति उतर आती है। इसलिए हिंदू अपने धर्मपुरुषों को अवतार कहते हैं। अवतार का मतलब है--अवतरित होना, ऊपर से नीचे आना। यह अवतार शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है!
बुद्ध चालीस वर्ष तक अवतार नहीं थे। एक रात अचानक सब घट गया, दूसरे दिन सुबह वे अवतार हो गए। क्या हुआ उस रात? --दीया चालीस वर्ष से तैयार हो रहा था; जब दीया परिपूर्ण तैयार हो गया, ज्योति उतर आई।
हम इतना ही कर सकते हैं, पृथ्वी पर, दीया तैयार कर सकते हैं; ज्योति तो
इस पृथ्वी पर है ही नहीं। ज्योति तो आती है अज्ञात से; ज्योति तो आती है अनंत से; ज्योति तो आती है सनातन शाश्वत से--जब भी कोई दीया पूरी तरह तैयार हो जाता है, तब ज्योति उतर आती है। तुम केवल स्थिति पैदा कर दो परमात्मा के उतरने की और तुम्हारे भीतर परमात्मा उतर आएगा।
अवतरण का अर्थ हैः ऊपर से उतरता है धर्म। पृथ्वी पर हम दीये बनाते हैं, ज्योति ऊपर से आती है। फिर जब दीया टूट जाता है तो टूटे खंडहर को तुम बचा लेते हो; ज्योति तो फिर ऊपर चली जाती है। जो ऊपर से आई थी, वह तुम्हारे कारण नहीं आई थी, वह तुम्हारे कारण रह भी नहीं सकती; वह जिसके कारण आई थी, वह दीया टूट गया--वह बुद्ध के साथ ही विलीन हो जाती है। लेकिन बुद्ध के पद-चिह्न छूट जाते हैं रेत पर। उन्हीं पदचिह्नों की पूजा चलती है। कहां तो बुद्ध के चरण, कहां तो उन चरणों से बहती हुई अनंत धारा ऊर्जा की--कि जिनमें भी साहस था झुकने का, वे झुके और सदा के लिए तृप्त हो गए; कि जिनमें भी हिम्मत थी बुद्ध के चरणों को छू लेने की, उन्होंने छुआ, और जैसे पारस छू गया और लोहा सोना हो गया--कहां तो वे चरण, और कहां फिर रेत पर छोड़े हुए सूखे चिह्न! फिर उन चिह्नों की पूजा चलती है और चिह्नों की पूजा में भी अर्थ हो सकता है, लेकिन केवल उन्हीं के लिए जिन्होंने बुद्ध के चरण देखे थे। इसलिए पहली पीढ़ी उन चरणों में भी बुद्ध के वास्तविक चरणों की भनक पाती है। स्वाभाविक है। जिन्होंने असली चरण देखे थे, चरणचिह्नों को देखकर भी याद जगती है, याद का दीया जलता है। चरण-चिह्नों को देख कर भी भीतर वे सब यादें हरी हो जाती हैं जो बुद्ध के चरणों के पास घटी थीं।
लेकिन दूसरी पीढ़ी जो सिर्फ कहानियां सुनेगी, उसके लिए चरण-चिह्न तो सिर्फ रेत पर बने चरण-चिह्न होंगे। इसलिए बुद्ध के चरण-चिह्नों में और बुद्धुओं के चरण-चिह्नों में क्या फर्क होगा? कोई फर्क न होगा।
पहली पीढ़ी ने तो जीवंत घटना देखी थी। पहली पीढ़ी का तो अंतस्तल डोला था। पहली पीढ़ी ने तो नृत्य किया था अवतरित ऊर्जा के साथ, थोड़ी देर साथ चला था; थोड़ी देर का संग-साथ हो गया था! और जैसे कोई फूलों की बगिया से गुजर जाए तो भी वस्त्र वास पकड़ लेते हैं फूलों की--ऐसी हर बुद्ध के पास रह कर पहली पीढ़ी ने तो थोड़ी सी वास पकड़ ली थी। लेकिन दूसरी पीढ़ी आएगी, दूसरी पीढ़ी के लिए तो बुद्ध के चरण-चिह्न कुछ भी अर्थ न रखेंगे। अर्थ औपचारिक होगा। संप्रदाय औपचारिक है। पिता पूजते हैं, बेटा भी पूजेगा, पिता पूजते हैं तो बेटे को भी पुजवाएंगे। पिता जा करते हैं, वह बेटे को भी करने के लिए बाध्य करेंगे। जो पिता ने अपने निर्णय से किया था, वह बेटा पिता के निर्णय से करेगा। इस प्रकार सब मर गया।
पिता तो बुद्ध के पास गए थे अपने बोध से; खींचा था बुद्ध ने, इसलिए गए थे; भीतर कोई पुकार उठी थी; भीतर कोई आमंत्रण मिला था, तो गए थे। बेटे पर आरोपण होगा, आमंत्रण नहीं। न तो बुद्ध हैं पुकारने को, न बेटे को बुद्ध का कोई पता है। कथाएं हैं, कहानियां हैं, जिन पर बेटा भरोसा भी नहीं कर सकता, क्योंकि बातें ही कुछ ऐसी हैं कि जब तक जानो न, भरोसा नहीं होता। बेटे की यह मजबूरी है। जिसने जाना नहीं अवतरण को; जिसने देखी नहीं वह ज्योति जो आकाश से आती है; जिसने केवल पृथ्वी की ज्योतियां ही देखी हैं--उसके पास कोई उपाय भी तो नहीं है कि भरोसा करे। संदेह स्वाभाविक है। उसके संदेह को पुरानी पीढ़ी दबाएगी। पुरानी पीढ़ी भी एक मुसीबत में है--उसने देखा है। और कौन बाप न चाहेगा कि उसका बेटा भी भागीदार हो जाए उस परम अनुभव में! कौन मां न चाहेगी कि उसका बेटा भी उस परम की दिशा में यात्रा पर निकल जाए!

क्योंकि, जो भी हमने जाना है, हम चाहते हैं हमारे प्रियजन भी जान लें। जो हमने पिया और तृप्त हुए हम चाहते हैं, हमारे प्रियजन क्यों प्यासे क्षुधातुर मरें!
तो बाप की भी मजबूरी है कि वह चाहता है कि बेटे को दिखला दे। बेटे की मजबूरी है कि जो उसने देखा नहीं, जो निमंत्रण उसे नहीं मिला, वे उसे कैसे देख ले? इन दोनों के बीच संप्रदाय पैदा होता है। बाप थोपता है करुणा से; बेटा स्वीकार करता है भय से। बाप ताकतवर है जो कहता है मानना पड़ेगा, न मानो तो मुसीबत में डाल सकता है। बाप कहता है अपने प्रेम से! बेटा स्वीकार करता है अपनी निर्बलता से। इन दोनों के बीच में संप्रदाय पैदा होता है।
पहली पीढ़ी के पास तो थोड़ी-सी धुन होती है। गीत तो बंद हो गया, प्रतिध्वनि गूंजती रहती है। दूसरी पीढ़ी को न गीत का पता है, न प्रतिध्वनि का। जिसने गीत ही न सुना हो, उसे प्रतिध्वनि का कैसा पता चलेगा? जो मूल से ही चूक गया हो, उसके लिए प्रतिलिपियां काम न आएंगी। और कितना ही समझाओ, बात समझाने की नहीं है। कबीर कहते हैं, "लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।" देखी तो ही सही है, नहीं देखी तो परमात्मा से बड़ा झूठ इस संसार में नहीं है। देखा तो उससे बड़ा कोई सत्य नहीं है। देखा तो वही एक मात्र सत्य है; सभी सत्य उसमें लीन हो जाते हैं। नहीं देखा तो परमात्मा सरासर झूठ है। सब चीजें सत्य हैं। रास्ते के किनारे पर पड़ा पत्थर भी सत्य है; परमात्मा झूठ है।
"लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।"
लेकिन दूसरी पीढ़ी कैसे देखे? बाप ने देखी होगी; लेकिन जिसने देखी है सिर्फ, जिसने बुद्ध को देखा है, लेकिन जो बुद्ध नहीं हो गया, वह केवल कहानियां कह सकता है, वह दिखा नहीं सकता। वह स्मरण कर सकता है। स्मरण मधुर हैं, बड़े रससिक्त हैं; लेकिन उसके स्मरण बेटे के लिए क्या करेंगे? इसलिए तो हिंदुओं के पास किताबें हैं जिनका नाम हैः "स्मृति", जिसका नाम हैः "श्रुति"। श्रुति का मतलब हैः सुना--किसी ने कहा वह सुना। स्मृति का अर्थ हैः किसी की याददाश्त है, उसने बताया। इसलिए हिंदुओं के पास इतिहास नहीं हैं, पुराण हैं। पुराण का मतलब है कि हमने एक ऐसी महिमा की घटना देखी है कि हम उसे सिद्ध भी करना चाहें दूसरी पीढ़ी को, तो हम इतिहास की तरह सिद्ध भी न कर सकेंगे।
क्या सिद्ध करोगे? बुद्ध का जन्म सिद्ध हो सकता है, उसके गवाह मिल सकते हैं। बुद्ध राजा के बेटे थे, यह सिद्ध हो सकता है, उसके प्रमाण मिल सकते हैं। चालीस वर्ष तक के प्रमाण मिल जाएंगे बुद्ध के। लेकिन चालीसवें वर्ष में जो घटना घटी, उसका कौन गवाह है? किस क्षण में गौतम सिद्धार्थ, गौतम सिद्धार्थ न रहा, "गौतम बुद्ध" हो गया? उस क्षण का कोई भी तो गवाह नहीं है। उसको इतिहास कैसे बनाओगे जिसका कोई गवाह नहीं हैः इसलिए हम इतिहास कहते ही नहीं उसको, हम कहते हैं, पुराण; हम कहते हैं, कहानी है। कहानी हाथ में रह जाती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी हम उस कहानी को दोहराते हैं। जैसे-जैसे बुद्ध से दूरी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही हम कहानी को सही बताने के लिए अतिशयोक्तियों से भरने लगते हैं। सिद्ध करने के लिए नई पीढ़ियों के सामने कि एक महिमावान पुरुष हुआ था, धर्म उतरा था पृथ्वी पर। हम कपोल कल्पित बातें जोड़ने लगते हैं। कारण है कपोल कल्पित बातों को जोड़ने का, क्योंकि मूल घटना का कोई भी प्रमाण नहीं है। इसलिए हम उस मूल घटना को बड़ी कपोल-कल्पनाओं के घेरे में खड़ा कर देते हैं, ताकि तुम मूल की बात ही न पूछ सको। हम बड़ा जाल खड़ा कर देते हैं। वह जाल ही संप्रदाय है। और दूसरी पीढ़ियां मानती हैं, क्योंकि और पीढ़ियां मानती थीं; क्योंकि पिता मानते थे, इसलिए बेटा मानता है।
यह लाश है। इसमें सब मर जाता है। इस मरी हुई लाश को जो ढो रहा है, वह कबीर को न समझ पाएगा। और मजा तो यह है कि कोई बुद्ध के साथ हो, राम के साथ हो, कृष्ण के साथ हो, तो ठीक है; कबीर के साथ भी वही हो गया। कबीरपंथी लाश ढो रहे हैं।
आज मैं तुमसे जो कह रहा हूं, कल मेरे साथ भी यही हो जाएगा। तुम अपने बच्चों को जरूर कहना चाहोगे जो मैंने तुमसे कहा है। तुम बांटना चाहोगे।

अभी दो दिन पहले ही एक मित्र आए। पति-पत्नी दोनों संन्यासी हैं। पत्नी को गर्भ है तो वे चाहते थे कि उनके गर्भ के बच्चे को अभी संन्यास दे दूं। बड़ा प्रेम है! बड़ा भाव है! लेकिन ऐसे ही तो संप्रदाय निर्मित होता है। वह गर्भ के बच्चे को तो कोई पता ही नहीं। उसकी तो स्वीकृति भी नहीं। वह तो अभी बेहोश है। उनके प्रेम को कोई दोष नहीं दे सकता। यह प्रीतिकर है कि पिता और मां सोचे कि उनका बच्चा भी संन्यस्त हो। लेकिन इस बच्चे को तो कुछ भी पता नहीं है। और यह बच्चा संन्यासी बना दिया जाए तो आरोपण होगा; कल यह ढोएगा संन्यास को। तुमने तो अपनी प्रफुल्लता से लिया था; तुमने तो अपने आनंद से लिया था; तुमने तो किसी स्वाद से लिया था; तुमने तो निर्णय लिया था; तुम्हारा तो यह संकल्प और समर्पण था; लेकिन इस बेटे पर तो आरोपण होगा। अगर यह छोड़ेगा तो अपराध अनुभव करेगा कि माता-पिता ने संन्यास दिलवाया और मैं छोड़ता हूं, तो गिल्ट, अपराध पैदा होगा; अगर पालन करेगा तो झूठा होगा, क्योंकि मन में तो कोई भाव नहीं है। सांप्रदायिक व्यक्ति ऐसी ही दुविधा में फंसा होता है। अगर न माने, न करे, तो अपराध पकड़ता है--क्योंकि मैं धोखा दे रहा हूं पिता को, माता को, लंबी परंपरा को; न मालूम कितने लोगों ने आशाएं बांधी हैं उन सबको मैं तोड़ रहा हूं, धोखा दे रहा हूं। तो अगर कोई अपने संप्रदाय को छोड़ दे तो ग्लानि होती है, मन अपराध से भरता है; अगर पकड़े रखे तो कोई आनंद नहीं आता, कोई नृत्य पैदा नहीं होता--बोझ की तरह ढोता है। सांप्रदायिक व्यक्ति बड़ी दुविधा में जीता है।
मगर यह स्वाभाविक है। जिस दिन यह समझ लिया जाएगा पृथ्वी पर कि यह स्वाभाविक है, उस दिन यह बंद हो जाएगा। और जो व्यवहार लाश के साथ करते हैं, वही व्यवहार हमें संप्रदाय के साथ करना चाहिए। बहुत प्रेम है, माना बचाने का मन होता है; लेकिन पिता मर जाते हैं तो क्या करोगे? पति मर जाता है तो क्या करोगे? बेटा मर जाता है तो क्या करोगे? मन होता है कि छाती से लाश चिपका लें; मगर कितनी देर चिपकाए रखोगे? अगर लाश को ज्यादा देर चिपकाया तो तुम भी लाश हो जाओगे। उसकी दुर्गंध तुम्हें भी दुर्गंध से भर देगी। आज नहीं कल अपने को समझा कर लाश से छुटकारा लेना पड़ता है। पीड़ा होती है। इतना रस था, इतना प्रेम था, इतना लगाव था आज उसी को जलाने जाते हैं। लेकिन जाना ही पड़ता है। कष्ट से, दुख से, रोते हुए, जार-जार संताप से; लेकिन जलाने जाना ही पड़ता है।
जो लाश के साथ होता है, वही धर्म के साथ होना चाहिए--जब धर्म मर जाए। रोते हुए जाओ, दुखी जाओः लेकिन उसे विदा दे दो। और जब पृथ्वी पर लोग संप्रदायों को विदा देने की हिम्मत नहीं जुटाते, तब तक लाशें बढ़ती जाएंगी, दुर्गंध फैलती जाएगी।
मंदिर, मस्जिद, चर्च मरघट हो गए हैं। वहां बड़े महिमावान पुरुषों की लाशें पड़ी हैं, यह बात सच है; लेकिन लाश लाश है।
दूसरी बात, जब भी धर्म का अवतरण होता है किसी व्यक्ति में; जब कोई व्यक्ति आधार बनाता है धर्म की ज्योति को उतार लेने का; जब कोई व्यक्ति इतना सबल होता है अपनी शांति में कि परमात्मा को उतरना पड़ता है उसमें; जब कोई इतना गहन हो जाता है अपने समर्पण में कि अनंत को आकर के छूना पड़ता है उसे; जब किसी की प्यास परम हो जाती है, और किसी का रोआं-रोआं उसकी व्याकुलता से भर जाता है, तो उस पर वर्षा होती है परमात्मा की। जब यह घटना घटती है तब यह घटना इतने गहन निविड़ अंतस्तल में घटती है कि वहां शब्दों की कोई पहुंच नहीं; वहां भाषा का कोई स्थान नहीं; वहां कोई तरंग भी नहीं पहुंचती। वहां सब निस्तरंग है। वहां ज्योति अकंप जलती है।
उस भीतर की घटना को जब बाहर बताने आना पड़ता है, तब संप्रदाय पैदा होता है। लेकिन वह भी होगा। ज्ञानी बिना बताए नहीं रह सकता; क्योंकि जो जाना है, उसे बांटना ही होगा; जो पाया है उसे बांटना ही होगा।
दुख का स्वभाव है कि तुम चाहो तो बचा सकते हो। आनंद का स्वभाव है कि तुम उसे बचा नहीं सकते; तुम्हें बांटना ही होगा। दुखी आदमी एक कोने में बैठ सकता है, आनंदित आदमी नहीं बैठ सकता। वह चाहेगा कि मित्रों को इकट्ठा कर ले, भोज दे दें; आज तो पूर्णिमा की रात है; तारों के नीचे नाच लें; जो उसे मिला है, थोड़ा सा बांट दें। आनंद बंटना चाहिए। जैसे फूल जब सुगंध से भर

जाता है तो खिल जाता है, सुवास लुट जाती है; बादल जब जल से भर जाता है--तो बरस जाता है। ऐसी ही जब आनंद की घटना भीतर घटती है, उसे सम्हालना असंभव है; उसे कभी कोई नहीं सम्हाल पाया। दुखी आदमी चुप हो जाए, एकांत में बैठ जाए, गुहा में छिप जाए; आनंदित आदमी कितनी ही देर गुहा में बैठा हो, उतर कर वापस संसार में आ जाता है। दुखी महावीर जंगल जाते हैं। आनंदित महावीर बाजार में लौट आते हैं। दुखी बुद्ध भाग जाते हैं, महल से, आनंदित बुद्ध गांव-गांव भटकते हैं बांटने को। दुखी आदमी पलायन करता है जब आनंद की घटना घटती है, तो वह उतर आता है ठेठ वहां, जहां भीड़ है, जहां लेनेवाले हैं, जहां प्यासे लोग हैं। जहां पृथ्वी प्यास से तड़प रही है, वहां बादल बरसने को जाता है।
पर कठिनाई भीतरी है। जो जाना है, वह निःशब्द में जाना है। कहना होगा शब्द में, क्योंकि सुननेवाले शब्द को समझ सकेंगे, निःशब्द को नहीं। इसलिए कुरान, गीता, बाइबिल, इंजील, तालमुद, अवेस्ता इनका जन्म होता है। फिर लोग इन किताबों को ढोते रहते हैं; फिर इन किताबों में खोजते रहते हैं। इन किताबों में धर्म नहीं है। ये किताबें धर्म से पैदा हुई हैं, मगर इन किताबों में धर्म नहीं है। और जिन्होंने समझा कि इन किताबों में ही है, वे भटक गए; उनको फिर कभी भी न मिलेगा। ये किताबें तो इशारा हैं, ये तो मील के पत्थर हैं। ये तो कहती हैं, "और आगे!" बस, सब किताबें इतना ही कहती हैं, "और आगे! यहां मत रुको और आगे। चलो, बढ़ो--और आगे।" सब मील के पत्थर हैं, जहां तीर लगा है, "और आगे।"
कोई किताब मंजिल नहीं है, क्योंकि शब्द कैसे मंजिल हो सकता है? निःशब्द मंजिल है। परम मौन मंजिल है।
बड़ी अड़चन हो जाती है। जाना था निःशब्द में, जाना जा सकता है केवल निःशब्द में, बताया शब्द में। लोग शब्द को पकड़ लेते हैं। उनकी भी कठिनाई है--जाहिर है, साफ है, क्योंकि जो उनको बताया गया, वह पकड़ लेते हैं। और कठिनाई बड़ी सूक्ष्म और जटिल है।
जब बुद्ध बोलते हैं तो शब्द में तो सत्य नहीं होता; लेकिन बुद्ध के ओंठों को छूकर जो शब्द निकलते हैं, उनमें सत्य की झनकार होती है। शब्द तो तुम जो उपयोग करते हो, वही बुद्ध करते हैं, लेकिन शब्दों का गुणधर्म बदल जाता है। जब बुद्ध बोलते हैं, जो सिर्फ शब्द नहीं बोले जा रहे हैं; बुद्ध की आंखें भी कुछ कह रही हैं; बुद्ध के हाथ भी कुछ कह रहे हैं, बुद्ध का पूरा व्यक्तित्व कुछ कह रहा है। जब बुद्ध शब्द बोल रहे हैं, तब शब्द तो सिर्फ एक छोटा अंश है; बुद्ध का पूरा होना उसमें समाविष्ट है। तो बुद्ध जब बोलते हैं तो निर्जीव शब्द भी जीवन की प्रतीति ले लेते हैं; साधारण से शब्द भी हीरों की चमक ले लेते हैं। उस क्षण में तुम शब्द को अपने भीतर ले जाते हो। बुद्ध का सारा व्यक्तित्व उस शब्द के आस-पास एक वायुमंडल की तरह तुम्हारे भीतर आता है। लेकिन गीता में जब तुम पढ़ोगे तो कागज पर छपे स्याही के अक्षर हैं; वहां कृष्ण की मौजूदगी नहीं है। जब तुम धम्मपद में पढ़ोगे तो कागज और स्याही है; वहां बुद्ध के ओंठ, बुद्ध की आंखें, बुद्ध के हाथ, बुद्ध का होना, वहां कुछ भी नहीं है।
ऐसा ही समझो कि अगर तुमने संगीत की किताबें देखी हों, चिह्नों में संगीत लिखा होता है। संगीत में और संगीत की किताब में जहां चिह्न बने होते हैं संगीत के, उसमें जितना फर्क है--उतना ही फर्क बुद्ध के वचन और धम्मपद में है, कृष्ण के वचन और गीता में है। कहां बुद्ध के वचन--उनके भीतर की ज्योति से ज्योतिर्मय; उनके भीतर की सुवास से आंदोलित; उनके भीतर की गंध को लेते हुए, क्योंकि उनसे डूब कर आ रहे हैं, उनके गहनतम से आ रहे हैं! शब्द निःशब्द को कह नहीं सकते, लेकिन निःशब्द में से डूब कर आए हैं तो निःशब्द की थोड़ी से ध्वनि उन शब्दों में मौजूद होती है। वही ध्वनि प्रभावित करती है, शब्द प्रभावित नहीं करते।
शब्द तो मैं भी वही बोल रहा हूं, जो तुम बोलते हो। मेरे शब्दों के कारण तुम मेरे पास नहीं आ सकते। क्योंकि एक भी शब्द तो नया नहीं है जो तुम नहीं जानते। तुम मेरे पास किसी और कारण से हो। शब्द के पास-पास कुछ और भी घट रहा है। शब्द के आस-पास कुछ और भी घट रहा है। भला तुम उसे ठीक से समझ भी न पाओ, लेकिन तुम्हारा हृदय उसे पहचानता है। भला तुम उसे पकड़ कर मुट्ठी में बांध

ही न पाओ, किसी को बता भी न पाओ; लेकिन कहीं अंतस्तल में कोई भनक पैदा होती है और तुम जानते हो कि जो मैं कह रहा हूं वह शब्दों में ही नहीं है। वही तुम्हें छूता है, वही तुम्हें आंदोलित करता है।
कई बार तुम्हें अड़चन होती होगी। तुम मेरे शब्द सुनते हो, ठीक वही शब्द तुम जाकर दूसरे को कहते हो--तुम हैरान हो जाते हो कि तुमसे प्रभावित ही नहीं हो रहा है? बात क्या है? यह भी हो सकता है, तुम मेरे शब्दों को सुधार भी ले सकते हो, मुझसे भी अच्छा कर ले सकते हो--क्योंकि मैं कोई शब्दों में बहुत कुशल नहीं हूं; व्याकरण कोई ठिकाने की नहीं हैं--तुम उसे सुव्यवस्थित कर सकते हो; लेकिन तुम हैरान होओगे कि बात क्या है, वही मैं कह रहा हूं? शब्द कुछ भी नहीं हैं। शब्द तो निर्जीव हैं; जीवन तो तुम्हारे भीतर से डाला जाए तो ही डाला जाता है।
बुद्ध से जो प्रभावित हुए, उन्होंने शब्द संग्रहीत कर लिए। स्वभावतः, इतने बहुमूल्य शब्द बचाए जाने जरूरी हैं। फिर पीढ़ी दर पीढ़ी उन शब्दों का अनुस्मरण चलता है, पाठ चलता है, तुम भी थोड़े हैरान होओगे कि कबीर के वचनों में ऐसा कुछ खास तो नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि तुम्हें कबीर का एहसास नहीं है बुद्ध के वचनों में भी तुम्हें कुछ खास न दिखाई पड़ेगा। ऐसा क्या खास है? बड़े कवि हुए हैं, उनके वचनों में ज्यादा कुछ है। बड़े लेखक हैं, बड़े वक्ता हैं, उनके बोलने की कुशलता और! न तो बुद्ध, न तो कबीर, न तो मुहम्मद कोई वक्ता हैं, न तो कोई लेखक हैं; भाषा की कुशलता है ही नहीं--फिर क्यों इतने लोग प्रभावित हुए? कैसे इतनी क्रांति घटती हुई? नहीं, कबीर नहीं हैं क्रांति के कारण, कबीर की भाषा भी नहीं है; कबीर के भीतर जो ज्योति आकाश से उतरी है, जो अवतरण हुआ है--वही। सारा राज वहां है; सारी पूंजी वहां छिपी है जादू की; सारा चमत्कार वहां है। लेकिन वह तो खो जाता है कबीर के साथ; थोथे शब्द रह जाते हैं, जैसे चली हुई कारतूस। चली हुई कारतूस को तुम सम्हाले रहते हो। सोचते हो, "कितना बड़ा धड़ाका हुआ था! कारतूस तो वही है! सम्हाल लो।" लेकिन चली हुई कारतूस को सम्हाल कर भी क्या करोगे?
कुरान, बाइबिल, इंजील, तालमुद, अवेस्ता, धम्मपद--सब चली हुई कारतूस हैं। चल चुर्की, धड़ाका हो चुका, अब तुम नाहक ढो रहे हो। अब इसके बल पर तुम किसी युद्ध में मत उतर जाना। यह चली हुई कारतूस अब किसी काम न आएगी।
इससे अड़चन होती है। इससे बड़ी अड़चन होती है। संप्रदाय शब्दों से घिर जाता है; धर्म निःशब्द है। संप्रदाय शास्त्रों से घिर जाता है; धर्म का कोई शास्त्र नहीं। शून्य ही उसका शास्त्र है। मौन ही उसकी वाणी है।
और तीसरी बातः जब कभी अवतरण होता है धर्म का, परमात्मा का, तो उस व्यक्ति के माध्यम से बहुत सी घटनाएं घटती हैं। वह व्यक्ति बहुत तरह की विधियों का उपयोग करता है--तुम्हें सहायता पहुंचाने को, तुम्हें मार्ग पर चलाने को।
बुद्ध ने भिक्षुओं को पीतवस्त्र दिए। पीले वस्त्र प्रतीक हैं, प्रतीक हैं मृत्यु के। कबीर जो कह रहे हैं कि जीते जो मर जाए, वही बचेगा। जैसे पीला हो जाता है पत्ता तो उसका अर्थ है कि मौत करीब आ रही है, पत्ता मरने के करीब है। फिर जब बिल्कुल पीला हो जाता है तो मर गया। फिर वह किसी भी क्षण वृक्ष से टूट जाता है--न वृक्ष को पता चलता है, न पत्ते को पता चलता है; मौत घट गई। पीले पत्तों को देखकर बुद्ध को स्मरण आया--पीत वस्त्र उपयोगी होंगे। वह तुम्हें याददाश्त दिलाएंगे कि मर जाना है; कि इस जीवन में जीना नहीं है, मर कर जीना है; पीले पत्ते की तरह जीना है--जो लटका है, अब गया, अब गया, अब गया! किसी भी क्षण हवा की जरा सी लहर और पीला पत्ता गया! ऐसे जीना है। क्योंकि मौत किसी भी क्षण घट सकती है। मौत के प्रति जागे हुए जीना है। मौत को स्वीकार करके जीना है।
इसलिए बुद्ध अपने भिक्षुओं को पीले वस्त्र दिए। भिक्षु अब भी पीले वस्त्र पहने हुए हैं, लेकिन प्रतीक जड़ हो गया। अब उसमें कोई जीवन नहीं है। उन्हें कुछ पता भी नहीं है कि क्यों वे पीले वस्त्र पहने हुए हैं।
मैंने तुम्हें गैरिक वस्त्र दिए हैं। जैसे बुद्ध को पीला पत्ता मौत
का सूचक मालूम पड़ता है। ऐसे ही दूसरे छोर से गैरिक रंग दो बातों का प्रतीक हैः एक तरफ तो सुबह उगते हुए सूरज का रंग है--एक नये जीवन का आविर्भाव;

दूसरी तरफ सांझ को डूबते हुए सूरज का भी रंग वही है। एक तरफ संसार की तरफ से मर जाना है, परमात्मा की तरफ जीना है। एक तरफ सुबह, एक तरफ सांझ--दोनों एक साथ। गैरिक रंग अग्नि का रंग है, और अग्नि से गुजरे बिना कोई भी निखरता नहीं। तुम्हारी आत्मा का स्वर्ण निखरेगा अग्नि से गुजरकर। गैरिक रंग अग्नि का रंग है, उसका अर्थ है कि पूरा जीवन अग्निशिखा है। यहां से तुम्हें शुद्ध होकर गुजरना है, अन्यथा तुम स्वीकार न हो सकोगे।
बहुत पुकारे जाते हैं, बहुत कम चुने जाते हैं। हजार यात्रा करते हैं,
एक पहुंचता है। अगर तुमने जीवन को पूरा मौका दिया कि तुम्हें जला डाले; तुमने अपने को बचाने की कोशिश न की, तुम स्वर्ण की तरह अग्नि में पड़ गए और सब तरह से तुमने जलने दिया अपने को--एक बात पक्की है कि सोना नहीं जलता, कचरा ही जलता है। तुम्हारे भीतर जो सोना है, वह बच रहेगा; जो कचरा है, वह जल जाएगा।
गैरिक वस्त्र चिता का रंग है, तो उनमें वह बात तो छिपी ही है जो पीत वस्त्रों में छिपी है कि तुम जीवन को मर कर जीना--जैसे प्रतिपल तुम चिता पर चढ़ रहे हो, आग की लपटें उठ रही हैं तुम्हारे चारों तरफ, तुम्हारे गैरिक वस्त्र आग की लपटें बनी रहें तुम्हारे चारों तरफ; तुम ऐसे जीओ जैसे चिता पर बैठा हुआ आदमी जी रहा होः किसी भी पल जल जाएगा, राख पड़ी रह जाएगी। लेकिन यही खतरा है, पीछे लोग पीले वस्त्र पहने हुए चलते रहते हैंः जड़ प्रतीक हाथ में रह जाता है, अर्थ खो जाता है। तब संप्रदाय निर्मित हो जाता है। तब तुम पहनते हो पीले वस्त्र या गैरिक वस्त्र या माला, लेकिन वहां जड़ता हो जाती है। अब उसमें कोई अर्थ नहीं हैं। अब तुम्हारे हृदय का उससे कोई संबंध नहीं है। अब तुम पहने हो, क्योंकि पहनना है। अब तुम पहने हो, क्योंकि सदा से लोग पहनते रहे हैं। अब तुम पहने हो, क्योंकि न पहनोगे तो लोग क्या कहेंगे! अब और बातों का कंसिडरेशन है। अब और बातों का विचार है। लेकिन मूल बात, मूल अर्थ खो गया।
अब हम समझने की कोशिश करें कबीर के वचनों को।
"साधो देखो जग बौराना।" कहते हैं, देखो, सारा जगत पागल हो गया है; और पागल इसलिए हो गया है कि धर्म कि जगह संप्रदाय में जी रहा है; जीवित धर्म को तो भूल गया है, मृत धर्म को पकड़ लिया है।
"सांची कहौं तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।"
बड़े आश्चर्य की बात है, कबीर कहते हैं, कैसा पागल है यह संसार कि अगर
सच कहूं तो मुझे मारने लोग आते हैं; अगर झूठ कहूं तो पतियाते हैं! पतियाना अर्थात विश्वास करना।
संप्रदाय झूठ है; धर्म सत्य है। और जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग मारने आएंगे; और जब भी तुम झूठ की बात करोगे, लोग पतियाएंगे। जब भी तुम संप्रदाय की बात करोगे, लोग कहेंगेः वाह, वाह! क्योंकि तुम उन्हीं की मान्यताओं की बात कर रहे हो; तुम उन्हीं के अहंकार की तृप्ति कर रहे हो। जब भी तुम धर्म की बात करोगे, लोग खड़े हो जाएंगे; दुश्मन की तरह। क्योंकि अब तुमने कुछ ऐसी बात कही जो उनके विपरीत है।
धर्म सदा संप्रदाय के विपरीत है। ज्ञानी सदा पुरोहित के विपरीत है। प्रबुद्ध व्यक्ति सदा पंडित के विपरीत है। "साधो देखो जग बौराना।" "सांची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।"
परमात्मा किसी का भी नहीं है। तुम परमात्मा के हो सकते हो, वह समझ में आता है; लेकिन तुम उलटा काम करते हो--तुम परमात्मा को अपना बना लेते हो।
परमात्मा के हो जाओ, क्योंकि तुम बूंद हो, वह सागर है; समर्पण कर दो अपना।
लीन हो जाओ विराट में, समझ में आता है। लेकिन लीन तो कोई नहीं होता; लोग उलटे परमात्मा पर ही कब्जा कर लेते हैं। बूंद सागर पर कब्जा कर रही है। मुट्ठी में आकाश बांधने की कोशिश चल रही है।
"हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।"
दावेदारी बन गई है। धर्म तो सिखाता है समर्पण; संप्रदाय करता है दावेदारी। धर्म तो सिखाता है कैसे तुम मिटो और संप्रदाय इस जगत में सबसे असंभव बात करवाता है कि तुम परमात्मा के ऊपर भी कब्जा कर लो, तुम दावेदार

हो जाओ। परमात्मा तुम्हारा रक्षक है; लेकिन संप्रदाय कहता है, तुम परमात्मा की रक्षा करो--कहीं मुसलमान आकर मंदिर की मूर्ति न तोड़ दें; कहीं मस्जिद में कोई हिंदू आग न लगा दे; कहीं कुरान का कोई अपमान न कर दें; कहीं गीता का कोई विरोध न कर दे--तुम्हें रक्षा करनी है, जैसे तुम्हारे बिना परमात्मा बड़ी असहाय अवस्था में पड़ जाएगा; अगर तुम न हुए, परमात्मा का क्या होगा! जगह-जगह कुटेगा, पिटेगा; लोग आग लगाएंगे, मारेंगे, काटेंगे, तोड़ेंगे! तुम ही उसे बचा रहे हो!
परमात्मा को तुमने समझा क्या है? कोई वस्तु है, जिस पर तुम दावा कर दो? कबीर के लिए तो बहुत मुश्किल रही होगी, क्योंकि कबीर का कुछ पक्का नहीं है कि वे हिंदू थे कि मुसलमान। कबीर जैसे किसी आदमी का कुछ पक्का नहीं होता। और उनके साथ तो जीवन में भी घटना ऐसी घट गई थी कि मां-बाप बच्चे को सरोवर के किनारे छोड़ कर चले गए--किसका था, कभी पता नहीं चला; जायज था, नाजायज था, कुछ पता नहीं चला; हिंदू का था, मुसलमान का था, कुछ पता नहीं चला। ऐसा ख्याल ही था लोगों का कि मुसलमान का बच्चा है। रहा होगा। और एक हिंदू संन्यासी ने कबीर को बड़ा किया। तो गुरु तो हिंदू था, मां-बाप शायद मुसलमान रहे होंगे।
तो कबीर तो बड़ी मुश्किल में थे। हिंदू न घुसने दे मंदिर में उनको, क्योंकि वे मुसलमान हैं; मुसलमान न घुसने दे मस्जिद में, क्योंकि वे हिंदू गुरु के शिष्य और हिंदू घर में पले हैं--"यहां कहां आते हो?" जिन्होंने जिंदगी भर कबीर को मंदिर-मस्जिद में न घुसने दिया; लेकिन मरते वक्त उन्होंने झगड़ा खड़ा कर दिया। जब वे मर गए, तो मुसलमानों ने कहा कि हम दफनाएंगे। मस्जिद में तो न घुसने दिया। कबीर ठीक ही कहते हैं कि "साधो देखो जग बौराना!" और हिंदुओं ने कहा कि हम दफनाने न देंगे, जलाएंगे। जीवित कबीर को दोनों ने इनकार किया। वे लाश पर कब्जा करने आ गए। यही
तो संप्रदाय की कुशलता हैः धर्म को इनकार करता है, जीवित को इनकार करता है; क्योंकि जीवित के पास तुम गए, तो बदलोगे; मरे के पास गए, तुम तो बदल ही नहीं सकते, मुर्दे पर तुम कब्जा कर लोगे। मरे कबीर पर कब्जा करने हिंदू-मुसलमान दोनों पहुंच गए। और यह कहानी कुछ ऐसी है कि लगती है सार्वभौम है। नानक के साथ यही हुआ। तारण के साथ यही हुआ। और भी संतों के जीवन में ऐसा हुआ कि मरते वक्त लोग कब्जा करने पहुंच गए।
यह कठिनाई समझ में आती है; क्योंकि मुर्दे पर कब्जा किया जा सकता है, जीवित कबीर को तो तुम छू भी न सकोगे, छुओगे तो जल जाओगे। जीवित कबीर के पास जाओगे तो क्रांति घटेगी। वह तो आग है--ऐसी आग है जिसमें तुम्हारा कचरा जल जाएगा और सोना बचेगा। लेकिन मरे हुए कबीर को जलाने लोग पहुंच गए; खुद जलने न पहुंचे जिंदा कबीर के पास; और झगड़ा खड़ा कर दिया। अब भी, जहां कबीर की मृत्यु घटी, वह मकान दो हिस्सों में बंटा है--आधे पर हिंदुओं का कब्जा है, आधे पर मुसलमान का--बीच में एक बड़ी दीवार है। आधे को मुसलमान पूजते हैं--वह कबीर की दरगाह है; और आधे को हिंदू पूजते हैं--वह कबीर की समाधि है। "हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।"
और मर्म की बात इतनी है कि तुम परमात्मा के हो सकते हो; परमात्मा का तुम दावा कर रहे हो कि मेरा! तुम परमात्मा के हो जाओ, काफी है। और जो परमात्मा का हो गया, उसी ने मर्म जाना।
"आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।।"
धर्म को भी लोग लड़ाई का स्थल बना लिए हैं। धर्म का एक ही उपयोग है कि उसके द्वारा लोग अच्छी तरह लड़ सकते हैं। और ध्यान रखना, अधर्म के लिए लड़ो तो मन में थोड़ा अपराध भी मालूम पड़ता है; धर्म के लिए लड़ो तो काम इतना धार्मिक है कि अपराध का तो कोई सवाल ही नहीं। मुसलमान सोचता है कि अगर धर्मयुद्ध में मारे गए तो मोक्ष निश्चित है। हिंदू सोचता है कि अगर धर्म के लिए शहीद हो गए तो स्वर्ग के दरवाजे पर बैंड-बाजे मौजूद हैं। एक बात ख्याल में ले लेना कि अच्छी बात के लिए लोग लड़ना सुगम पाते हैं; बुरी बात के लिए लड़ने में तो थोड़ा सा संकोच भी होता है कि क्या लड़ाई कर रहे हो! लेकिन अच्छी बात के लिए? लड़ाई में बड़ा मजा आ जाता है।

इसलिए लोग लड़ने के लिए अच्छी बातें खोज लेते हैं; कारण तो लड़ना है, बहाने अच्छे खोज लेते हैं; हिंदू-धर्म खतरे में है--झगड़ा शुरू! अब हिंदू- धर्म को बचाना ही पड़ेगा! तुमने ठेका लिया है? तुम धर्म के बचाने वाले कौन? कि इस्लाम खतरे में हैः बस, पागलों की दौड़ शुरू हो गई!
और फिर धर्म के नाम पर झूठ बोलो; धर्म के नाम पर अधर्म करो; अहिंसा के नाम पर तलवार उठा लो! कबीर ठीक ही कहते हैं, "साधो देखो जग बौराना!" लोग बिल्कुल पागल मालूम होते हैंः अहिंसा के लिए भी लोग तलवार उठा लेते हैं, "साधो देखो जग बौराना!" लोग बिल्कुल पागल मालूम होते हैंः अहिंसा के लिए भी लोग तलवार उठा लेते हैं; यह भी भूल जाते हैं कि तलवार उठाने का मतलब है कि तुमने ही हिंसा कर दी। धर्म के लिए लड़ने का मतलब तुमने ही अधर्म करना शुरू कर दिया। युद्ध ही तो अधर्म है। प्रेम है धर्म; घृणा है अधर्म। और धर्म के नाम पर कितनी घृणा फैलाई जाती है! धर्म है निरहंकार; लेकिन धर्म के नाम पर कितना अहंकार चलता है!
एक छोटे गांव में ऐसी ही घटना घटी कि एक ईसाई पादरी आया। आदिवासियों
का गांव है बस्तर में। और आदिवासियों को समझाना हो तो आदिवासियों के ढंग से समझाया जा सकता है। क्योंकि बहुत सिद्धांत की बात करने से तो कोई सार नहीं। न शास्त्र वे जानते हैं, न शब्द वे बहुत समझ सकते हैं। तो उसने एक तरकीब निकाली और उसने कई लोगों को ईसाई बना लिया। उसने तरकीब यह निकाली कि वह गांव में जाता, थोड़ा-बहुत धर्म की बात करता, भजन-कीर्तन करता और फिर दो मूर्तियां निकालता अपने झोले से--एक क्राइस्ट की और एक राम की, और दोनों को पानी में डालता। एक बालटी भरवा लेता और दोनों को पानी में डालता, और कहता कि देखो, जो खुद बचता है वही तुम्हें बचा सकता है; जो खुद ही डूब जाए, वह तुम्हें क्या बचाएगा! राम की मूर्ति लोहे की बना ली थी और जीसस की मूर्ति लकड़ी की बना ली थी। तो जीसस तो तैरते और राम एकदम डुबकी मार जाते। गांव के आदिवासी समझे कि बात तो बिल्कुल सच्ची है, तर्क साफ है--क्योंकि इन राम के पीछे हम फंसे हैं, और ये खुद ही डूब रहे हैं! उसने इस कारण कई लोगों को ईसाई बना लिया।
एक हिंदू संन्यासी गांव में मेहमान था। उसी संन्यासी ने ही पूरी कहानी बताई। वह बड़ा योग्य आदमी था। गांव के लोगों ने उससे भी कहा कि यह तो बड़ा रहस्य है, साफ है मामला। लेकिन लोग ईसाई हो गए। वह भीतर गया देखने। उसने समझ लिया कि मामला क्या है। भरी सभा में जब लोग प्रभावित हुए तो उसने कहा कि ऐसा काम किया जाए; पानी तो ठीक है, आग जलवाई जाए--जो बच जाए, वही तुम्हें बचाएगा। गांव के लोगों ने कहाः "यह तो बिल्कुल साफ मामला है। असली चीज तो आग है; पानी में क्या रखा है? वह ईसाई पादरी बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने बड़ी कोशिश की कि बच निकले; लेकिन गांव के लोगों ने पकड़ लिया। उन्होंने कहा, "कहां जाते हो? यह तो परीक्षा होनी ही चाहिए, क्योंकि अग्नि परीक्षा तो शास्त्रों में भी कही है। जल-परीक्षा कभी सुनी?"
वे जीसस जल गए!
संप्रदाय जीते हैं क्षुद्र तर्कों पर, बहुत छोटे तर्कों पर। बहुत छोटी-छोटी घृणा को जमा-जमा कर धीरे-धीरे वे अंबार खड़ा करते हैं। एक-एक ईंट घृणा की है, विद्वेष की है; दूसरे की निंदा की है; दूसरे को छोटा, बुरा बताने की है। प्रेम तो कहीं पता भी नहीं चलता। और जो घृणा फैला रहे हैं, वे प्रार्थना कैसे करते होंगे? उनकी प्रार्थना में भी वही घृणा होगी। प्रेम फैलाओ तो ही तुम्हारी प्रार्थना में प्रेम आएगा। क्योंकि जो प्रेम तुम्हारे जीवन का हिस्सा न बन जाए, वह तुम्हारी प्रार्थना में कभी आविर्भूत न होगा। तुमसे ही तो प्रार्थना उठेगी।
"साधो देखो जग बौराना।"
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।"
"बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।"
बड़े नियम और धर्म को मानने वाले लोग--कबीर कहते हैं--मैंने देखे, रोज सुबह स्नान करते हैं काशी में। सब इकट्ठे ही हैं वहीं नियमी-धर्मी। वह काशी घर था कबीर का। वे रोज सुबह से चले जा रहे हैं गंगा का स्नान करने। "आतम छोड़ि पखानै पूजैं, तिनका थोथा ग्याना।"

लेकिन मैं देखता हूं कि पूजा वे आत्मा की नहीं करते, पत्थरों की करते हैं। स्नान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, नियम-धर्म का पालन करते हैं-- लेकिन पूजा पत्थर की करते हैं, चैतन्य की नहीं; दीये को पूजते हैं, ज्योति को नहीं। तो क्या होगा तुम्हारे स्नान से? पाप तुम करोगे, गंगा तुम्हारे पाप धोएगी? गंगा ने कौन से पाप किए हैं जो तुम्हारे पाप धोए? गंगा का क्या कुसूर है? कितना ही तुम स्नान करो, शरीर को रगड़-रगड़ कर कितना ही धो डालो, इससे भीतर की चेतना तो न निखरेगी। इसका यह मतलब नहीं है कि स्नान मत करो। क्योंकि वैसे भी लोग हैं जो स्नान ही नहीं करते। क्योंकि वे कहते हैं, जब आत्मा ही की पूजा करनी है तो स्नान की क्या जरूरत?
जैन दिगंबर मुनि हैं; वे स्नान नहीं करते हैं। वे स्नान ही बंद कर देते हैं कि जब आत्मा की ही पूजा करनी है तो शरीर को क्या धोना? लोग पागल हैं और अतियों पर उतर जाते हैं।
मध्य-युग में यूरोप में ईसाइयत स्नान के खिलाफ हो गई और गंदगी परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता मान लिया। एक संत एक सौ तीस वर्ष जीआ, और कहते हैं, उसने कभी स्नान नहीं किया। और उसकी बड़ी पूजा थी, प्रतिष्ठा थी, क्योंकि यह है आत्मज्ञानी!
तो समझ कर चलना, रास्ता यह खतरनाक है। इसमें एक अति से दूसरी पर मत चले जाना। स्नान शरीर के लिए बिल्कुल जरूरी है। स्वच्छता सुखद है। लेकिन शरीर के स्नान से आत्मा शुद्ध नहीं होती। और न शरीर की गंदगी से आत्मा शुद्ध होती है, वह भी स्मरण रखना। नहीं तो शरीर को गंदगी में बिठा रखते हैं। कई परमहंस होकर बैठ जाते हैं, और वे वहीं खाना खाते हैं, वहीं मल-मूत्र त्याग करते हैं। कई उनकी पूजा करने वाले भी मिल जाते हैं कि यह आदमी ज्ञानी है, क्योंकि यह आत्मा की पूजा में लगा है, मालूम होता है, क्योंकि शरीर का इसे ख्याल ही नहीं है।
शरीर की जरूरत है। शरीर की जरूरत निश्चित ही पूरी करनी है। लेकिन शरीर की जरूरत को आत्मा की जरूरत मत समझ लेना।
"आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।"
देखता हूं कि आसन मारकर बैठे हैं और भीतर सिवाय दंभ के और गुमान के सिवाय कुछ भी नहीं है। तो आसन ही मारकर बैठने से क्या होगा, अगर आसन के भीतर अहंकार ही भर रहा है? इसका यह अर्थ नहीं है कि आसन का उपयोग नहीं है। इसका इतना ही अर्थ है कि आसन मार लेने से तुम यह मत समझ लेना कि अहंकार मर जाएगा।
आसन का अपना उपयोग है। अगर शरीर को बिल्कुल शांत, फिर करके बैठ जाओ, तो शरीर की थिरता के कारण मन की गति में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। मन शांत हो जाएगा, ऐसा नहीं है; लेकिन शरीर अगर थिर हो तो मन के अशांत होने में बाधा पड़ती है। शांत शरीर के भीतर मन के शांत होने की संभावना बढ़ जाती है। स्नान करके स्वस्थ मन से, स्वस्थ शरीर से तुम पूजा करने आए हो, तो पूजा की संभावना बढ़ जाती है। गंदगी से भरे हुए, थके-हारे, धूल-धवांस में दबे, तुम पूजा करने आए हो--पूजा की संभावना कम हो जाती है। लेकिन सिर्फ स्नान कर लेना पूजा नहीं है। स्नान कर लेना पूजा के लिए सहारा हो सकता है। स्नान कर लेना पर्याप्त नहीं है; जरूरी है पर्याप्त नहीं है। कुछ और होना जरूरी है। स्नान को ही सब मत समझ लेना। वही धर्म और संप्रदाय का भेद है। धर्म जीवन की समस्त चीजों का उपयोग करता है ताकि परम ज्योति जल सके। संप्रदाय उपयोग में ही अटक जाता है, ज्योति की बात ही भूल जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक आदमी के घर नौकर था। वह बड़ा रईस आदमी था, लेकिन मुल्ला से परेशान था। उसने एक दिन कहा कि मैं कई बार तुम्हें बता चुका, मगर अब एक सीमा होती है हर चीज की। तीन अंडे लाने के लिए बाजार तीन दफा जाने की जरूरत नहीं है। एक ही दफे में ले आ सकते हो।
कुछ दिन बाद वह अमीर बीमार पड़ा। उसने नसरुद्दीन को कहा कि जाओ, वैद्य
को बुला लाओ। नसरुद्दीन गया, वैद्य को ले आया। लेकिन वह बड़ी देर बाद लौटा तो अमीर ने कहा कि इतनी देर कैसे लगी? उसने कहा, और सबको भी बुलाने गया था। अमीर ने कहा, "और सब कौन हैं? मैंने तुम्हें वैद्य को बुलाने भेजा था।" तो उसने कहा कि वैद्य अगर कहे कि मालिश करवानी है, तो मालिश करने वाला लाया

हूं; वैद्य अगर कहे कि पुलटिस बंधवानी है तो पुलटिस बनाने वाले को लेकर आया हूं; वैद्य अगर कहे कि फलां तरह की दवा चाहिए, तो केमिस्ट को भी बुला लाया हूं; और अगर वैद्य असफल हो जाए तो मरघट ले जाने वाले को भी लाया हूं। सब मौजूद हैं। तीन अंडे एक साथ ले आया हूं।
समझ बारीक बात है, और सिर्फ क्रियाकांड समझ नहीं है। क्रियाकांड उसने पूरा कर दिया, लेकिन समझ की कोई खबर न थी।
सांप्रदायिक व्यक्ति एक-एक हिसाब को पूरा कर देता है। सब क्रियाकांड परिपूर्ण होते हैं उसके। तुम उसमें भूल नहीं निकाल सकते। अब क्या भूल निकालोगे नसरुद्दीन में। उसने क्रियाकांड पूरा कर दिया। उसने गणित साफ कर दिया पूरा, रत्तीभर कमी नहीं छोड़ी; लेकिन बात वह बिल्कुल चूक गया। गणित साफ कर दिया लेकिन समझ से बिल्कुल चूक गया।
सांप्रदायिक व्यक्ति पूरा क्रियाकांड कर देता है; एक से लेकर सौ तक
सब नियम पूरे कर देता है, और फिर भी चूक जाता है। क्योंकि वह जो क्रियाकांड है, सहयोगी हो सकता है, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। और वह जो क्रियाकांड है, वह बदला भी जा सकता है। वह अनिवार्य भी नहीं है। लेकिन जो अनिवार्य है, वह नहीं बदला जा सकता।
दीया कई ढंग का हो सकता है, ज्योति एक ही ढंग की होती है। दीया तुम गोल बनाओ, तिरछा बनाओ, कलात्मक बनाओ, साधारण बनाओ, सोने का बनाओ, मिट्टी का बनाओ, छोटा-बड़ा, जैसा तुम्हें बनाना हो बनाओ, दीये पर सब तुम कर सकते हो; लेकिन ज्योति का स्वभाव तो एक ही होगा। जब ज्योति जलेगी तो स्वभाव एक ही होगा। क्रियाकांड दीये के भीतर इतना लीन हो जाता है, इतनी बारीक नक्काशी करने लगता है दीये पर कि दीये में ही जीवन चुक जाता है, ज्योति जलाने का मौका ही नहीं आता। इतनी ही बात ख्याल रखना।
"आसन मारि डिम्भ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजन लागे, तीरथ वर्त भुलाना।।"
असली तीर्थ तो भूल ही गया जो भीतर है।
तीर्थ का अर्थ है, जहां से परमात्मा की तरफ नाव छूटती है। काशी में तीर्थ नहीं है, क्योंकि वहां से नाव छोड़ोगे तो दूसरी तरफ पहुंच जाओगे, परमात्मा में नहीं पहुंच जाओगे।
तीर्थ का अर्थ होता हैः वह जगह जहां से नाव परमात्मा की तरफ छूटती है।
तो वह तीर्थ तो भूल ही गया। वह तो भीतर है। इस तरफ तुम हो, उस तरफ परमात्मा है--बीच में विराट जीवन की नदी है।
"पीपर पाथर पूजन लागे"--और लोग वृक्षों को पूज रहे हैं, पत्थरों को पूज रहे हैं। "तीरथ वर्त भुलाना।" वर्त का अर्थ हैः व्रत, संकल्प। न तो कोई संकल्प है जीवन में, न कोई व्रत है; बस ऐसे ही अंधे अंधों को धक्का दिए जा रहे हैं। दूसरे कर रहे हैं, तुम भी कर रहे हो। वही काम संकल्प से किया जाए तो धार्मिक हो जाता है; और वही काम बिना संकल्प के किया जाए तो सांप्रदायिक हो जाता है।
जैसे तुमने प्रार्थना की, संकल्प से की। संकल्प का अर्थ हैः तुमने अपने पूरे प्राणों को ढाल दिया उस प्रार्थना में। तुमने प्रार्थना ऐसे की कि जैसे प्रार्थना जीवन और मरण का सवाल है। तुमने प्रार्थना ऐसे की कि खुद को पूरा दांव पर लगा दिया--यह व्रत का अर्थ होता है--पूरा दांव पर लगा दिया। रोआं-रोआं, श्वांस-श्वांस, हृदय की धड़कन-धड़कन तुमने सब समर्पित कर दीः यह संकल्प का अर्थ है। ऐसी प्रार्थना उतार लाएगी परमात्मा को भी, कहीं भी हो वह। कहीं भी छिपा हो वह गहन से गहन में, ऐसी प्रार्थना उसे खींच लेगी तत्क्षण।
लेकिन एक प्रार्थना है, तुमने की, जैसे तुम और काम करते होः खाना खाते हो, बाजार जाते हो, दुकान पर जाते हो, पत्नी से बातें करते हो, अखबार पढ़ते हो--ऐसी ही तुमने प्रार्थना की। ऊपर से शब्द तो एक जैसे हो सकते हैं, लेकिन भीतर का संकल्प अगर भूल गया हो तो प्रार्थना व्यर्थ है; तुम समय वैसे ही खो रहे हो। अच्छा था, तुम अखबार और थोड़ा पढ़ लेते, दुबारा पढ़ लेते। कोई फर्क नहीं है।
भीतर का संकल्प ही गुणात्मक भेद लाता है।

ऐसा हुआ कि बंगाल में एक बहुत बड़ा ज्ञानी हुआ। भट्टोजी दीक्षित उस ज्ञानी का नाम था। ऐसे वह बड़ा व्याकरण का ज्ञाता था और जीवन भर उसने कभी प्रार्थना न की। वह साठ साल का हो गया। उसके पिता नब्बे के करीब पहुंच रहे थे। पिता ने भट्टोजी का बुलाया और कहा कि, "सुन, अब तू भी बूढ़ा हो गया, और अब तक मैंने राह देखी कि कभी तू मंदिर जाए; आज तेरे साठ वर्ष पूरे हुए, तेरा जन्म-दिन है। अब तक मैंने कुछ भी तुझसे कहा नहीं। लेकिन अब मेरे भी थोड़े दिन बचे हैं। कभी मैं चला जाऊं, कुछ भी पता नहीं। अब तेरे प्रार्थना करने का समय आ गया है। अब मंदिर जा। कब तक तू यह व्याकरण में उलझा रहेगा और गणित सुलझाता रहेगा। क्या सार है इसका? माना कि तेरी बड़ी प्रतिष्ठा है, दूर-दूर तक तेरे नाम की कीर्ति है--पर इसका कोई सार नहीं। और तू अब तक मंदिर क्यों नहीं गया, मैं पूछता हूं। तेरे जैसा समझदार, बुद्धिमान प्रार्थना क्यों नहीं करता?"
तो भट्टोजी ने कहा कि "प्रार्थना तो एक दिन करूंगा। आज कहते हैं, आज की करूंगा। तैयारी ही कर रहा था प्रार्थना की; लेकिन तैयारी ही पूरी नहीं हो पाती थी। और फिर आपको मैं देख रहा हूं कि आप जीवन भर प्रार्थना करते रहे, कुछ भी न हुआ। आप रोज जाते हैं मंदिर और लौट आते हैं। आपको देख कर भी निराशा होती है कि यह कैसी प्रार्थना! और ऐसी प्रार्थना करने से क्या होगा? आप वहीं के वहीं हैं। लेकिन अब आपने आज कह ही दिया तो मैं सोचता हूं कि अब वक्त करीब आ रहा है, तो आज मैं जाता हूं; लेकिन शायद मैं लौट न सकूंगा।
बाप तो कुछ समझा नहीं। क्योंकि बाप ऐसे ही प्रार्थना करता था--एक क्रियाकांड था, एक सांप्रदायिक बात थी; करनी चाहिए थी, करता था।
भट्टोजी वापस नहीं लौटे। मंदिर में प्रार्थना करते ही गिर गए और समाप्त हो गए।... संकल्प!
भट्टोजी ने कहा, "प्रार्थना एक ही बार करनी है, दुबारा क्या करनी? क्योंकि दुबारा का मतलब है, पहली दफा ठीक से नहीं की। तो एक दफा ही ठीक से कर लेनी है, सभी कुछ दांव पर लगा देना है। अगर होता हो तो हो जाए।"
तो वे कह गए थे, "या तो वापस नहीं लौटूंगा या वापस लौटूंगा तो दुबारा मंदिर नहीं जाऊंगा। क्योंकि क्या मतलब ऐसे जाने का?"
यह संकल्प का अर्थ होता है!
संकल्प का अर्थ होता हैः समस्त जीवन को उंडेल देना एक क्षण में। तब दुबारा प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। एक बार राम का नाम लिया भट्टोजी ने और राम के नाम के साथ ही वे गिर गए।
कबीर कहते हैंः "न तीर्थ का पता, न संकल्प का पता; पत्थर, पीपर लोग पूजे
जा रहे हैंः "साधो देखो जग बौराना।"
"माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै, आतम खबर न जाना।।"
लोग माला पहने हैं, लेकिन उन्हें कुछ भी पता नहीं कि माला क्यों पहने हुए हैं। माला पर हाथ चल रहे हैं, मन कहीं और चल रहा है।
लोग थैली बना लेते हैं, माला थैली में रखे रहते हैं; और माला चलती रहती
है थैलों के भीतर और वे सब काम करते रहते हैंः दुकान चलाते रहते हैं, बात करते रहते हैं, कुत्ते को भगा देते हैं, ग्राहक को लूट लेते हैं, और एक हाथ से माला चलती रहती है। माला यंत्रवत चल रही है। हाथ को भी काहे को उलझाए हो, एक बिजली की छोटी मोटर लगा लो, उस पर माला टांग दो, वह घूमती रहेगी। वैसा भी किया है लोगों ने। तिब्बत में उन्होंने एक प्रेयर व्हील बना लिया है। उसको वे कहते हैंः प्रार्थना का चक्का। एक चक्का है छोटा सा, जैसा चरखे का चक्का होता है, और उस पर प्रार्थना लिखी है। उसको एक दफा घुमा दिया तो वह जितने चक्कर लगा ले, उतनी प्रार्थना का लाभ है। तो लोग रखे रहते हैं बगल में, सब काम करते रहते हैं; जब वह फिर रुक गया, फिर एक धक्का मार दिया; फिर अपना काम कर लिया, फिर एक धक्का मार लिया। तो दिन भर में अनंत प्रार्थना का लाभ लेते हैं।
मेरे पास एक बौद्ध लामा कुछ दिन मेहमान हुआ, वह चक्का रखे रहता था। तो मैंने कहा, "बिल्कुल पागल है, इसको प्लग कर दे दीवाल से; तू अपना काम कर, यह

अपना काम करे। चौबीस घंटे सोओ, जागो, चोरी करो, हत्या करो--तुम्हें जो करना हो, तुम करो; यह प्रार्थना का लाभ तो तुम्हें मिलता ही रहेगा। सिर्फ बिजली का बिल तुम चुका देना।"
"माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।"
"साखी सबदै गावत भूलै"--और भजन-कीर्तन में लोग भूल जाते हैं, डूब जाते हैं और सोचते हैं कि यह ज्ञान की घड़ी घट रही है। कबीर कहते हैं, "आतम खबर न जाना।"
वह भूलना संगीत का है। वह तो वेश्या के घर भी जो संगीत को सुनता है, वह
भी सिर डुलाने लगता है। उसमें तुम बहुत मूल्य मत समझ लेना। वह तो अच्छा संगीतज्ञ भी डुबा देता है लोगों को, सराबोर कर देता है।
"साखी सबदै गावत भूलै"--तो भजन-कीर्तन में लग जाते हैं लोग और सिर डुलाने लगते हैं और समझते हैं कि बड़ी काम की बात हो रही है, कि बड़ा धर्म कमा रहे हैं, कि देखो कैसे लीन हो गए हैं! "आतम खबर न जाना!" इन सब बातों से कुछ भी न होगा, जब तक भीतर का बोध न आ जाए। और भीतर का बोध आ जाए तो भजन-कीर्तन, माला, पत्थर सभी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, और भीतर का बोध न आए, तो सभी व्यर्थ हो जाते हैं। इस बात को ठीक से ख्याल में रखें।
"घर घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।"
"गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना।।"
और लोगों ने धंधा बना रखा है, घर-घर मंत्र देते फिरते हैं। कबीर कहते हैं, इन ब्राह्मणों, पंडितों ने व्यवसाय बना लिया है। वे देते फिरते हैं, बांटते फिरते हैं, और लोग सोचते हैं कि बस मंत्र मिल गया, अब क्या करना है! कान फूंक दिए गुरु ने, अब क्या करना है! निपट गए गुरु-मंत्र ले लिया!
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, तीस साल हो गए, गुरु-मंत्र लिया, अब
तक कुछ हुआ नहीं। गुरु-मंत्र लेने से कुछ होगा? और गुरु-मंत्र दिया किसने? इसकी भी कभी फिक्र की है कि जिसने गुरु मंत्र दिया, वह गुरु था भी? न, वे कहते हैं, ऐसा तो कुछ नहीं; गांव का पंडित था, उसने दे दिया।
गुरु-मंत्र तो केवल उसी से मिल सकता है जो जाग गया हो, और तो कोई मंत्र
दे नहीं सकता। तो पृथ्वी पर मुश्किल से एक, दो, तीन, चार, पांच अंगुलियों पर गिने जाने वाले लोग होते हैं, जो मंत्र दे सकते हैं, गुरु मंत्र दे सकते हैं; लेकिन लाखों लोग दे रहे हैं।
कबीर कहते हैं, "गुरवा सहित सिष्य सब बूड़े"--गुरु और शिष्य सब डूब जाते हैं, लेकिन पता अंतकाल में चलता है, उसके पहले पता नहीं चलता है। अंतकाल पछिताना"--जब मौत करीब आती है तो पता चलता है कि यह सब जिंदगी तो ऐसे ही गई। न गुरु मंत्र बचा सकता है, न माला का फेरना बचा सकता है, न पत्थर का पूजना बचाता है--मौत सामने खड़ी है! लेकिन तब समय भी नहीं बचता, कुछ करने का उपाय भी नहीं बचता।
मरने के पहले सजग हो जाना। अगर थोड़ी ठीक से खोज की तो तुम गुरु को खोज
ही लोगे। ठीक से खोज का अर्थ हैः यह काम सस्ता नहीं है। गुरु के पास होने का मतलब है समर्पण। मुफ्त नहीं मिलता है मंत्र। जब तक तुम अपने को पूरा ही झुका न दो, तुम अपने को पूरा मिटा ही न दो, तब तक नहीं मिलता है मंत्र। बड़े साहस की जरूरत है।
मेरे पास लोग आते हैं। मैं चकित होता हूं कभी-कभी कि लोग कुछ सोचते भी हैं या नहीं सोचते हैं। कोई आता है, वह कहता है कि सिर्फ माला दे दें, गेरुआ कपड़ा मैं न पहन सकूंगा। गेरुआ कपड़ा पहनने की हिम्मत नहीं है, जो कि कोई बड़ी हिम्मत नहीं है। क्या खास हिम्मत है? तुम्हारे कपड़े हैं, तुम गेरुआ रंग लो, किसी का लेना-देना है, किसी से प्रयोजन है? कपड़े तक रंगने से इतनी घबड़ाहट है, आत्मा को तुम कैसे रंग पाओगे? इतना भी साहस नहीं है कि चार लोग हंसेंगे तो हंस लेंगे, चार लोग पागल कहेंगे तो कह लेंगे। ऐसे भी वे पागल ही कहते हैं तुमको।
एक राजनीतिज्ञ के खिलाफ किसी अखबार ने कुछ लिख दिया। वह बड़ा नाराज हो गया। वह बड़ा गुस्से में आया। मुल्ला नसरुद्दीन उसके मित्र हैं, उनके पास पहुंचा और कहा कि मैं इसको मिटा कर रहूंगा, अदालत में ले जाऊंगा। नसरुद्दीन ने कहाः "बैठो। इस गांव में कितने लोग हैं।"

उसने कहाः "दस हजार।"
"कितने लोग अखबार पढ़ते हैं?"
तो उसने कहाः "मुश्किल से हजार।"
"नौ हजार की तो फिकर छोड़ दो। हजार अखबार पढ़ते हैं, उनमें से कितने लोग तुमको जानते हैं?"
"मुश्किल से आधे लोग जानते होंगे।"
"पांच सौ बचे।
इन पांच सौ में से कितने लोग पहले से ही जानते हैं कि तुम गड़बड़ हो? अखबार ने कोई नई बात तो छापी नहीं। कोई झूठ भी नहीं छापा।"
नसरुद्दीन ठीक जगह पर ले आया बात को। उस राजनीतिज्ञ ने थोड़ा संकोच करते हुए कहा, "आधे लोग।"
"तो ढाई सौ लोग बचे। ये ढाई सौ लोग क्या बिगाड़ लेंगे तुम्हारा? ढाई सौ लाग जानते हैं कि तुम गड़बड़ हो, उन्होंने क्या बिगाड़ लिया? ये भी जान लेंगे तो क्या बिगाड़ लेंगे? तुम फिजूल ढाई सौ लोगों के पीछे पंचायत में मत पड़ो। और उनमें से भी कई बाहर गए होंगे, गांव में न होंगे, कई को आज अखबार न मिला होगा। कई उसमें से इस खबर को चूक गए होंगे, पढ़ा न होगा। कई ने पढ़ा भी होगा, लेकिन कुछ और सोच रहे होंगे। तुम फिजूल की परेशानी में मत पड़ो। असलियत अगर ठीक से समझी जाए तो तुम्हारे सिवाय इस अखबार को किसी ने ठीक से नहीं पढ़ा है। किसको प्रयोजन है?"
तुम बहुत चिंता में रहते हो कि लोग क्या कहेंगे! लोग! यह भी अहंकार का हिस्सा है कि तुम सोचते हो कि लोग तुम्हारे संबंध में सोच रहे हैं। कौन फिकर पड़ी है किसको? अपना-अपना सोचने को काफी है। कोई तुम्हारे संबंध में नहीं सोच रहा है। फुरसत किसे है? हां, एकाध दफा देख लेंगे तो शायद पूछ भी लें, शायद हंस लें तो वे पहले ही से हंस रहे हैं तुम पर। वे पहले से जानते थे। लोग पहले से ही जानते थे कि इनका दिमाग कुछ खराब है। अब गेरुआ पहन लिए हैं। कुछ नया नहीं होगा।
इतनी सी छोटी घटना में लोग इतने परेशान मालूम होते हैं कि लगता है कि जीवन में कोई संकल्प की क्षमता नहीं रही और अंतर्यात्रा के लिए कुछ भी दांव पर लगाने के लिए हिम्मत नहीं है--मुफ्त मिल जाए!
एक मित्र मेरे पास आए दो दिन पहले ही और कहा कि "आपकी किताबें पढ़ता हूं, बड़ा आनंद आता है। आधी रात तक पढ़ता रहता हूं, कभी कभी सुबह हो जाती है मगर ध्यान में मुझे कोई रस नहीं है।" ध्यान में कोई रस नहीं है! किताबें पढ़ने में आनंद है! क्या कारण होगा? क्योंकि सारा जो कुछ मैं कह रहा हूं, यह इसलिए कह रहा हूं कि ध्यान में रस आ जाए। अगर मेरे शब्दों में रस आया और ध्यान में रस न आया तो मेरा शब्द व्यर्थ ही गया। क्योंकि, बोल ही इसलिए रहा हूं कि तुम शून्य हो जाओ; विचार इसलिए तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूं कि तुम निर्विचार हो जाओ। और तुम कहते हो, विचार में बड़ा रस आता है! तो रस कहीं गड़बड़ है। रस सिर्फ तर्क में आता होगा, और विचार इकट्ठे कर लेने में आता होगा, और बड़े पंडित हो जाने में आता होगा, चार लोगों के सामने चर्चा करने में आता होगा; लेकिन रस वास्तविक नहीं है, अन्यथा पूरा प्रयोजन ही यह है कि रस ध्यान में आ जाए।
और ध्यान में कुछ करना पड़ेगा। पढ़ने में तुम्हें क्या करना पड़ता है? पढ़ना तो एक निष्क्रिय बात है। आंख के सामने किताब रख लो, अगर पढ़ना आता है तो बस पढ़ना शुरू हो गया। करना क्या है? जीवन को बदलने की कोई जरूरत नहीं होती पढ़ने में। पढ़ना तो इकट्ठा होता जाता है; जीवन वैसा का वैसा बना रहता है। ध्यान में जीवन बदलना पड़ेगा। पढ़ना सस्ता है; ध्यान कठिन है। ध्यान में तुम जैसे हो वैसे ही न रह जाओगे; रूपांतरण होगा। इसलिए ध्यान से लोग बचते हैं।
पढ़ना ठीक है; लेकिन पढ़ने से तुम ज्यादा से ज्यादा सांप्रदायिक हो पाओगे, मेरे संप्रदाय के हिस्से हो जाओगे; लेकिन तुम कभी धार्मिक न हो पाओगे। जिस धर्म को मैं बांट रहा हूं, उस धर्म में तुम भागीदार न हो पाओगे। और यह तो ऐसे ही हुआ कि मैं तुम्हें अमृत दे रहा था और तुमने अमृत इनकार कर

दिया और तुम टेबल के पास रोटी के सूखे जो टुकड़े गिर गए थे, उनको बीन कर ले गए, उनको बांध कर ले गए। उसे तुमने संपदा समझ लिया।
"बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ै किताब कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।।"
बहुत देखे पीर, बहुत देखे औलिया, गुरु बहुत तरह के; पर इतना ही पाया कि
बस वे किताब पढ़ रहे हैं और जानकारी किताब तक सीमित है।
"पढ़ै किताब कुराना"--किताब यानी बाइबिल, किताब यानी धम्मपद। वे पढ़ रहे हैं किताब; लेकिन उन्होंने परमात्मा को नहीं जाना। किताब पढ़कर कोई परमात्मा को जानता है? काश, इतना सस्ता होता तो सभी ने जान लिया होता। जीवन को बदल कर ही कोई जानता है। खुद को देकर ही कोई जानता है। खुद को मिटा कर ही कोई पहचानता है। जब खुदी मिट जाती है तभी खुदा का अनुभव शुरू होता है।
"करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।"
और ये पीर-औलिया लोगों को शिष्य बना रहे हैं और उनको कब्रें दिखला रहे हैं कि यहां पूजा करो, यह रही कब्र।
कब्र के आस-पास मुसलमान मंदिर खड़े कर लेते हैं, कब्र बड़ी महत्वपूर्ण
हो जाती है।
जीवन चारों तरफ बरस रहा है और तुम कब्रों पर बैठे पूजा कर रहे हो। परमात्मा सब तरफ मौजूद है, तुम मृत्यु की आराधना कर रहे हो? जब कि मृत्यु सबसे बड़ा झूठ है। कोई कभी मरा ही नहीं। मरना घटता ही नहीं। जीवन ही है। और जिसको तुम मृत्यु कहते हे, वह एक जीवन की तरंग का दूसरे जीवन की तरंग में रूपांतरित हो जाना है। वह सिर्फ बदलाहट है, मृत्यु नहीं।
"करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुं खुदा न जाना।"
"हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।"
न तो हिंदू के हृदय में दया है और न मुसलमान के हृदय में मेहर है। दोनों की करुणा समाप्त हो गई है। दोनों का प्रेम चुक गया है। "दोनों घर से भागी।"
"वह करै जिबह वां झटका मारै, आग दोउ घर लागी।।"
और दोनों घर जल रहे हैंः हिंदू का भी, मुसलमान का भी--सभी के घर जल रहे हैं। फर्क क्या है उनमें? फर्क बहुत ज्यादा नहीं है। हिंदू भी कत्ल करते हैं। काली के मंदिर में, कलकत्ते में, आज भी कत्ल किए जा रहे हैं। मुसलमान भी कत्ल करता है। फर्क क्या है? फर्क बड़े टेक्नीकल हैं। फर्क यह है कि एक जिबह करते हैं। जिबह का मतलब हैः धीरे-धीरे मारते हैं। जब गर्दन काटते हैं पशु की, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे काटते हैं--जिबह। और दूसरे एक ही झटके में काटते हैं। बस इतना ही फर्क है उनमें। और दोनों की करुणा घर से जा चुकी है, दोनों के घर में आग लगी है। और फर्क बचकाने हैं। बस, ऐसे छोटे-छोटे फर्क हैं, इन फर्कों से कोई मतलब नहीं है। असली सवाल है कि तुम मारते होः तुम जिबह करके मारते हो कि झटका मारते हो--इससे क्या फर्क पड़ता है? पशु को क्या फर्क पड़ता है? वह दोनों हालातों में मारा जाता है।
लेकिन सभी संप्रदायों में इसी तरह के छोटे-छोटे झगड़े हैं।
एक जैन मंदिर में मैं गया। वहां झगड़ा खड़ा हो गया था। जैनों के दो संप्रदाय लट्ठ लिए खड़े थे। मारपीट हो गई थी, पुलिस आ गई। अब इस मंदिर में कोई दो साल से ताला लगा है, पुलिस का ताला लगा है; अदालत में मुकदमा चल रहा है। मैं मेहमान था उस गांव में। पास में ही मंदिर था, तो मैं देखने गया कि मामला क्या है? और जैन तो बड़े अहिंसात्मक हैं, इनका झगड़ा, और लट्ठ उठ गए और तलवारें निकल आईं और सिर फोड़ दिए एक-दूसरे के--यह मामला क्या है? मामला बड़ा छोटा था। महावीर की प्रतिमा को दोनों पूजते हैं; लेकिन श्वेतांबर प्रतिमा के ऊपर आंख लगाकर, खुली आंख वाले महावीर को पूजते हैं, और दिगंबर बंद आंख वाले महावीर को पूजते हैं। झगड़ा हो गया। तो समय बंटा हुआ है उनका मंदिर मेंः सुबह बारह बजे तक एक संप्रदाय पूजता है, फिर बारह बजे के बाद दूसरा संप्रदाय पूजता है। एक दिन किसी की पूजा थोड़ी लंबी चल गई, साढ़े बारह हो गए-- झगड़ा खड़ा हो गयाः "अलग करो आंख!" बंद आंख वाले महावीर के भक्त आ गए।

कभी-कभी संप्रदायों के बीच के झगड़े देखकर हद मूढ़ता दिखाई पड़ती है।
महावीर की आंख बंद या खुली--इससे क्या फर्क पड़ता है? पूजा तुम्हें करनी है, तुम्हारा हृदय खुला या बंद--इसकी फिक्र करो।
"या विधि हंसी चलत है हमको, आप कहावै स्याना।"
कबीर कहते हैं, इससे हमें बड़ी हंसी आती है, और ये सब लोग सयाने हैं।
"कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना।"
तुम बताओ, इनमें कौन दिवाना है? कबीर यह कह रहे हैं हमें तो यह सभी दीवाने दिखाई पड़ते हैं; सभी पागल हो गए हैं। लेकिन हर एक दावा कर रहा है कि हम सयाने हैं। और सब मिलकर परमात्मा को काट रहे हैंः कोई जिबह कर रहा है; कोई झटका मार रहा है--कटता है परमात्मा।
एक छोटी सी कहानी है, बड़ी पुरानी है।
एक गुरु के दो शिष्य हैं। वे दोनों सेवा करते हैं। गर्मी के दिन हैं। गुरु सोया है। दोनों ने कहा कि आधा-आधा बांट लो। तो बायां अंग एक ने ले लिया, दायां अंग दूसरे ने ले लिया। दोनों पैर दबा रहे हैं--गुरु के अपने- अपने अंग के। गुरु ने करवट ली, गुरु को कुछ पता नहीं--वे सो रहे हैं कि बंटवारा हो गया है। गुरु ने करवट ली, तो बाएं पैर पर पैर पड़ गया। तो दाएं पैर वाले ने कहा, "हटा ले अपना पैर, अगर मेरे पैर पर पड़ा ठीक नहीं होगा।" दूसरे शिष्य ने कहा, "जा-जा! कौन हटा सकता है? अगर हो हिम्मत तो हटा दे।" बात बढ़ गई। थोड़ी देर में लट्ठ लिए खड़े थे। गुरु की खींचातानी हो गई। गुरु पिटे, बुरी तरह पिटे। क्योंकि जिसका बायां अंग था उसने दाएं अंग को मारा, जिसका दायां अंग था उसने बाएं अंग को मारा।
परमात्मा मिट रहा है सब तरफ से, क्योंकि वही है। तुम जिसे भी काटो, वही कटेगा। मंदिर जलाओ तो भी उसी का मंदिर जलता है; मस्जिद जलाओ तो भी उसी की मस्जिद जलती है। मूर्ति तोड़ो तो उसी की मूर्ति टूटती है। वेद को जलाओ, उसी का वेद जलता है। वही है!
जैसे ही किसी व्यक्ति में थोड़ी सी समझ उठनी शुरू होती है--यह सारा जगत उसी का मंदिर है! सब किताबें उसकी, सब पूजा-स्थल उसके! और ऐसी घड़ी में ही तुम योग्य बनते हो कि धर्म तुम में अवतरित हो जाए।
सांप्रदायिक व्यक्ति ने कभी धर्म नहीं जाना और कभी जान नहीं सकता। जिन्हें धर्म जानना है, उन्हें भीतर सब संप्रदायों से मुक्त हो जाना जरूरी है, सब धारणाओं से, सब भेदों से; और भीतर उसमें लीन हो जाना है जो तुम्हारा स्वभाव है। उस स्वभाव की तैयारी ही एक दिन तुम्हें परमात्मा से मिला देगी। और कहीं और खोजना नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे भीतर है। "कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
छठवां प्रवचन

अभीप्सा की आगः अमृत की वर्षा

सूत्र

मो को कहां ढूंढो रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंड़ास में।।

नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।

ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहिं जोग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।।

मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में।।

परमात्मा प्रत्येक का स्वभाव-सिद्ध अधिकार है। उसे खोया होता तो तुम कभी पा न सकते थे। उसे खोया नहीं है, इसलिए पाने की संभावना है। और उसे खोया नहीं है, इसलिए खोज बड़ी मुश्किल है। जिसे खो दिया हो, उसे खोजने की संभावना बन जाती है। लेकिन जिसे खोया ही न हो, उसे तुम खोजोगे कैसे? इसलिए परमात्मा पहेली बन जाता है। इस पहेली को पहले ठीक से समझ लें। इस पहेली के कुछ आधारभूत नियम हैं।
पहला नियमः जिसे तुमने सदा से पाया है, उसकी तुम्हें याद नहीं आ सकती।
वह सदा ही तुम्हें मिला रहा है; एक क्षण को भी वियोग नहीं हुआ। याद तो उसकी आती है जिससे वियोग हो जाए। मछली को पता ही नहीं चलता कि सागर है। पता चलेगा कैसे? सागर में ही पैदा हुई; सागर में ही आंख खोली; सागर में ही जीयी; सागर में ही दौड़ी-भागी; सुख-दुख पाए; सागर से सदा ही घिरी रही; बाहर भी सागर, भीतर भी सागर--सागर का पता कैसे चलेगा? पता चलने के लिए वियोग जरूरी है। तो मछुआ जब मछली को बाहर निकाल लेता है सागर से, तब पहली दफा सागर की याद आती है। लेकिन तुम्हें तो परमात्मा के बाहर निकालने का कोई उपाय नहीं है; कोई मछुआ नहीं है, जो तुम्हें बाहर निकाल ले; कोई जाल नहीं है, जो तुम्हें परमात्मा के बाहर निकाल ले; कोई किनारा नहीं है जहां वह समाप्त होता हो। तुम उसके बाहर नहीं जा सकते--यही अड़चन है। इसलिए उसकी याद नहीं आती। याद आए कैसे?
यह तो पहली कठिनाई है पहेली की।
वियोग हो सकता तो योग बड़ा आसान था। तब कोई उपाय खोज लेते, कोई रास्ता बना लेते। वियोग नहीं हो सकता है, इसलिए योग असंभव है।
ऐसी समझ तुम्हारे मन में गहरी बैठ जाए, ऐसी समझ तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाए, तो अचानक खोज समाप्त हो गई; जिसे कभी खोया ही नहीं उसे पा लिया। यह केवल बोध का रूपांतरण है। न तो कुछ पाने को है, न कुछ खोने को है; सिर्फ समझ की क्रांति है; सिर्फ आंख खोल कर स्थिति को देखना है।
दूसरी बातः जो भीतर है, उसे पाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि सारी इंद्रियां बाहर खुली हैं। आंख बाहर देखती है; हाथ बाहर छूते हैं; कान बाहर की आवाज सुनते हैं; नासापुट बाहर की गंध लेते हैं--सारी इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं। क्योंकि, इंद्रियां प्रकृति का हिस्सा हैं, प्रकृति से जुड़ी हैं। प्रकृति बाहर है; परमात्मा भीतर है। और प्रकृति से जोड़ने के लिए इंद्रियों की जरूरत हैं। इंद्रियां न हों तो तुम्हारा प्रकृति से संबंध छूट जाएगा। अंधे आदमी का क्या संबंध है प्रकाश से? बहरे का क्या संबंध है संगीत से, शब्द से? इंद्रियां न हों तो प्रकृति से संबंध छूट जाएगा।
अब यह जरा बारीक मामला हैः ठीक से समझ लेना। और इंद्रियां हों तो परमात्मा से संबंध छूट जाएगा। क्योंकि, भीतर के लिए किसी इंद्रिय की

जरूरत नहीं हैं। दूसरे से जुड़ना हो तो संबंध बनाने के लिए कुछ आधार चाहिए।
अपने से ही जुड़ने के लिए क्या आधार जरूरी है? भीतर आंख जा नहीं सकती; हाथ नहीं जा सकते--जरूरत भी नहीं है।
कमरे में अंधेरा हो तो रोशनी जला लो, कमरे में रोशनी हो जाती है। लेकिन कमरे में अंधेरा हो, तब भी तुम्हारे भीतर तो अंधेरा नहीं होता। कमरे में रोशनी जल जाए, तब भी तुम्हारे भीतर रोशनी नहीं होती; बाहर ही बाहर सब घटता रहता है। कितना ही गहन अंधेरा हो, तुम्हें अपना तो पता चलता ही रहता है अंधेरे में भी कि मैं हूं। कुर्सी का पता नहीं चलता; टेबल का पता नहीं चलता; दीवाल का पता नहीं चलता; कोई और बैठा हो कमरे में, उसका पता नहीं चलता; तुम्हारा प्रियतम बैठा हो, उसका पता नहीं चलता; भगवान की मूर्ति रखी हो कमरे में, उसका पता नहीं चलताः सब खो जाते हैं अंधेरे में। क्योंकि आंख की इंद्रिय रोशनी में काम कर सकती हैं; बिना रोशनी के आंख बेकार हो जाती हैं; बाहर का कुछ पता नहीं चलता। लेकिन क्या तुम्हें यह भी भूल जाता है कि तुम हो? तुम्हें अपना होना तो पता चलता ही रहता है। तुम्हें अपने होने की तो अहर्निश धारा बनी रहती है।
कोई रोशनी तुम्हारे जानने के लिए कि तुम हो, जरूरी नहीं; कोई इंद्रिय जरूरी नहीं। तुम इंद्रियों के पीछे छिपे हो। इंद्रियां प्रकृति से जोड़ती हैं। इंद्रियां न हों तो प्रकृति से संबंध टूटता है। इंद्रियां परमात्मा से तोड़ती हैं। इंद्रियां न हों तो परमात्मा से संबंध जुड़ जाता है।
भीतर की यात्रा अतींद्रिय है; वहां इंद्रियों को छोड़ते जाना है। जब तुम्हारी दृष्टि आंख को छोड़ देती है, तब भीतर की तरफ मुड़ जाती है।
और यह जरा समझ लो।
आंख नहीं देखती है; आंख के भीतर से तुम्हारी दृष्टि देखती है। इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम खुली आंख बैठे हो, कोई रास्ते से गुजरता है और दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि तुम्हारी दृष्टि कहीं और थी; तुम किसी और सपने में खोए थे भीतर; तुम कुछ और सोच रहे थे। आंख बराबर खुली थी, जो निकला उसकी तस्वीर भी बनी; लेकिन आंख और दृष्टि का तालमेल नहीं था; दृष्टि कहीं और थी--वह कोई सपना देख रही थी, या किसी विचार में लीन थी।
तुम्हारे घर में आग लग गई है। तुम भागे बाजार से चले आ रहे हो। रास्ते
पर कोई जयरामजी करता है--सुनाई तो पड़ता है, पता नहीं चलता; कान तो सुन लेते हैं, लेकिन कान के भीतर से जो असली सुनने वाला है, वह उलझा है। मकान में आग लगी है--दृष्टि वहां है। तुम भागे जा रहे हो, किसी से टकराहट हो जाती है-- पता नहीं चलता। पैर में कांटा गड़ जाता है--दर्द तो होता है, शरीर तो खबर भेजता है; पता नहीं चलता। जिसके घर में आग लगी हो, उसको पैर में गड़े कांटे का पता चलता है?
इसलिए छोटे दुख को मिटाने की एक ही तरकीब हैः बड़ा दुख। फिर छोटे दुख
का पता नहीं चलता। इसीलिए तो लोग दुख खोजते हैं। बड़े दुख के कारण छोटे दुख का पता नहीं चलता। फिर दुखों का अंबार लगाते जाते हैं। ऐसे ही तो तुमने अनंत जन्मों में अंनत दुख इकट्ठे किए हैं। क्योंकि तुम एक ही तरकीब जानते हो; अगर कांटे का दर्द भुलाना हो तो और बड़ा कांटा लगा लो; घर में परेशानी हो, दुकान की परेशानी खड़ी कर लो--घर की परेशानी भूल जाती है; दुकान में परेशानी हो, चुनाव में खड़े हो जाओ--दुकान की परेशानी भूल जाती है। बड़ी परेशानी खड़ी करते जाओ। ऐसे ही आदमी नरक को निर्मित करते हैं। क्योंकि एक ही उपाय दिखाई पड़ता है यहां कि छोटा दुख भूल जाता है, अगर बड़ा दुख हो जाए। मकान में आग लगी हो, पैर में लगा कांटा पता नहीं चलता। क्यों? कांटा गड़े तो पता चलना चाहिए। हॉकी के मैदान पर युवक खेल रहा है; पैर में चोट लग जाती है, खून की धारा बहती है--पता नहीं चलता। खेल बंद हुआ, रेफरी की सीटी बजी--एकदम पता चलता है। अब मन वापस लौट आया दृष्टि आ गई।
तो ध्यान रखना, तुम्हारी आंख और आंख के पीछे तुम्हारी देखने की क्षमता अलग चीजें हैं। आंख तो खिड़की है, जिससे खड़े होकर तुम देखते हो। आंख नहीं देखती; देखने वाला आंख पर खड़े होकर देखता है। जिस दिन तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि देखने वाला और आंख अलग हैं; सुनने वाला और कान अलग हैंः उस दिन कान को छोड़ कर सुनने वाला भीतर जा सकता है; आंख को छोड़ कर देखने वाला

भीतर जा सकता है--इंद्रिय बाहर पड़ी रह जाती है। इंद्रिय की जरूरत भी नहीं है। अतींद्रिय, तुम अपने परम बोध को अनुभव करने लगते हो; अपनी परम सत्ता की प्रतीति होने लगती है।
आंख बाहर खुलती है--इसलिए तुम बाहर ही लगे रहते हो। और बाहर भी विराट प्रकृति है। प्रकृति उतनी ही विराट है जितना परमात्मा; क्योंकि परमात्मा की ही प्रकृति है। परमात्मा अगर अंतस्तल है तो प्रकृति उसका बहिर्विस्तार है। जो भीतर अनंत है, वह बाहर भी अनंत ही होगा। जो एक पहलू पर अनंत है, वह उसके दूसरे पहलू में भी अनंत ही होगा; क्योंकि अनंत अनंत ही हो सकता है। इंद्रियां बाहर खुलती हैं। अनंत विस्तार है प्रकृति का। तुम खोजते हो जन्मों-जन्मों, तृप्ति नहीं हो पाती--हो नहीं सकती। कुछ न कुछ शेष रह जाता है। दौड़ जारी रहती है। सदा शेष रहेगा। सदा दौड़ जारी रहेगी। संसार चलता ही रहेगा, उसका कोई अंत नहीं है; क्योंकि वह परमात्मा से ही चल रहा है।
और इस बाहर की दौड़ में धीरे-धीरे तुम इतने संलग्न हो जाते हो कि तुम्हें यह याद भी नहीं रह जाती कि यह दौड़ने वाला कौन है; तुम्हें याद भी नहीं रह जाती कि यह जानने वाला कौन है? और फिर बाहर की दौड़ बाहर के उपकरणों से तादात्म्य निर्मित करवा देती है! खुद की शक्ल देखने के लिए भी आईने की जरूरत पड़ती है। खुद की शक्ल भी आईने के भरोसे पर जाननी पड़ती है! तब तुम दूसरों की आंखों में अपनी झलक खोजते हो। अगर लोग तुम्हें कहते हैं तो तुम अच्छा मान लेते हो कि मैं अच्छा हूं; लोग अगर बुरा कहते हैं तो तुम बुरा मान लेते हो कि मैं बुरा हूं; लोग अगर कहते हैं, तुम सुंदर हो, तो तुम मान लेते हो कि तुम सुंदर हो; और लोग अगर कहते हैं कि तुम कुरूप हो तो तुम मान लेते हो कि मैं कुरूप हूं। दूसरों से पूछना पड़ता है कि मैं कौन हूं। दूसरे भी इतने गहन अंधकार में खड़े हैं। उन्हें खुद भी पता नहीं है कि वे कौन हैं। वे तुमसे पूछ रहे हैं। अज्ञानियों का जीवन एक-दूसरे के अज्ञान के सहारे खड़ा होता है।
ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन हज यात्रा के लिए गया, मक्का गया। साथ में दो मित्र और थे; एक था नाई और एक था गांव का महामूर्ख। वह महामूर्ख गंजा था। एक रात वे भटक गए रेगिस्तान में; गांव तक न पहुंच पाए। रात रेगिस्तान में गुजारनी पड़ी। तो तीनों ने तय किया कि एक-एक पहर जागेंगे, क्योंकि खतरा था। अनजान जगह थी। चारों तरफ सुनसान रेगिस्तान था। पता नहीं डाकू हों, लुटेरे हों, जानवर हों।
पहली ही घड़ी, रात का पहला हिस्सा, नाई के जुम्मे पड़ां। दिनभर की थकान थीः उसे नींद भी सताने लगी, डर भी लगने लगा। रात का गहन अंधकार! चारों तरफ रेगिस्तान की सांय-सांय! से कुछ सूझा न कि कैसे अपने को जगाए रखे। तो उसने सिर्फ अपने को काम में लगाए रखने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन की खोपड़ी के बाल साफ कर दिए--सिर्फ काम में लगाए रखने को! और वह कुछ जानता भी नहीं था; नाई था। नंबर दो पर मुल्ला नसरुद्दीन की बारी थी। तो जब उसका समय पूरा हो गया तो नसरुद्दीन को उठाया कि बड़े मियां। तो नसरुद्दीन ने जागने के लिए अपने सिर पर हाथ फेरा, पाया कि सिर सपाट है। उसने कहा, जरूर कोई भूल हो गई है। तुमने मेरी जगह उस गंजे मूर्ख को उठा लिया है।
हमारी पहचान बाहर से है। हम जानते हैं अपने संबंध में वही जो दूसरे कहते हैं। भीतर से अपने को हमने कभी जाना नहीं। हमारी सब पहचान झूठी है। जिस दिन हम अपने को अपने ही तईं जानेंगे, उसी दिन सच्ची पहचान होगी। उसे ही आत्म-ज्ञान कहा है।
फिर चूंकि इंद्रियां बाहर हैं, इसलिए हम सोच लेते हैं कि सभी कुछ बाहर है। तो हम प्रेम को भी बाहर खोजते हैं--और प्रेम का झरना भीतर बह रहा है; हम धन को भी बाहर खोजते हैं--और भीतर परम धन अहर्निश बरस रहा है; हम आनंद को भी बाहर खोजते हैं--और भीतर एक क्षण को भी आनंद से हमारा संबंध नहीं टूटा है। प्यासे हम तड़पते हैं; रेगिस्तानों में भटकते हैं; द्वार-द्वार भीख मांगते हैं--और भीतर अमृत का झरना बहा जा रहा है। भीतर हम सम्राट हैं। इंद्रियों के साथ ज्यादा जुड़ जाने के कारण और तादात्म्य बाहर बन जाने के कारण, हम भिखारी हो गए हैं। यही नहीं कि हम धन बाहर खोजते हैं, यश बाहर खोजते हैं,

स्वयं को बाहर खोजते हैं; हम परमात्मा तक को बाहर खोजने लगते हैं--जो कि हद हो गई अज्ञान की। तो हम मंदिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं, गुरुद्वारा बनाते हैं, परमात्मा की प्रतिमा बनाते हैं--हम बाहर से इस भांति आंक्रांत हो गए हैं कि हमें याद ही नहीं आती कि भीतर का भी एक आयाम है।
अगर किसी से पूछो, कितनी दिशाएं हैं, तो वह कहता है, दस। आठ चारों तरफ,
एक ऊपर, एक नीचे; ग्यारहवीं दिशा की कोई बात ही नहीं करता--भीतर। और वही हमारा स्वभाव है, क्योंकि हम भीतर से ही बाहर की तरफ आए हैं। हमारा घर तो भीतर है। गंगोत्री तो भीतर है--जहां से बही है जीवन की धारा।
मां के गर्भ में छोटे से अणु थे तुमः खाली आंख से देखे भी जा सकते थे। उसके भी पूर्व तुम अणु भी न थे; तुम बिल्कुल अदृश्य आत्मा थे। तुम आकाश में चलते तो तुम्हारे पद-चिह्न भी न छूटते। तुम वृक्ष से गुजरते तो वृक्ष का पत्ता भी न हिलता तुम्हारे गुजरने से। तुम एक अदृश्य पवन थे। फिर तुम एक गर्भ में एक छोटे से अणु में प्रविष्ट हुए। अणु भी आंख से दिखाई नहीं पड़ता; यंत्र चाहिए तब दिखाई पड़ता है। बड़े छोटे थे। फिर अणु बड़ा होने लगा। ऊर्जा भीतर से बाहर की तरफ फैलने लगी। शरीर निर्मित हुआ। इंद्रियां निर्मित हुईं। तुम्हारा जन्म हुआ। अब तुम जवान हो, या बूढ़े हो; लेकिन अगर तुम पीछे लौटो तो तुम पाओगे अति सूक्ष्म अदृश्य में तुम्हारी गंगोत्री है--जहां से यात्रा शुरू हुई--मूल स्रोत है। और वह मूल स्रोत अब भी तुम्हारे भीतर है क्योंकि उसके बिना तो तुम क्षण भर ही न रह सकोगे। वह मूल स्रोत उड़ जाएगाः पक्षी उड़ जाएगा, पिंजरा पड़ा रह जाएगा; हड्डी-मांस के सिवाय कुछ भी न बचेगा! वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है--इंद्रियां चूंकि बाहर खुलती हैं--उसकी तुम्हें याद ही नहीं आती है। परमात्मा तक को तुम बाहर निर्मित कर लेते हो। और कैसा मजा है, तुम ही बनाते हो परमात्मा की मूर्ति और फिर उसी के सामने टेक कर तुम प्रार्थना करते हो। तुम्हें यह भी याद नहीं आती कि अपनी बनाई हुई इस मूर्ति के सामने प्रार्थना करने से क्या होगा। उस परमात्मा को खोजो जिसने तुम्हें बनाया है। तुम उस परमात्मा के सामने हाथ जोड़े बैठे हो, जो तुमने ही बनाया है। तुम्हारा परमात्मा तुमसे बेहतर नहीं हो सकता। तुम्हारा परमात्मा तुमसे छोटा ही होगा। इसलिए तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में जो भी देवी-देवता बैठे हुए हैं, तुमसे छोटे हैं। तुमने ही बनाए हैं, तुमने ही सजाया-संवारा है उनको। वे तुम्हारी कृतियां हैं--कलात्मक होंगी, धार्मिक नहीं हो सकतीं। कलात्मक हो सकती हैं, और कला के मंदिरों में तुम उन्हें रखो--समझ में आता है; लेकिन धार्मिक उनको समझ लो तो तुम बड़ी भयंकर भूल में पड़ गए। और बाहर के परमात्मा से जो उलझ गया, वह पूजा करे, प्रार्थना करे, तीर्थयात्रा करे, यज्ञ-हवन करे। सब व्यर्थ; सब पानी में चला जा रहा है; वह जैसे रेगिस्तान में पानी डाला जा रहा हो, जैसे कि रेगिस्तान सोख लेगा-- सब खो जाएगा। भीतर की भूमि में डालो पानी--अगर चाहते हो कि परमात्मा का अंकुरण हो। बाहर के रेगिस्तान में पानी डालने से अंकुरण न होगा; क्योंकि जिसने तुम्हें बनाया है, जिससे तुम पैदा हुए हो, जिससे तुम आए हो--उसे तुम अब भी अपने भीतर लिए हो; क्योंकि उसके बिना तो तुम जी ही नहीं सकते। सब सांसों की सांस में! तुम्हारी हर सांस में वही सांस ले रहा है। तुम्हारी हर धड़कन में उसी की धड़कन है। तुम्हारी हर कंपन में उसी का कंपन है। तुम्हारे होने में उसी का होना है।
तीसरी बात; परमात्मा को तुम खोजने भी निकलते हो, तो तुम इतने उधार हो
कि तुम्हारी खोज भी उधार होती है। तब जटिलता बहुत बढ़ जाती है। ऐसा ही समझो कि तुम्हें खुद तो प्यास नहीं लगी है, तुमने किसी का प्रवचन सुन लिया और प्यास लग गई। तुमने मुझे सुन लिया और मुझे सुन कर तुम्हें ऐसा लगा कि अच्छा खोजना चाहिए परमात्मा को; तुम्हें खुद कोई प्यास ही न थी। यह परमात्मा की खोज का क्षण तुम्हारे अपने जीवन अनुभव से न आया था। तुम्हारे जीवन के संताप ने तुम्हें उस जगह न पहुंचाया था, जहां कि प्रार्थना के लिए व्याकुलता पैदा होती। तुम्हारी जीवन की चिंताओं ने तुम्हें उस जगह न पहुंचा दिया था, जहां कि तुम शांत होने के लिए प्रगाढ़ कामना करते। तुम्हारे संसार के अनुभव में इतनी परिपक्वता न थी कि तुम देख लेते कि यह सब माया है, सपना है। तुम्हारी खुद की आंख अभी इतनी सबल न थी कि तुम इस

चारों तरफ के फैलाव की व्यर्थता को समझ पाते। तुम्हारा बोध इतना जाग्रत न था कि तुम देखते कि हम जो भी कर रहे हैं, वह नाटक से ज्यादा नहीं है। लेकिन तुमने मुझे सुन लिया, या किसी और को सुन लिया, कि बात प्यारी लगी, मन को भायी, तर्क जचा, बुद्धि सहमत हो गई--तुम खोज पर निकल गए। अब बहुत मुश्किल हो जाएगी क्योंकि खोज तो प्यास से होती है, बुद्धि के निर्णय से नहीं।
समझ लो कि तुम्हें प्यास नहीं लगी है। और किसी ने पानी की खूब चर्चा
की और तुम प्रलोभित हो गए--क्या करोगे? पानी मिल जाएगा तो क्या करोगे? प्यास तुम्हें लगी नहीं है। तुम्हारे प्राण पानी को मांग नहीं रहे हैं। एक झेन फकीर हुआ, लिंची। उससे किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तुम लोगों को क्या समझाते हो? उसने बड़ी एक अनूठी बात कही। उसने कहाः "सेलिंग वॉटर बाय द रिवर" (नदी के किनारे पानी बेच रहे हैं) बड़ी अनूठी बात है। नदी के किनारे पानी बेचने की कोई जरूरत नहीं है, नदी ही मुफ्त पानी दे रही है। लेकिन लिंची ने कहा कि नदी के किनारे पानी बेच रहे हैं, क्योंकि लोग प्यासे नहीं हैं। नदी उन्हें दिखाई नहीं पड़ती।
लेकिन क्या कोई दूसरा आदमी तुम्हें प्यासा बना सकता है? तुम प्यासे होओ तो दूसरा तुम्हें इस बोध से भर सकता है कि प्यास है; लेकिन तुम प्यासे होओ ही न, तो कोई तुम्हें प्यासा नहीं बना सकता। और बिना प्यास के जो खोज पर निकल जाता है, वह व्यर्थ ही समय खराब करता है। क्योंकि मूलतः तो वह चाहता ही नहीं है। और तब अनूठी चीजें घटती हैं, जिनका हिसाब रखना मुश्किल हो जाता है। जाते तुम मंदिर हो, लेकिन दिखाई पड़ती हैं सुंदर स्त्रियां। ऐसा होगा, क्योंकि मंदिर की तो कोई प्यास न थी; प्यास तो स्त्रियों की थी। किसी की बातचीत सुनकर मंदिर का ख्याल आया। प्यास उधार है। जाओगे मंदिर; देखोगे तो वही जो तुम्हारी प्यास है।
ऐसा हुआ कि लंडन के एक चर्च में... । उस चर्च की बड़ी प्रशंसा इंग्लैंड
की महारानी ने सुन रखी थी, तो वह एक बार गई। बड़ी भीड़ थी चर्च में। हजारों लोग पंक्तिबद्ध खड़े थे। दरवाजे के बाहर तक कतार लगी थी। भीतर जगह न थी। रानी प्रभावित हुई। उसने चर्च के पुरोहित को कहा कि मैं बहुत प्रभावित हूं--प्रशंसा मैंने बहुत सुनी थी; लेकिन मैंने यह न सोचा था कि इतने लोग... ! उसने कहा, आप भूल में हैं। ये चर्च के लिए नहीं आए हैं, ये आपके लिए आए हैं। इनमें से हम किसी को नहीं पहचानते। इनको हमने कभी देखा ही नहीं। ये जो भावविभोर खड़े हैं--परमात्मा के लिए नहीं। आप कभी बिना खबर किए आएं, तब आपको असली स्थिति का पता चलेगा। तो रानी छिप कर बिना किसी को बताए, कुछ दिनों बाद दुबारा उस चर्च में गई। पादरी था, दो-चार बूढ़े लोग थे, जो करीब-करीब सोए थे। पादरी बोल रहा था, सोए हुए लोग सुन रहे थे।
तुम मंदिर किसलिए जाते हो? तुम समझते कोई भी कारण हो; लेकिन तुम्हारी
जो प्यास होगी, वही कारण होगा। तो यह भी हो सकता है कि तुम मंदिर जा रहे होओ, क्योंकि मुकदमा न हार जाओ।
दो दिन पहले एक मित्र आए--मंदिरों की तो छोड़ दो--दो दिन पहले एक मित्र आए, कहने लगे कि तीन साल से, जब से आपको पढ़ रहा हूं, बड़ी क्रांति हो गई है जीवन में। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ कि यह तो बहुत अच्छा हुआ। मैंने कहा, अब क्रांति के संबंध में कुछ कहो। उन्होंने कहा, दो-दो फैक्टरीज चल रही हैं। एक पैसा पास न था। जब से आपको पढ़ा जीवन में क्रांति हो गई। दो-दो फैक्टरीज चल रही हैं। सब सुख-सुविधा है। कार है। बच्चे सब अच्छे हैं, कालेज में पढ़ रहे हैं। और आपकी बड़ी कृपा है।
ऐसा व्यक्ति कैसे मुझे समझ पाएगा? अब मैं यहां कोई फैक्टरियां चलवाने
को हूं? और दो फैक्टरीज चलें कि दो सौ चलें--जीवन में कैसे क्रांति हो जाएगी?
मेरे पास भी लोग आ जाते हैं, जिनको कहीं और जाना था। अब वह संयोग की ही बात होगी, क्योंकि इसमें मेरा क्या हाथ हो सकता है, उसकी फैक्टरी के चलने में? मेरी किताब पढ़ रहे हैं, उससे उनकी दो-दो फैक्टरियां चल रही हैं। अब मेरी किताब पढ़ने से फैक्टरी चलने का क्या लेना-देना? चलती फैक्टरी बंद हो जाए तो समझ में भी आता है। लेकिन चल कैसे सकती हैं फैक्टरियां? लेकिन वे जीवन की क्रांति इसको बता रहे हैं। बड़े प्रफुल्लित हैं।

मुझे भी ठीक न लगा कि उनसे कुछ कहो, क्योंकि कुछ कहना बेकार होगा। बहरों के सामने वीणा बजाने का कोई भी अर्थ नहीं। मैंने उनसे कहा, अब आ गए हैं यहां तो कुछ ध्यान करें। उन्होंने कहा, सब आपकी कृपा से ठीक हो रहा है, अब ध्यान की क्या जरूरत है?
प्यास तुम्हारी अंततः तुम्हारे जीवन का वातावरण बनती है, तुम्हारी जो भीतर प्यास है, वही तुम्हारे चारों ओर का परिवेश बन जाता है। तुम प्रार्थना भी करोगे तो तुम मांगोगे धन। तुम प्रार्थना भी करोगे तो मांगोगे पद। तुम ध्यान भी करोगे तो मांगोगे संसार। तुम परमात्मा के पास भी जाओगे तो तुम्हारी मांग संसार की होगी।
प्यास चाहिए। और प्यास कैसे आएगी? इसलिए इतना बड़ा उपद्रव धर्म के नाम
पर खड़ा हो गया है। वह कोई शोषण करने वाले लोगों ने कर दिया है, ऐसा नहीं है; तुम्हारी जरूरत से पैदा हो गया है। तुम जो मांगते हो उसकी कोई न कोई तो पूर्ति करेगा। इकोनॉमिक्स का सीधा सा नियम है कि जहां-जहां डिमांड होगी, वहां-वहां सप्लाई होगी। जहां-जहां मांग होगी, वहां-वहां कोई न कोई पूर्ति करेगा। तुम अगर जहर भी मांगते हो, तो जहर की दुकान खुल जाएगी। क्योंकि आखिर कोई तो जहर बेचेगा--किसी को मरना है, आत्महत्या करनी है, तो जहर की दुकान खुल जाएगी।
तुमने जो मांगा है, उसके कारण तुम्हारे सारे मंदिर जहर की दुकानें हो
गए हैं। और उनमें से तो ज्ञानी तो हट गया, क्योंकि तुम्हारी मांग की वह पूर्ति नहीं कर सकता था। उसमें अज्ञानी, पुरोहित और पंडित होकर बैठ गए। वे तुम्हारी मांग की पूर्ति करते हैं, गंडे-ताबीज बांटते हैं; तुम जो चाहते हो वह देने के लिए हमेशा तैयार हैं। और यह मामला ऐसा है कि बड़ा महत्वपूर्ण हैं।
मंदिर में पुजारी आश्वासन देता है कि जो तुम चाहते हो वह मिल जाएगा। अगर मिल जाए तो पुजारी का प्रभाव बढ़ जाता है; अगर न मिले तो किसी दूसरे मंदिर की तलाश में चले जाते हो। और कभी न कभी तो तुम जो खोजते रहते हो, वे क्षूद्र चीजें, वे तुम्हें मिल ही जाएंगी। उस वक्त्त तुम किसी न किसी मंदिर में प्रार्थना कर रहे होओगे, जब वे चीजें मिलेंगी--वह संयोग महत्वपूर्ण हो जाएगा। जिसको जहां मिल जाता है वह उस मंदिर का भक्त हो जाता है। जिसको जहां मिल जाता है, वह उस गुरु का भक्त हो जाता है।
लेकिन तुम जो पा रहे हो, उसका किसी सदगुरु से कुछ लेना-देना नहीं। सदगुरु तुम्हें कुछ और ही देना चाहता है। सदगुरु तुम्हें वह संपदा देना चाहता है जो कभी न चुकेगी। सदगुरु तुम्हें उस जगत में ले जाना चाहता है कि तुम संसार में तृप्त मत हो जाना, क्योंकि तुम परमात्मा को पाने को बने हो और उससे कम पर तृप्त हो जाना नासमझी होगी।
प्यास चाहिए। अगर तुम जीवन को गौर से देखो तो प्यास अपने आप उठनी शुरू
हो जाएगी। इसलिए ठीक-ठीक गुरु सिर्फ तुम्हें होश सिखाता है, कि तुम सिर्फ थोड़ा जाग कर जीओ। जाग कर तुम जीओगे तो जितना जागरण बढ़ेगा उसी मात्रा में संसार सपना मालूम पड़ने लगेगा। तुम जितने सोए हुए हो, उतना ही सपना सच मालूम पड़ता है। गहरी नींद में सपना बिल्कुल सच मालूम पड़ता है। थोड़ी करवट बदलने लगते हो, थोड़ी नींद टूटने लगी, सुबह करीब आ गई, तो शक पैदा होने लगता है सपने पर। आंख खुलती है, जाग गए--सपना दो क्षण याद रहता है, फिर बिल्कुल भूल जाता है, जैसे हुआ ही न हो। आंख धो लो ठंडे पानी से, सपने के लोक से समाप्ति हो गई। सपना उसी मात्रा में सच मालूम होता है, जिस मात्रा में तुम मूर्च्छित हो, बेहोश हो। जिस मात्रा में तुम जागते हो, उसी मात्रा में सपना मालूम होने लगता है। जब तुम ठीक से जागते हो, सपना टूट जाता है।
तुम जागो थोड़े। जो भी तुम कर रहे होओ--धन कमा रहे होओ, पद कमा रहे होओ,
यश कमा रहे होओ--थोड़ा जागो। थोड़ा जाग कर देखो, क्या कर रहे हो? ठीकरों पर जीवन को गंवा रहे हो। कंकड़-पत्थर बीन रहे हो। सब पड़ा रह जाएगा। मौत द्वार पर दस्तक देगी--तुमने जो कमाया, सब पड़ा रह जाएगा। इसको तुम कसौटी बना लो। मौत के साथ, जो यहीं छोड़ देना पड़ेगा मौत के आने पर, वह कमाना नहीं है, गंवाना है। जो तुम मौत के भीतर भी साथ ले जा सकोगे, वही कमाई है। इसको तुम माप-दंड बना लो। कुछ ऐसा भी कमा लो, जो मौत छीन कर भी तुमसे छीन न सके। और

अगर ऐसी संपदा का ख्याल उठ आए तो अतृप्ति पैदा होगी। चारों तरफ तुम्हें लगेगा कि यहां तो पानी है ही नहीं; बस प्यास और प्यास है, जलन और जलन है, आग है; यहां कहीं छाया नहीं है, धूप ही धूप है। छाया तो भीतर है।
एक बार बाहर से अतृप्ति होने लगे, तो भीतर की स्मृति आएगी। जब बाहर की खोज व्यर्थ हो जाती है, तभी कोई भीतर की खोज पर निकलता है।
लेकिन तुम खोज बदल लेते हो, लेकिन रहते बाहर ही हो। धन कमाते हो; थक जाते हो धन कमाने से। धन की व्यर्थता किसको नहीं दिखाई पड़ती? गरीब को नहीं दिखाई पड़ती जिसके पास नहीं है; लेकिन जिसके पास है उसको तो निश्चित दिखाई पड़ती है। साफ हो जाता है कि कुछ पाया नहीं। धन का ढेर लग जाता है, और भीतर तो तुम वैसे के वैसे ही निर्धन रहते हो, प्रेम नहीं खरीद सकते। और प्रेम के बिना कैसे तृप्त होओगे?
धन से यश खरीद सकते हो? खुशामद खरीद सकते हो, यश नहीं। खुशामद से कोई कभी तृप्त हुआ है? क्योंकि जिसकी खुशामद की जाती है, वह भी भली भांति देखता है कि खुदामद की जा रही है।
धन से तुम प्रतिष्ठा खरीद सकते हो? पद खरीद सकते हो, प्रतिष्ठा नहीं।
और पद पर जब तक तुम होते हो तब जिस प्रतिष्ठा को तुम अपनी समझते हो--वह पद की है, तुम्हारी नहीं। तुम राष्ट्रपति हो जाओ--तुम्हारी प्रतिष्ठा है; फिर न हो जाओ राष्ट्रपति, कोई तुम्हें पूछता नहीं; खबर भी नहीं चलती कि तुम कहां हो।
राधाकृष्णन कहां रहते हैं--पता चलता है? क्या करते हैं--पता चलता है? कुछ पता नहीं चलता।
उन्नीस सौ सत्रह में, जब रूस में क्रांति हुई, और लेनिन ने तख्ता बदल
कर सत्ता हथिया ली, तो जो आदमी उस वक्त रूस में सबसे ज्यादा प्रतिष्ठित और प्रभावशाली आदमी था--करैन्स्की--वह रूस छोड़ कर भाग गया। वह प्रधानमंत्री था। उन्नीस सौ सत्रह में सारे जगत में उसका नाम था। फिर उन्नीस सौ साठ तक उसका कोई पता नहीं चला, क्या हुआ। उन्नीस सौ साठ में वह मरा, तब पता चला कि उसने छोटी सी दुकान न्यूयॉर्क में खोल रखी थी।
उन्नीस सौ सत्रह से लेकर उन्नीस सौ साठ--लंबा फासला है। पद नहीं रहा
तो कौन पूछता है! पद की पूछ है। पद प्रतिष्ठा नहीं है। क्योंकि पद की प्रतिष्ठा तुम्हारी प्रतिष्ठा कैसे हो सकती है? प्रतिष्ठा तो सब है कि तुम्हारी गरिमा का स्रोत तुम्हारे भीतर हो; कि तुम्हारी रोशनी तुम्हारे भीतर जलती हो; कि तुम जहां चलो, जहां कदम रखो, वह भूमि पवित्र हो जाए, जहां तुम्हारे पैर पड़ें, तुम जिस जगह पर बैठ जाओ, वह जगह सिंहासन हो जाए। तुम्हारे कारण पद की प्रतिष्ठा हो--तब प्रतिष्ठा है; पद के कारण तुम्हारी प्रतिष्ठा हो--तुम्हारी क्या प्रतिष्ठा है? तुम कुर्सी के धोखे में हो। रोशनी तुम्हारी नहीं है, अपनी नहीं है।
न तुम्हारा धन सच्चा है, न तुम्हारा पद सच्चा है। जब तुम देखोगे यह, जब तुम गौर से समझोगे, तब एक नई प्यास का आविर्भाव होगा। वह प्यास होगी कि सच्चे को खोजना है। और फिर चाहे सच्चा पद हो, सच्चा धन हो, सच्चा प्रेम हो-- ये सब नाम उस एक ही परमात्मा के हैं।
सत्य एक है। और उस एक सत्य को पाकर प्रेम भी सत्य हो जाता है; धन भी सत्य हो जाता है; पद भी सत्य हो जाता है--सब सत्य हो जाता है--सब सत्य हो जाता है। क्योंकि उस सत्य में सराबोर तुम सत्य हो जाते हो। तुम जो छूते हो, वही सोना हो जाता हो। तुम जहां पैर रखते हो, वहां मंदिर बन जाते हैं। तुम जहां चलते हो, वहीं तीर्थ हो जाता है।
तीर्थ जाने से कुछ भी न होगा। और जब हम कीमिया बताते हैं कि तुम्हीं तीर्थ हो जाओ--और जब कि कीमिया सदा से जग-जाहिर है, कोई छिपा राज नहीं है-- कि हम तुम्हीं को मक्का और काशी और कैलाश बना देते हैं, तो फिर तुम क्यों बाहर भटकते हो? लेकिन तीर्थ भी हमारे बाहर हैं। हमारा सब कुछ बाहर है, क्योंकि हम बहिर्मुखी हैं। और जीवन का स्रोत भीतर है। और हमारी अंतर्मुखता बिल्कुल खो गई है।
अब हम कबीर का सूत्र समझने की कोशिश करें। सीधे-सादे शब्दों में कबीर कहते हैंः

"मो को कहां ढूंढो रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंडास में।।
नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।"
मनुष्य ने कितने-कितने उपाय किए हैं कि परमात्मा को बाहर खोज ले; कभी मंदिर की मूर्ति के सामने धूप जलाई है, दीये जलाए हैं; कभी मंदिर की मूर्ति के सामने बलिदान दिए हैं--भेड़, बकरी, आदमियों के भी; नरमेध यज्ञ भी आदमियों ने किए हैं! लेकिन बकरी को, भेड़ को, या आदमी को काट डालने से कैसे तुम परमात्मा पा लोगे? बड़े सस्ते में पाने चले हो--एक बकरी काट दी, कि एक भेड़ काट दी; किसको धोखा दे रहे हो?
अपने को काटे बिना कोई भी परमात्मा को नहीं पा सकता। लेकिन आदमी अपने
को बचाता है और किसी दूसरे को चढ़ाता है। बकरी के काटने से शायद बकरी पा ले; बाकी तुम कैसे पा लोगे? और बकरी भी नहीं पा सकेगी? क्योंकि उसने स्वयं को नहीं काटा है।
स्वयं को बलिदान कर देना, स्वयं को मिटा देना ही सूत्र है--स्वयं को पा लेने का। परमात्मा के साथ भी आदमी सौदा कर रहा है कि चलो एक बकरी को चढ़ा देते हैं; चलो रुपया चढ़ाए देते हैं।
आदमी ने आदमी को भी चढ़ाया। फिर यह बात बेहूदी होती गई, तो आदमी ने प्रतीक खोज लिए। पहले आदमी खून चढ़ाता था, अब वह सिंदूर लगाता है। वह खून का प्रतीक है। पहले आदमी सिर को चढ़ाता था, अब नारियल चढ़ाता है। नारियल आदमी की खोपड़ी जैसा है--दो आंख भी दिखाई पड़ती है और दाढ़ी-मूंछ सब है। आदमी के सिर फोड़े हैं आदमी ने मंदिर की मूर्ति के सामने; फिर वह जरा अमानवीय हो गया, तो प्रतीक खोज लिए हैं। लेकिन अपने को चढ़ाने से आदमी बचता रहा। ये सब तरकीबें हैं--अपने को चढ़ाने से बचाने की।
तुम जाते हो गंगा कि स्नान करके पवित्र हो जाओगे। निश्चित, एक स्नान
की जरूरत है; लेकिन वह भीतर की गंगा का स्नान है। बाहर की गंगा में स्नान करने से शरीर की धूल-धवांस झड़ जाए; तुम कैसे शुद्ध हो जाओगे? पानी तुम्हें छुएगा भी नहीं, स्पर्श भी न होगा। अलग-अलग आयाम हैं। दोनों एक-दूसरे को छूते भी नहीं। लेकिन आदमी बचना चाहता है, अपने को बदलने से।
यह थोड़ा समझ लें। अपने को बदलने से बचना चाहता है और यह अहंकार भी बचाए रखना चाहता है कि हम अपने को बदलने की कोशिश कर रहे हैं। इसी से सारा उपद्रव पैदा हुआ है। ठीक जी रहे हैं; हम ऐसे ही क्षुद्र जीवन जी रहे हैं; हम यह कौड़ी-कंकड़ में लगे हैं; हम यह बाजार में ही अपना जीवन गंवा रहे हैं। यह भी अहंकार को तृप्ति नहीं मालूम पड़ती। अहंकार कहता है, इतना नहीं; कुछ और करो, कुछ बड़ा करके दिखाओ। यह सब तो यहीं पड़ा रह जाएगा। तो कुछ धर्म-पुण्य भी करो। तो तुम समझौता कर लेते हो, क्योंकि धर्म-पुण्य तो कठिन मामला है-- उसमें तो तुम्हें पूरा जीवन बदलना पड़ेगा--तो तुम कहते हो कि कोई सस्ती तरकीब। तो तरकीब यह है कि तुम तीर्थ कर आओ। एक चार दिन की छुट्टी निकाल लो। ध्यान रहे, धर्म को कोई भी संसार में से छुट्टी निकाल कर नहीं कर सकता। धर्म ता जब होता है, तब तुम्हारे चौबीस घंटे धर्म में बहने लगते हैं। धर्म कुछ ऐसा नहीं है कि पंद्रह मिनट कर लिया और बाकी फिर पौने चौबीस घंटे मजे से अधर्म किया। खंड-खंड नहीं हो सकता। धर्म तो सांस की तरह हैः जब तक चौबीस घंटे न चले, तब तक उसका कोई सार नहीं है। तो तुम गए तीर्थ, दो दिन भजन-कीर्तन में रस लिया, थोड़ा दान-पुण्य किया; फिर घर आकर उसी पुरानी दुनिया में संलग्न हो गए--और जोर से; क्योंकि वह चार दिन जो नुकसान हुआ है, वह भी पूरा तो करना ही पड़ेगा। तो अगर जेब एक काटते थे तो दो काटने लगे। और फिर अगले दफा जाना है तीर्थयात्रा पर, तो उसके लिए भी तो पैसा इकट्ठा करना पड़ेगा। मंदिर हो आते हो--ऐसा लगता है जैसे तुम परमात्मा पर कुछ एहसान कर रहे हो। क्योंकि, मंदिर से जब तुम लौटते हो तो बड़े अकड़क कर लौटते हो--फिर कर आए एहसान! और कुछ विनम्र नहीं होते मंदिर से, तीर्थ से लौट कर विनम्र नहीं होते। जो आदमी हज हो आता है, वह हाजी हो जाता है! उसकी अकड़ देखो! यह तरकीब है, बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने की। धर्म से भी बच गए, क्योंकि वह तो महाक्रांति है। उससे बड़ी कोई क्रांति नहीं। वह तो अकेली क्रांति है,

एकमात्र क्रांति है--जिससे तुम्हारा सब कुछ बदल जाता है, सब कुछ नया हो जाता है; पुराना इस तरह मर जाता है कि पुराने से नए का कोई संबंध ही नहीं होता--सातत्य ही टूट जाता है,शृंखला ही बदल जाती है; जैसे पुराना आदमी बचा ही नहीं और एक नए आदमी का आविर्भाव हो जाता है। वह तो नया जन्म है।
लेकिन उतना महंगा, उतना हिम्मत का काम, तुम नहीं कर पाते। तुम सोचते हो, थोड़ा सस्ते में निपटा लो। असली फूल तुम नहीं उगा पाते; तुम कागज के फूल बाजार से खरीद लाते हो। और कागज के फूलों की एक खूबी हैः न तो पानी देना पड़ता, न उनकी चिंता करनी पड़ती है, क्योंकि जानवर भी उन्हें नहीं खाते। वे तुम जैसे नासमझ नहीं हैं कि कागज का फूल और जानवर खाए, कभी इस भूल में नहीं पड़ेगा; सिर्फ आदमी ही ऐसी भूलें करता है। और फिर कागज का फूल सुबह जन्मा है, सांझ को मरता है--ऐसा भी नहीं; सनातन मालूम होता है--रखा है, रखा है, रखा है। एक दफा ले आए--सदा के लिए हो गया।
जीवन तो प्रतिपल नया करना होता है। जीवन पत्थरों की तरह नहीं है, फूलों की तरह है। और धार्मिक जीवन तो प्रतिपल नया उगता हुआ फूल है। धार्मिक जीवन तो प्रतिपल अतीत की मृत्यु है और वर्तमान का जन्म है। वहां तो हर चीज ताजी है। वह जरा कठिन मालूम प.सता है, और इतना ज्यादा मालूम पड़ता है कि इतनी प्यास ही नहीं है। तो लोग कहते हैं कि फूल चाहिए, तो घर में तुम कागज के फूल रख लेते हो। और अब तो प्लास्टिक के फूल उपलब्ध हैं। कागज के फूल में भी खतरा था--कभी आग लग जाए, कभी यह हो जाए। अब प्लास्टिक के फूल हैं तो और भी खतरा कम है; बड़ी सुरक्षा है।
ऐसे ही तुम एक झूठे भगवान का मंदिर बनाकर घर में रख लेते हो, एक मूर्ति
को निर्मित कर लेते हो। उससे तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता; तुम जैसे हो, वैसे ही रहते हो। न केवल उतने, बल्कि उस मूर्ति से तुम जैसे हो, अपने को और मजबूत कर लेते हो, कि अब तुम धार्मिक भी हो गए।
तुम्हारा धर्म आत्मवंचना है। पृथ्वी पर जो इतने मंदिर-मस्जिद दिखाई पड़ते हैं, वे तुम्हारे धोखे का विस्तार हैं। जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा, उस दिन तुम्हारी आंख भीतर लौटनी शुरू होगी। उस दिन तुम असली मंदिर खोजोगे। वह मंदिर तुम हो। इसलिए कबीर कहते हैंः
"मो को कहां ढूंढो रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंड़ास में।।
नहिं खाल में नहिं पोंछ में, ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में।।"
न तो मैं देवल हूं, न मस्जिद में हूं, न काबे में हूं, न कैलाश में हूं। परमात्मा तुम्हारे भीतर है। तुम परमात्मा हो। तुम्हारा होना ही परमात्मा का होना है। तुम परमात्मा का एक रूप हो। तुम परमात्मा की एक लहर, एक तरंग हो। तुम परमात्मा की एक भावदशा हो। तुम परमात्मा का एक संगठन हो। तुम एक इकाई हो। वह होगा सूरज, तो तुम एक छोटे दीये हो, लेकिन आग वही है। वह होगा विराट, वह होगा महासागर, तुम एक बूंद हो; लेकिन एक बूंद में पूरा सागर छिपा है। और एक बूंद को कोई पूरा जान ले, तो पूरे सागर को जान लिया; कुछ और जानने को बचता नहीं है। क्योंकि एक बूंद में जब सूक्ष्म रूप से पूरा सागर मौजूद है। पिंड में ब्रह्मांड मौजूद है। आत्मा में परमात्मा मौजूद है। व्यक्ति में समष्टि मौजूद है।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहिं जोग बैराग में। खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में। होना है परमात्मा का स्वाभाव; क्रिया- कर्म तो ऊपर-ऊपर है। तुम मंदिर में बैठ कर पूजा कर रहे हो, घंटी बजा रहे हो, घंटी बजती रहेगी; तुम दीया लेकर आरती उतार रहे हो, आरती उतर जाएगी--लेकिन इससे तुम्हारे होने में क्या फर्क पड़ने वाला है? तुम तो तुम ही रहोगे। और क्रिया से परमात्मा का क्या संबंध है? तुम सारी क्रियाएं छोड़ दो, तो भी तो तुम्हारे भीतर जीवन रहेगा। तुम बिल्कुल आंख बंद करके पड़ जाओ, कुछ भी न करो, तो भी तो तुम हो!
तो क्रिया तो गौण है, बाहर है; होना भीतर है, मूल है। होकर ही कोई परमात्मा को पाता है। कर-कर के कुछ भी नहीं कोई पा सकता। क्रिया से होना

बड़ा है। क्योंकि सब क्रियाएं होने से निकलती हैं। और सब क्रियाओं को भी जोड़ दो तो भी सब क्रियाओं के जोड़ से होना नहीं पूरा होता; होना फिर भी बड़ा हैं। तुमने जो भी किया है अब तक, सब भी जोड़ दिया जाए तो भी तुम उससे बड़े हो, क्योंकि तुम कुछ और कर सकते हो। तुम प्रतिफल कुछ और करते रहोगे। करना तो पत्तों की तरह है--निकलते चले जाते हैं। होना जड़ की तरह है। जड़ को ही खोजो। पत्ते-पत्ते बहुत खोजा, बहुत भटके। पत्ते अनंत हैं--और भटकते रहोगे। जड़ को पकड़ लो। व्यक्तित्व की जड़ कहां है? --कर्म में नहीं, क्रिया में नहीं, सिर्फ होने मात्र में।
विचार भी क्रिया है। हाथ से कुछ करो, वह भी क्रिया है; मन से कुछ करो,
वह भी क्रिया है। जब सब क्रिया शांत हो जाती है--न हाथ कुछ करते हैं, न मन कुछ करता है; जब तुम बस हो; सब ठहर गया, कोई गति नहीं है, कोई तरंग नहीं-- अचानक, अचानक सब मौजूद हो जाता है जिसकी तुम तलाश कर रहे थे; आनंद और प्रेम और परमात्मा सब बरस जाता है।
"ना तो कौनो क्रिया कर्म में, नहिं जोग बैराग में।"
कबीर ठीक झेन फकीरों जैसे हैं। कबीर कहते हैं, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है कि तुम योग करो, कि तुम आसन लगाओ, कि तुम शीर्षासन करो, कि तुम हजार तरह के क्रियाकांड में उलझो--कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जिसे तुम खोज रहे हो, वह सब करने से पहले तुम्हारे भीतर मौजूद है। यह फर्क ठीक से समझ लेना, जैसा है, क्योंकि बहुत नाजुक है। होना--बीइंग, और करना-- डुइंगः यह फर्क बहुत नाजुक है।
ऐसा समझो कि तुम किसी के प्रति प्रेम में हो, तो तुम कुछ करते हो। तुम्हारा प्रेमी मिलता है तो गले लगा लेते हो। तुम्हारा प्रेमी आने वाला होता है तो द्वार पर टकटकी लगा कर बैठ जाते हो। तुम्हारा प्रेमी आने वाला होता है, तो किसी दूसरे की पगध्वनि भी भ्रांति देती है कि शायद प्रेमी आ गया; उठ कर द्वार पर आ जाते हो। प्रेमी आने वाला है तो भोजन तैयार करते हो। प्रेमी आने वाला है तो भेंट तैयार करते हो। बहुत कुछ करते हो। लेकिन प्रेम क्या कुछ करना है? करने के पहले प्रेम है। प्रेम एक भावदशा है। कुछ भी न करो तो क्या प्रेम मिट जाएगा, क्या करने का जोड़ ही प्रेम है? तो प्रेम है ही नहीं। करने से तो प्रेम की अभिव्यक्ति हो रही है। लेकिन जिसकी अभिव्यक्ति हो रही है, वह तो करने के पहले मौजूद है, तभी अभिव्यक्ति हो सकती है।
ऐसा हुआ, एक बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति हुआ, लॉरेंस। वह था तो अंग्रेज लेकिन जिंदगी भर रहा अरबों के साथ, रेगिस्तान में। उसे रेगिस्तान की जिंदगी पसंद थी। और रेगिस्तान में लोग उसे बिल्कुल अपना मानने लगे। पेरिस में एक बड़ी प्रदर्शनी थी, और अरबों के एक दल को लेकर वह पेरिस प्रदर्शनी दिखाने ले गया। कोई बारह अरब उसके साथ गए। वे पहली दफा रेगिस्तान के बाहर निकले थे। एक बड़ी शानदार होटल में उसने उन्हें ठहराया। उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी--उस व्यक्ति की। लेकिन वह बड़ा चकित हुआ कि वे जो अरब थे, किसी चीज में रस न लें। न तो वे प्रदर्शनी देखने में रस लें; बस जल्दी-जल्दी वापस चलना है। और जैसे होटल पहुंचे, वे फौरन बाथरूम में घुस जाएं। वह बड़ा हैरान हुआ कि मामला क्या है? उनको सबसे चमत्मकारी जो चीज लगे, वह लगे नल। रेगिस्तान में रहने वाले लोग, पानी के लिए तड़पे--बस वे जल्दी ही टोंटी खोल कर या तो शॉवर के नीचे खड़े हो जाएं या पानी देखें। उनको देखने में ही... उनको बहुत रस आए। बड़ी-बड़ी चीजें थीं प्रदर्शनी में--सारी दुनिया की प्रदर्शनी थी--मगर उन्हें किसी चीज में रस न था; उन्हें केवल नल की टोंटी में रस था। फिर जिस दिन वे जाने को थे, कार आकर खड़ी हो गई, सामान लद गया और अरब सब नदारद! ट्रेन चूकने की नौबत आ गई तो वह भागा हुआ ऊपर आया कि भाई क्या कर रहे हो? वे सब टोंटियां खोल रहे थे साथ ले जाने को। उसने उन्हें समझाया कि नासमझो! टोंटियों से कुछ न होगा। टोंटी तो तुम ले जाओगे, लेकिन भीतर जल का स्रोत चाहिए। टोंटी से जल नहीं आ रहा है; टोंटी से सिर्फ निकल रहा है; आ तो बहुत भीतर से रहा है।
तुम्हारे सारे कृत्य, प्रेम में जो करते हो, टोंटियों जैसे हैं। तुम किसी को गले लगा लेते हो--वह टोंटी है, उससे जल गिरेगा; लेकिन भीतर जल

चाहिए, तो ही गिरेगा। भीतर न हो तो तुम गले से लगा लोगे तो हड्डियों से हड्डियां मिल जाएंगी, चमड़ी-चमड़ी को छुएगी, लेकिन प्रेम का कोई भी आदान-प्रदान न होगा; प्रेम की लपट एक हृदय से दूसरे हृदय में न जाएगी। टोंटी तुम खोल कर बैठे रहोगे। जल की एक बूंद न टपकेगी।
होना पहले है, करना अभिव्यक्ति है। तो किसी क्रियाकांस से कोई परमात्मा को नहीं पा सकता; लेकिन अगर कोई परमात्मा को पा ले तो उसके जीवन की हर कृत्य से वह प्रकट होने लगता है। उसके उठने-बैठने में भी परमात्मा की अभिव्यक्ति होती है। उसकी आंख का एक इशारा परमात्मा का इशारा हो जाता है। फिर वह जो भी करता है, वह सभी पूजा है।
कबीर ने कहा हैः जो जो करुं सो पूजा। क्योंकि कबीर न कभी मंदिर गए, न मस्जिद; कपड़ा ही बुनते रहे! जुलाहे थे तो काम जारी रखा। लोग कहते भी गए, बंद कर दो, क्यों कपड़ा बुनते हो? वे कहते थे, जो जो करुं सो पूजा और जिसके लिए कर रहा हूं वह परमात्मा है। झीनी-झीनी रे बीनी रे चदरिया! वह भी परमात्मा के लिए ही बुन रहा हूं। बाजार जाते तो जो भी ग्राहक खरीदता उसको वे हमेशा राम ही कहते कि राम, सम्हाल कर रखना, बहुत प्यार से बुनी है। बड़ी प्रार्थना से बुनी है। एक-एक धागे में प्रार्थना है। ऐसे ही नहीं बुन दी गई है; राम के लिए बुनी है। पता नहीं ग्राहक समझ भी पाते या नहीं, या इस आदमी को पागल समझते। लेकिन कबीर कहते हैं, जो भी मैं करता हूं, वह अब सभी पूजा है; जो जो करता हूं सभी परिक्रमा है।
कृत्य से कोई परमात्मा को नहीं पाता; परमात्मा को पा ले तो सभी कृत्य धार्मिक हो जाते हैं--सभी! छोटे-छोटे कृत्य। प्यास लगी है। पानी पीना--वह भी धार्मिक हो जाता है, क्योंकि प्यास भी उसी को लगी है, पानी भी उसी का है। पानी का मिलन प्यास से, परमात्मा का सृष्टि से मिलन है; सृष्टि का स्रष्टा से मिलन है; जैसे कवि का कविता से; जैसे मूर्तिकार का अपनी मूर्ति से मिलन हो जाए; जैसे गीतकार को अपना ही गीत वापस लौट आए और मिल जाए। जब प्यास लगती है तो भीतर स्रष्टा को प्यास लगी है--उसका ही पानी है, उसकी ही सृष्टि है। गीतकार पर गीत वापस लौट आया--वर्तुल पूरा हो गया; सृष्टि स्रष्टा में लीन हो गई। छोटी सी पानी पीने की छोटी घटना में भी सृष्टि स्रष्टा में लीन हो रही है।
जो जो करूं सो पूजा! तब भोजन करो तो भी पूजा है। तब कबीर अलग से भोग नहीं लगाते परमात्मा को; तब कबीर जो भोजन करते हैं, वही परमात्मा को लगाया गया भोग है। क्योंकि भीतर परमात्मा बैठा है।
ना तो कौनो क्रियाकर्म में, नहिं जोग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पलभर की तालास में।।
और जब... जो भीतर ही बैठा है, जो तुम्हारा होना है, जिसका किसी क्रिया
से कुछ लेना-देना नहीं, जिससे सब क्रियाएं निकलती हैं, जो सभी का मूल है-- उसको क्या तुम आसन लगा कर पाओगे? उसको तो लेट कर भी पाया जा सकता है। लेटने में भी वही मौजूद है। उसे तुम सिर के बल खड़े होकर पाओगे? उसे तो पैर के बल खड़े होकर बड़े मजे से पाया जा सकता है, क्योंकि वह तब भी मौजूद है। उसे तुम उपवास करके पाओगे? उसे तुम शरीर को सता कर पाओगे? उसे तुम धूप में बैठकर पाओगे? क्योंकि छाया भी उसी की है। सभी कुछ उसका है इसलिए कुछ भी करने की शर्त नहीं है। शर्त है तो होने की है कि तुम हो जाओ; कि तुम इतने भरपूर हो जाओ कि तुम्हारे प्रत्येक कृत्य से वही बहने लगे।
और कबीर एक बड़ा अनूठा विचार कह रहे हैंः वह जो झेन फकीर कहते हैं--सडन एनलाइटनमेंट--समाधि इसी पल हो सकती है। एक पल तक भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है, स्थगित करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि समाधि कोई सरकारी दफ्तर नहीं है कि कल, कल, कल, और फिर कभी नहीं होता। समाधि कोई रेड टेप नहीं है कि उसके लिए कोई बड़े दफ्तरों में प्रार्थना करनी पड़ती है, फिर वहां से सैंक्शन मिले, फिर रिश्वत खिलाओ, फिर लाइसेंस निकालो--तब तुम्हारी समाधि होगी। अगर दूसरे का सहारा लेना हो तो फिर पता नहीं कब वह दूसरा सहारा देगा और कब घटना घटेगी। अगर दूसरे पर थोड़ी भी निर्भरता हो तो समय लगेगा, दूसरे का क्या भरोसा--दे, न दे! लेकिन समाधि तुम्हारा शुद्ध निर्णय है। समाधि एक मात्र घटना है इस जगत में जो तुम्हारे अकेले होने से घट सकती है, जिसके लिए

दूसरे की जरूरत नहीं है। सभी घटनाओं में दूसरे की जरूरत है। प्रेम तक के लिए दूसरे की जरूरत है। दूसरा न हो तो कैसे प्रेम घटेगा। इसलिए प्रेम भी निर्भर है, मोहताज है। अकेली समाधि एकमात्र घटना है जो मोहताज नहीं है, जो भिखारी नहीं है। अकेली समाधि सम्राट है। तुम जिस क्षण चाहो, तुम ही न चाहो--तुम्हारी मर्जी तुम कई बार सोचते हो कि तुम चाहते होऔर घटती नहीं है; तुम गलत सोचते हो। तुम चाहते नहीं; नहीं तो घटेगी ही। वह नियम है। उस नियम में कोई रूपांतरण नहीं हुआ है। कभी नहीं होगा।
मुझसे कई बार लोग आकर कहते हैं कि आप कहते हैं, चाहने से घट जाएगी; चाहते तो हम भी हैं, लेकिन उनकी चाह मैं देख रहा हूं कि बिल्कुल कुनकुनी है। चाह का मतलब हंडरेड डिग्री, सौ डिग्री पर होनी चाहिए, तभी पानी उबलता और भाप बनता है। भाप बनाने की इच्छा है, बड़ा तबेला रखे बैठे हैं मन का और एक अंगारा लगा रखा है नीचे--उससे होता ही नहीं।
ऐसा हुआ कि एक सम्राट ने एक फकीर को, उसकी यह बात सुन कर--फकीर ने कहा
कि परमात्मा मेरी सब जगह रक्षा करता है; हर हालत में मेरी रक्षा करता है; मुझे किसी और चीज की रक्षा की जरूरत नहीं है, वह काफी है। सम्राट ने कहाः ठीक! सर्द रात थी, बर्फ पड़ती थी। उस फकीर को महल के पास की नदी में नग्न खड़ा करवा दिया गले-गले पानी में, और कहा, देखें, तेरा परमात्मा कैसे बचाता है! सुबह फकीर ताजा था, बिल्कुल ठीक-ठीक था गुनगुनाता गीत--जैसी उसकी आदत थी। वह महल आया। सम्राट देख कर भरोसा न कर सका। इतनी सर्द रात थी कि मर ही जाता, जम ही जाता खून। क्या मामला है? उसने कहाः तो तुम बच गए? तुमने कोई सहारा तो नहीं लिया? सैनिक ने कहाः जो इसे लेकर आया था--कि सहारा लिया है, मैंने रात देखा था। महल के ऊपर जो दीया जलता है उसको वह देख रहा था। उसी से मालूम होता है, इसको गर्मी मिली है। कहां महल का दीया, दो फर्लांग के फासले पर नदी, बर्फ पड़ती रात! मगर सम्राट ने कहा कि यह तो तुमने धोखा दिया। परमात्मा पर्याप्त नहीं है।
फकीर कुछ बोला नहीं। वह लौट गया। कुछ दिनों बाद फकीर ने दावत दी सम्राट को। उसके दरबारियों को, सभी को बुलाया। बड़ी दावत दी। करीब-करीब नगर को निमंत्रित कर लिया। सब लोग पहुंचे। फकीर की दावत थी। सम्राट भी आया। बैठे लोग, फकीर अंदर जाए बार-बार, फिर बाहर आ जाए। पूछा कि बड़ी देर हुई जा रही है, बात क्या है? उसने कहा कि भोजन पक जाए तो मैं खबर दूं। फिर देर बहुत होने लगी, भूख भी बढ़ने लगी। और फकीर फिर इधर-उधर की बातें करें। आखिर सम्राट ने कहा कि मामला क्या है? मैं अंदर चलकर देखना चाहता हूं। दोपहर भी हो गई अब सांझ भी करीब आई जाती है। यह क्या भूखे मार डालोगे? अंदर जाकर देखा तो वहां कुछ भी न था! खाली चूल्हे पर एक बड़ा तपेला रखा था। मीठे चावल उसमें भरे हुए थे। आग तो वहां थी ही नहीं। उसने कहा, तू यह क्या कर रहा है? उसने कहा, आप के महल का दीया! हम उसी आग पर तपा रहे हैं, जिस आग से हम उस रात बच गए थे। कभी न कभी जरूर भोजन पक जाएगा।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि चाह तो है। लेकिन जब वे कहते हैं चाह तो है, तब भी मैं देखता हूं कि वे डर रहे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि समाधि लग ही जाए। चाह तो है, उसमें भी पैर पीछे खींचते हुए मैं उनको देखता हूं। वे मेरी तरफ ऐसा देखते हैं, ऐसा नहीं कि आप पक्का ही मान लें। मतलब है, थोड़ी जिज्ञासा है। जानने का थोड़ा ख्याल है।
चाह जब पूरी होती है; जब चाह समग्र होती है; जब तुम्हारे प्राण में सिर्फ चाह ही चाह होती है; जब तुम्हारे रोएं-रोएं से एक ही पुकार उठती है परमात्मा को पाने की--तब कबीर ठीक कहते हैंः "खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं।" जितनी गहन चाह है, उतनी ही परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी कम हो जाती है। अगर चाह परिपूर्ण है तो दूरी समाप्त हो गई। चाह का ही सवाल है।
श्री अरविंद ने उस तरह की चाह के लिए एक नए शब्द का प्रयोग किया है, वह ठीक है। इसे वे कहते हैंः अभीप्सा। आकांक्षा नहीं, अभिलाषा नहीं-- अभीप्सा। अभीप्सा के शब्द में बल है। उसका अर्थ है ऐसी चाह की पूरा जीवन दाव पर लगा है कि कुछ बचाने का सवाल नहीं है; संदेह रत्तीभर नहीं है--तब उसी पल घट जाती है घटना।

देर लग रही है, क्योंकि देर तुम लगा रहे हो। देर लग रही है, क्योंकि तुम चाहते हो कि देर लगे। अभी कहीं-कहीं संसार में रस बाकी है। सोचते हो, एक दिन और गुजर जाए, समाधि न लगे; तो यह जो सौदा किया है, यह निपट जाए; कि यह जो नया-नया प्रेम हो गया है किसी स्त्री से, इससे तृप्ति हो जाए--जरा और देर समाधि न लगे।
देखना अपने मन में गौर सेः तुम इसी क्षण समाधि चाहते हो? कुछ राग-रंग बचा नहीं है? सब तरफ से तुम भर गए हो संसार से? कोई और चाह नहीं बची?
जब सभी चाहें--जैसे सभी नदियां सागर में गिर जाती हैं--जब सभी चाहें एक चाह में गिर जाती हैं, उसी क्षण, उसी क्षण परमात्मा मिला ही हुआ था; बस तुम जाग ही जाते हो, नींद टूट जाती है, सपना मिट जाता है। सपने तक से जागने में आदमी डरता है, अगर सपना अच्छा चल रहा हो, और बुरा भी चल रहा हो तो आशा तो बनी रहती है कि आज बुरा चल रहा है, आज जरा धंधा ठीक नहीं चल रहा है, कल चलेगा; कौन जाने कल सब ठीक हो जाए!
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात सपना देखा। सपने में देखा कि कोई एक देवदूत कह रहा है कि निन्यानबे रुपये ले लो। मुल्ला ने कहा, निन्यानबे? सौ लूंगा। और जब लेने ही हैं तो निन्यानबे क्यों? क्यों मुझे चक्कर में निन्यानबे के डालते हो? सौ ही दे दो। लेकिन उसने इतने जोर से कहा कि सौ ही दे दो, कि खुद के मुंह से आवाज निकल गई और नींद टूट गई। नींद टूट गई तो उसकी आंख खुल गई। उसने पत्नी से कहा कि बड़ी मुसीबत हो गई। फिर उसने आंख बंद की और कहा, भाई, कोई हर्जा नहीं, निन्यानबे ही दे दो। मगर अब वहां कोई है नहीं। अठानबे, सतानबे--वह उतरता आया और उसने कहा, अच्छा, एक ही दे दो, जिसके लिए जिद्द खड़ी हो गई थी। तुम निन्यानबे कह रहे थे; हम सौ कह रहे थे। अब हम एक पर भी राजी हैं।
मगर अब सपना नहीं है वहां।
आदमी सपने में भी--सुखद सपना चल रहा हो तो चलाए रखना चाहता है; दुखद चल रहा हो तो सोचता है कि आज दुख है, कल सब ठीक हो जाएगा। सुख हो तो पकड़ने का मन होता है, दुख हो तो कल आशा बांधे मन अटका रहता है।
समाधि का अर्थ है कि न तो अब सुख की कोई चाह रही, न कोई सुख की आशा रही। संसार जैसा था वैसा देख लिया--आर-पर, व्यर्थ पाया, स्वप्न पाया; अब तो जागने की एकमात्र इच्छा रह गई। सभी इच्छाएं जो संसार में नियोजित थी, अब एक ही चाह में आ गिरीं कि जाग जाऊं। फिर तुम्हें कोई रोक न सकेगा। कोई रोकने को नहीं है। तुम्हारी चाह में ही तुम बंटे हो। तुम्हारी शक्ति इधर लगी, उधर लगी, हजार तरफ लगी है। वह सारी शक्ति एक ही चाह में गिर जाए, अभीप्सा बन जाए--खोजी होए तो तुरतै मिलिहौं--वही मतलब है कबीर का।
खोजी कौन है? परमात्मा की चाह जिसकी अभीप्सा हो गई है; जो सब दांव पर लगाने को राजी है; जो कुछ भी बचाना न चाहेगा। खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं-- और जब तुरंत एक पल भी न जाएगा--पल भर की तालास में।
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में। कबीर कह रहे हैं कि परमात्मा संसार में नहीं रह रहा है, शहर के बाहर है। शहर यानी संसार--वह जो चारों तरफ फैला है। परमात्मा वहां नहीं रह रहा है। मेरा रहना तो भीतर के गढ़ में है। मैं तो वहां हूं। सब तरफ संसार है; सिर्फ भीतर संसार नहीं है; वहां मोक्ष है।
लोग पूछते हैं, मोक्ष कहां है और मंदिरों में नक्शे भी टंगे हैं कि ऐसा-ऐसा जाओ फिर यहां ये-ये सीढ़ियां पड़ेंगी और ये-ये द्वार मिलेंगे। और नीचे नरक है और ऊपर स्वर्ग है और सबके ऊपर मोक्ष है।
मोक्ष भीतर है। ऊपर, नीचे, बाहर, कहीं भी नहीं है। मोक्ष भीतर है।
खोजने वाले में छिपा है वह जिसकी खोज चल रही है। पूछनेवाले में छिपा है वह, जिसको तुम पूछ रहे हो।
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में। मवास का अर्थ होता है, भीतर का दुर्गम गढ़।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में।
सब सांसों की सांस में। कहां है सब सांसों की सांस?

तुम श्वास से नहीं जी रहे हो, क्योंकि तुम चाहो तो एक क्षण को श्वास को रोक दे सकते हो। जब श्वास नहीं होती, बंद है, तब भी तुम हो। तुम्हारा होना बिना श्वास के भी हो सकता है। फिर अगर तुम इसका अभ्यास करो तो दस मिनट के लिए रोक सकते हो, दस दिन के लिए रोक सकते हो। लोगों ने सालों तक के लिए श्वास रोक दी है। अब तो वैज्ञानिक भी इससे राजी हो गए हैं कि श्वास जीवन का लक्षण नहीं है, सिर्फ जीवन की अभिव्यक्ति है। योगियों ने तो मनोवैज्ञानिकों को तो बड़े संकट में डाल दिया, क्योंकि उनकी परिभाषा डगमगा गई है कि आदमी मर गया, इसको कैसे तय करें। क्योंकि पहले तो निश्चित परिभाषा थीः श्वास बंद हो गई--आदमी मर गया; श्वास की जांच-पड़ताल कर लो-- आदमी मर गया। लेकिन पूरब में, अनेक योगियों ने प्रयोग करके दिखाए जहां कि वे दस मिनट के लिए श्वास बंद कर लेते, बिल्कुल बंद कर लेते। डाक्टर जांच करके कह देता है कि हमारे हिसाब से तो यह आदमी मर गया है। सांस से तो शरीर चल रहा है, जीवन नहीं।
जीवन श्वास से भी गहरा है। श्वास से तो शरीर चल रहा है, जीवन नहीं।
सब सांसों की सांस में। --उसका मतलब है कि सब श्वासों के भीतर भी जो छिपा है जीवन, वहां मैं हूं। वही जीवन सब श्वासों की श्वास है। श्वास शरीर का जीवन है। शरीर टूट जाएगा श्वास के बिना; लेकिन वह पूरी तरह जीवित था। इजिप्त में एक आदमी को अठारह सौ अस्सी में, एक फकीर को जमीन में दफनाया गया--जिंदा। और उसने कहा, चालीस साल बाद मुझे निकालना। जिन्होंने दफनाया था वे सब मर गए। चालीस साल! एक आदमी न बचा गवाह, जो मौजूद था दफनाते वक्त। लोग धीरे-धीरे भूल ही गए। चालीस साल इतना लंबा वक्त है! संयोग की बात थी कि एक आदमी को लायब्रेरी में पढ़ते-पढ़ते एक पुरानी किताब मिल गई, और उसमें उसका उल्लेख था। तो उसने इंतजाम करवाया। उन्नीस सौ बीस में वह कब्र खोदी गई, वह आदमी जिंदा बाहर आया, और तीन साल तक जिंदा रहा, बाद में भी। श्वास शरीर का हिस्सा है। कबीर कहते हैं, सब श्वासों की श्वास में। और परमात्मा को अगर खोजना है तो तुम्हें वहां खोजना होता, जहां श्वास भी निस्स्पंद हो जाती है; विचार भी बंद हो जाते हैं, श्वास भी निस्स्पंद हो जाती है। सब गति शून्य हो जाती है, सब क्रिया लीन हो जाती है; सिर्फ होना मात्र बचता है; सिर्फ तुम होते हो शुद्ध--एक शांत झील की भांति, जिस पर एक भी लहर नहीं; एक शुद्ध दर्पण की भांति, जिस पर एक भी प्रतिबिंब नहीं; एक गहन सन्नाटा, जिसमें सन्नाटे के भी आवाज नहीं--वहां सब श्वासों की श्वास में छिपा है।
जिस दिन अभीप्सा होगी, उसी दिन द्वार खुल जाएंगे। जिस दिन तुम पुकारोगे पूरे प्राण से, उसी दिन द्वार खुल जाएंगे।
जीसस ने कहा है, खटखटाओ--और द्वार खुल जाएंगे। पुकारो, आवाज दो, प्रत्युत्तर मिलेगा। लेकिन तुम पुकारते नहीं। न तुम द्वार खटखटाते हो। तुम बातचीत करते हो। तुम पूछते हो, कैसे खटखटाएं? तुम पूछते हो, कैसे पुकारें? जब बच्चे को भूख लगती है, वह पूछता है किसी से, कैसे पुकारें? किसी बच्चे ने किसी से पूछा? बड़ी हैरानी की बात है। बच्चा पैदा होते से ही, भूख लगती और आवाज देता है, रोता-चिल्लाता है। यह बच्चा कहां सीखा होगा? इसको सीखने की कोई भी तो सुविधा नहीं थी गर्भ में। ये गर्भ से सीधे चले आ रहे हैं और भूख लगी और पुकार देते हैं।
तुम जिस परमात्मा के गर्भ से आए हो, वहीं से तुम पुकार सीखकर आए हो। जिस दिन तुम्हारी अभीप्सा होगी। उसी दिन पुकार उठ जाएगी। एक गहन आवाज तुम्हारे भीतर से उठेगी। उस गहन आवाज में कोई भाषा न होगी। क्योंकि भाषा तो सब सीखी हुई है। उस गहन आवाज का तुम एक ही अनुमान कर सकते हो, बच्चे के रुदन से, जब वह भूखा है। तब तुम रो उठोगे। तुम्हारा रोआं-रोआं उस रोने में सम्मिलित हो जाएगा। तब तुम कुछ कहोगे नहींः तुम्हारा पूरा रोना ही तुम्हारा कहना होगा।
सूफी फकीर कहते हैं कि मत पूछो कि प्रार्थना कैसे करें? क्योंकि अगर किसी ने बता दिया तो तुम सदा के लिए भटक जाओगे। मत पूछो कि प्रार्थना कैसी करें?

वे कहते हैं कि एक भिखारी एक सम्राट के द्वार पर खड़ा था। सम्राट ने उसे देखा और लाकर धन-संपत्ति से उसकी झोली भर दी। उसने कुछ कहा नहीं। और देखने वाले चकित हुए। उन्होंने उस भिखारी को, जब सम्राट वापस चला गया भीतर महल के, पूछा। उसने कहाः कहने को क्या है? मेरा पूरा होना ही असफलता की कथा! अब और कहने को क्या है? मैं सिर्फ खड़ा हो गया वहां। सम्राट ने मुझे देखा। बात खत्म हो गई। कहने को क्या है? और अगर सम्राट अंधा हो और अगर देख न सके तो कहने से भी क्या होगा?
परमात्मा के द्वार पर तुम्हें कुछ गायत्री मंत्र थोड़े ही बोलना है कि अल्लाह-हू-अकबर की आवाज लगानी है। तुम्हारी सीखी कोई प्रार्थना की वहां जरूरत नहीं है; तुम ही वहां प्रार्थना बन कर खड़े हो जाओ। तुम्हारा होना ही तुम्हारी प्रार्थना हो। तुम्हारा रोआं-रोआं प्यासा हो। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में चाह हो--ऐसी चाहत कि शब्द भी छोटे पड़ जाएं। तुम एक लपट की तरह जिस दिन खड़े हो जाओगे; उसी क्षणः
"खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब सांसों की सांस में।।"
"कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
सातवां प्रवचन

मन रे जागत रहिये भाई

सूत्र

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।।

मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।।

मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।
जुगन-जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।।

तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्या खोई रे।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।।

ज्ञान की यात्रा में श्रद्धा के चरण चाहिए। अश्रद्धा तो जंजीरों की तरह हैः बांध लेती है, रोक लेती है। श्रद्धा पंख की भांति हैः मुक्त करती है खुले आकाश में।
लेकिन श्रद्धा बड़ी कठिन घटना है। अश्रद्धा मन के लिए बड़ी सुगम और सरल है; क्योंकि अश्रद्धा भय है, श्रद्धा अभय है।
अश्रद्धा का अर्थ है कि जो मुझे ज्ञात है, बस उतना ही सत्य है, कहीं और जाने की जरूरत नहीं; जो मैंने जान लिया वह काफी है, कुछ और जानने की न तो जरूरत है, न कुछ और जानने को है। इसलिए अश्रद्धा ज्ञात से चिपकने का नाम है, ज्ञात को जकड़ लेने का नाम है।
श्रद्धा अज्ञात में यात्रा हैः जो मैं जानता हूं, वह बहुत ना-कुछ है। जैसे विराट सागर के किनारे और मैंने चुल्लू भर पानी अपने हाथ में ले लिया हो ऐसा है मेरा जानना; और जो शेष है जानने को वह विराट सागर है।
जो मैंने जान लिया है, श्रद्धावान उसे सीढ़ी बनाता है--उसमें उठ जाने की, जो नहीं जाना है। अश्रद्धावान, जो जान लिया है उसे कारागृह बना लेता है, दीवाल बना लेता है--अवरोध के लिए, ताकि वह जो खुला आकाश है अज्ञात का, उससे सुरक्षा हो सके।
साधारणतः अश्रद्धालु समझते हैं कि वे बहुत शक्तिशाली, साहसी हैं। बात बिल्कुल उलटी है। अश्रद्धा कायरता का निचोड़ है; श्रद्धा साहस का नवनीत। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है कि मैं अज्ञात में, अनजान में, बे-पहचाने में, कदम उठाने को राजी हूं। बड़ा साहस चाहिए। और शिष्य होने का कोई और अर्थ नहीं होता है। श्रद्धा में गति बढ़े, श्रद्धा में रस बढ़े, तो ही शिष्यत्व का फूल खिलता है; अन्यथा गुरु और शिष्य के बीच सेतु क्या होगा?
गुरु ऐसे है जैसे आंखें मिल गईं, और शिष्य ऐसे है जैसे अंधा। अंधे और आंखवाले के बीच विवाद क्या हो सकता है? क्योंकि जिसके पास आंखें हैं, उसे प्रकाश के किसी और प्रमाण की कोई जरूरत नहीं। प्रमाण है भी नहीं कोई और। क्या प्रमाण है प्रकाश का, सिवाय तुम्हारी आंखों के? जिसके पास आंखें हैं, उसके लिए प्रकाश स्वयंसिद्ध है। और जिसके पास आंखें नहीं हैं, उसके लिए प्रकाश का अनुमान भी असंभव है। जानना तो दूर, अनुमान करना भी कि प्रकाश जैसी कोई चीज हो सकती है, अंधे के लिए असंभव है। प्रकाश भी दूर, अंधे को अंधेरा भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम शायद सोचते हो कि अंधा तो अंधेरे में जीता हैं। तो तुम गलती में हो। अंधेरे को देखने के लिए भी आंख चाहिए। प्रकाश को देखने के लिए तो आंख चाहिए ही; अंधेरा भी आंख का ही अनुभव है। बिना आंख के अंधेरे का भी कोई पता नहीं चल सकता। अंधे को अंधेरे का भी पता नहीं है। और

प्रकाश के प्रमाण मांगेगा, प्रकाश के लिए तर्क करेगा, तो सदा अपने अंधेपन से बंधा रह जाएगा।
और, प्रकाश को जिसने जान लिया, वह प्रकाश का वर्णन भी नहीं कर सकता, प्रमाण देना तो बहुत दूर है। वह यह भी नहीं कह सकता कि प्रकाश कैसा है।
उसका तो स्वाद ही लिया जाता है। स्वाद से ही उसकी प्रतीति होती है।
आंख वाले के लिए परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं हैं। और जिसके पास आंख नहीं है, उसके लिए परमात्मा को छोड़ कर सभी चीजें सत्य हैं; परमात्मा एकमात्र असत्य है।
तो शिष्य और गुरु के बीच सेतु क्या होगा? कैसे शिष्य और गुरु मिलेंगे? कैसे उनके बीच एक ही दिशा में यात्रा का प्रारंभ होगा। वे कैसे प्रस्थान करेंगे? क्या होगा जोड़?
अगर शिष्य की तरफ विवाद की आकांक्षा हो तो जोड़ नहीं हो सकता। तब वे विपरीत दिशाओं में यात्रा करेंगे। शिष्य की तरफ अगर तर्क का आग्रह हो तो यात्रा असंभव है। क्योंकि वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि उन्हें जाना जा सकता है, लेकिन जानने के पहले उनके लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता।
कुछ वर्ष पहले पहलगांव (कश्मीर) में एक घटना घटी, जो मुझे भूले नहीं भूलती। एक वृक्ष के नीचे बैठा था। ऊंचाई पर वृक्ष में छोटा सा एक घोसला था, और जो घटना उस घोसले में घट रही थी उसे मैं देर तक देखता रहा, क्योंकि वही घटना शिष्य और गुरु के बीच घटती है। कुछ ही दिन पहले अंडा तोड़ कर किसी पक्षी का एक बच्चा बाहर आया होगा, अभी भी वह बहुत छोटा है। उसके माता-पिता दोनों कोशिश कर रहे हैं कि वह घोसले पर पकड़ छोड़ दे और आकाश में उड़े। वे सब उपाय करते हैं। वे दोनों उड़ते हैं आस-पास घोंसले के, ताकि वह देख ले कि देखो हम उड़ सकते हैं, तुम भी उड़ सकते हो।
लेकिन अगर बच्चे को सोच-विचार रहा हो तो बच्चा सोच रहा होगा, तुम उड़ सकते हो, उससे क्या प्रमाण कि हम भी उड़ सकेंगे; तुम तुम हो, हम हम हैं; तुम्हारे पास पंख हैं--माना, लेकिन मेरे पास पंख कहां हैं?
क्योंकि पंखों का पता तो खुले आकाश में उड़ो तभी चलता है; उसके पहले पंखों का पता ही नहीं चल सकता है। कैसे जानोगे कि तुम्हारे पास भी पंख हैं, अगर तुम चले ही नहीं, उड़े ही नहीं?
तो बच्चा बैठा है किनारे घोसले के, पकड़े है घोसले के किनारे को जोर से; देखता है, लेकिन भरोसा नहीं जुटा पाता। मां-बाप लौट आते हैं, फुसलाते हैं, प्यार करते हैं; लेकिन बच्चा भयभीत है। बच्चा घोंसले को पकड़ रखना चाहता है, वह ज्ञात है। वह जाना-माना है। और छोटी जान और इतना बड़ा आकाश! घोसला ठीक है, गरम है, सब तरफ से सुरक्षित है; तूफान भी आ जाए तो भी कोई खतरा नहीं है, भीतर दुबक रहेंगे। सब तरह की कोशिश असफल हो जाती है। बच्चा उड़ने को राजी नहीं है।
यह अश्रद्धालु चित्त की अवस्था है। कोई पुकारता है तुम्हें, आओ खुले आकाश में, तुम अपने घर को नहीं छोड़ पाते। तुम अपने घोसले को पकड़े हो। खुला आकाश बहुत बड़ा है, तुम बहुत छोटे हो। कौन तुम्हें भरोसा दिलाए कि तुम आकाश से बड़े हो? किस तर्क से तुम्हें कोई समझाए कि दो छोटे पंखों के आगे आकाश छोटा है? कौन सा गणित तुम्हें समझा सकेगा? क्योंकि नाप-जोख की बात हो तो पंख छोटे हैं, आकाश बहुत बड़ा है। पर बात नाप-जोख की नहीं है। दो पंखों की सामर्थ्य उड़ने की सामर्थ्य हैः बड़े से बड़े आकाश में उड़ा जा सकता है। और पंख पर भरोसा आ जाए तो आकाश शत्रु जैसा न दिखाई पड़ेगा, स्वतंत्रता जैसा दिखाई पड़ेगा; आकाश मित्र हो जाएगा।
परमात्मा में छलांग लेने से पहले भी वैसा ही भय पकड़ लेता है। गुरु समझाता है, फुसलाता है, डांटता है, डपटता है, सब उपाय करता है--किसी तरह एक बार... ।
जब उन दो पक्षियों ने--मां-बाप ने देखा कि बच्चा उड़ने को राजी नहीं तो आखिरी उपाय किया। दोनों ने उसे धक्का ही दे दिया। बच्चे को ख्याल भी न था कि वे ऐसी क्रूरता कर सकेंगे, कि इतने कठोर हो सकेंगे।

गुरु को कठोर होना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी जड़ता ऐसी है कि तुम्हें धक्के ही न लगें तो तुम आकाश से वंचित ही रह जाओगे। उस कठोरता में करुणा है।
अगर मां-बाप करुणा कर लें तो यह बच्चा सदा के लिए पंगु रह जाएगा। इसकी नियति भटक जाएगा, खो जाएगी, यह सड़ जाएगा उसी घोंसले में। घोंसला घर न रहेगा, कब्र बन जाएगा। और यह बच्चा अपरिचित रह जाएगा अपने स्वभाव से। उस स्वभाव का तो खुले आकाश में उड़ने पर ही एहसास होगा। वह समाधि तो तभी लगेगी जब अपनी क्षुद्रता को यह विराट आकाश में लीन कर सकेगा; जब अपने छोटेपन में यह बड़े से बड़ा भी हो जाएगा। जब इसकी आत्मा परमात्मा जैसी मालूम होने लगेगी, तभी इसकी समाधिस्थ अवस्था होगी।
बच्चे को पता भी नहीं था, समझ भी नहीं थी, ख्याल भी न था, कि यह होगा। धक्का खाते ही वह दो क्षण को खुले आकाश में गिर गया--फड़फड़ाया, घबड़ाया, वापस लौट कर घोसले को और जोर से पकड़ लिया; लेकिन अब उस बच्चे में एक फर्क हो गया, जो उसके चेहरे पर भी देखा जा सकता था। अश्रद्धा खो गई है। पंख हैं। छोटे होंगे। आकाश इतना भयभीत नहीं करने वाला है जितना अब तक कर रहा था। और एक क्षण को उसने खुले आकाश में श्वास ले ली। अब अश्रद्धा नहीं है। थोड़ी देर में धक्के की अशांति चली गई, कंपन खो गया। मां-बाप उसे बड़ा प्यार दे रहे हैं, थपथपा रहे हैं, चोचों से सहला रहे हैं, उसे आश्वस्त कर रहे हैं कि वह अपने अनुभव को पी जाए। उसे अपने पंखों की समझ आ गई। वह पंख फड़फड़ाता है बीच-बीच में। अब पहली दफा उसे पता चला कि उसके पास पंख हैं, वह भी उड़ सकता है। फिर घड़ी भर बाद मां-बाप उड़े और बच्चा उनके साथ हो लिया।
ठीक यही घटना घटती है हर शिष्य और हर गुरु के बीच; और सदा से घटी है, और सदा ऐसे ही घटेगी। किसी न किसी तरह गुरु को शिष्य की अश्रद्धा को तोड़ना है; किसी न किसी तरह शिष्य को यह भरोसा दिलाना है कि उसके पास पंख हैं और आकाश छोटा है।
और उड़े बिना जीवन में कोई गति नहीं है। रोज-रोज उड़ना है। रोज-रोज अतीत
का घोंसला छोड़ना है। रोज-रोज जो जान लिया, उसकी पकड़ छोड़ देनी है, और जो नहीं जाना है उसमें यात्रा करनी है। सतत है यात्रा। अनंत है यात्रा। कहीं भी ठहर नहीं जाना है। पड़ाव भले कर लेना, घर कहीं मत बनाना। यही मेरी संन्यास की परिभाषा है।
पड़ाव-ठीक। रात अंधेरा हो जाए, घोसले में विश्राम कर लेना, लेकिन खुले आकाश की यात्रा बंद मत करना। रुकना, लेकिन रुक ही मत जाना। रुकना सिर्फ इसलिए ताकि शक्ति पुनः लौट आए, तुम ताजे हो जाओ, सुबह फिर यात्रा हो सकेगी। बस ज्ञान पर उतना ही पड़ाव करना कि अज्ञात में जाने की क्षमता अक्षुण्ण हो जाए। ज्ञानी मत बनना। ज्ञानी बने तो घोंसला पकड़ गया। वही तो पंडित की परेशानी हैः जो भी जान लेता है, उसको पकड़ लेता है। उसको पकड़ने के कारण हाथ भर जाते हैं; और जो बहुत जानने को शेष था वह शेष ही रह जाता है। जानना और छोड़ना। जानना और छोड़ना।
कहावत हैः नेकी कर और कुएं में डाल। ठीक वैसा ही ज्ञान के साथ भी करना। जानो, कुएं में डालो। तुम सदा अज्ञात की यात्रा पर बने रहना। तो ही एक दिन उस चिरंतन से मिलन होगा। क्योंकि वह चिरंतन अज्ञात ही नहीं, अज्ञेय है।
ये तीन शब्द ठीक से समझ लेना। ज्ञात तो वह है जो तुमने जान लिया। अज्ञात वह है जो तुम कभी न कभी जान लोगे। अज्ञेय वह है जिसे तुम कभी न जान सकोगे। उसको तो स्वाद ही लेना होगा। उसे तो जीना ही होगा। जानने जैसी दूरी उसके साथ नहीं चल सकती। उसके साथ तो एक ही हो जाना होगा। उसके साथ तो डूबना होगा। वह तो मिलन है, ज्ञान नहीं। वहां तो तुम और उसको होना अलग न रह जाएगा। वहां तुम जानने वाले न रहोगे; वहां तुम उसी के साथ एक हो जाओगे।
उस परम घड़ी को लाने के लिए, ज्ञात को छोड़ना है, अज्ञात में यात्रा करनी है। और जब तुम अज्ञात की यात्रा में कुशल हो जाओगे, तब तुम्हें गुरु आखिरी धक्का देगा कि अब अज्ञात को भी छोड़ देता है और अज्ञात की यात्रा पर निकल जाता है, वह संन्यस्त। और अज्ञात को भी जो छोड़ देता है और अज्ञेय में लीन

हो जाता है, वह सिद्ध। फिर कुछ और पाने को नहीं बचता। पाने वाला ही खो गया, तो अब पाने को क्या कुछ बचेगा?
ये कबीर के पद, ये वचन शिष्य और गुरु के बीच सेतु बनाने के लिए बड़े महत्वपूर्ण हैं। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करें।
मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
कबीर शिष्य से कह रहे हैं कि मेरा और तेरा होना एक कैसे हो? और जब तक
एक न हो, तब तक गुरु जो भी बताए वह बाहर ही बाहर होगा। तुम उससे सीख लोगे शब्द, सिद्धांत; पर गुरु जो वस्तुतः देना चाहता था, तुम उससे वंचित रह जाओगे।
बहुत मेरे पास भी मित्र आ जाते हैं जो थोड़ा सा ज्ञान अर्जित करके संतुष्ट हो जाएंगे।
ज्ञान तो कूड़ा-कचरा है; उससे संतुष्ट मत हो जाना। जीवन चाहिए! ज्ञान
से क्या होगा? जान लो कितना ही परमात्मा के संबंध में--क्या सार है? ऐसे ही जैसे भूखा कितना ही जान ले भोजन के संबंध में, सारा पाकशास्त्र कंठस्थ कर ले--क्या होगा? पूरा पाकशास्त्र भी तो एक जून की भूख नहीं मिटा सकता।
वेद पाकशास्त्र हैं। उपनिषद, गीता पाकशास्त्र हैं। उनमें भोजन की चर्चा है; वहां भोजन नहीं है। चचों में कहीं भोजन होता है?
मैं तुमसे कुछ कहता हूं--उसमें भोजन नहीं है; वह जो कहता हूं, वह तो केवल इशारा है। वह तो केवल इशारा है--उस तरफ, जहां भोजन है। तुम उससे ही तृप्त मत हो जाना। तुम इशारे को सम्हाल कर मत रख लेना। उसको संपदा मत समझ लेना। मैं जो कहूं, उसे तो भूल जाना; मैं जिस तरफ इशारा कर रहा हूं, उस तरफ की यात्रा पर निकल जाना। मुझे सुन कर भी तुम पंडित हो सकते हो--तब तुम चूक गए; तब तुम सरोवर के किनारे थे और प्यासे ही लौट गए; सरोवर के किनारे थे और पानी के संबंध में जानकर लौट गए, और पानी को न पीया।
परमात्मा के संबंध में जानने का कुछ भी तो सार नहीं। कोरे शब्द हवा में बने बबूले हैं। उनमें कुछ भी नहीं है। लेकिन वे महत्वपूर्ण मालूम होते हैं, क्योंकि अहंकार को भरते हैं। थोड़ा ज्यादा जान लिया, थोड़ी संपदा और भीतर धन की, शब्दों की इकट्ठी हो गई--अकड़ और बढ़ जाती है।
अहंकार पंडित होना चाहता है, प्रज्ञावान नहीं। अहंकार संग्रह करना चाहता है, समर्पण नहीं। अहंकार खोना नहीं चाहता, बचना चाहता है। और तुम जब तक खोओगे नहीं, तब तक तुम्हारे बचने का कोई भी उपाय नहीं।
तो कबीर कहते हैंः "मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे।" हो कैसे यह घटना
कि मेरा-तेरा मन एक हो जाए? क्योंकि तू सब तरह की अड़चनें खड़ी कर रहा है। शिष्य अड़चनें खड़ी करता है। पहले तो वह विवाद खड़ा करता है। पहले तो वह कहता है, सिद्ध करो; जब तक सिद्ध न करोगे, मानेंगे कैसे? हमें कोई अंधा समझा है? हम कोई अंधे अनुयायी हैं? हम तो सोच-विचार करके चलेंगे।
सोच-विचार ही तुम्हारे पास होता तो गुरु की कोई जरूरत न थी। तुम सोच-विचार में ही समर्थ होते तो तुम अपने ही पैर यात्रा कर लेते, किसी के सहारे की जरूरत नहीं थी।
और तुम कहते हो, हम अंधे थोड़े ही हैं? अंधे तुम हो; बड़े गहन रूप से अंधे हो। और यह अंधापन कोई आंखों का ही नहीं है, भीतर की आंखों का है। यह अंधापन आध्यात्मिक है। और इस अंधेपन में तुम जिद्द करो, विवाद करो--तुम किस चीज को बचाने के लिए विवाद कर रहे हो? तुम्हारे पास कुछ भी तो नहीं है। अगर तुमने ज्यादा विवाद किया, ज्यादा तर्क का सहारा लिया--अपने अंधेपन को ही बचा लोगे, और तुम्हारे पास बचाने को कुछ भी नहीं है।
विचार तुम्हारे पास हैं नहींः विचारों की भीड़ है, विचार नहीं हैं। विचार क्षमता का नाम है, विचारों की भीड़ का नाम नहीं है। तुम्हारे पास विचार तो बहुत हैं। तुम्हारी खोपड़ी एक बाजार है, जहां हजारों तरह के विचार हैं; लेकिन विचार नहीं है। विचार का अर्थ होता हैः जानने की क्षमता। और ये जो विचार हैं जिनको तुम अपने कह रहे हो, कोई भी तुम्हारे पास नहीं हैं, सब उधार हैं। न मालूम कहां-कहां की झूठन तुमने इकट्ठी कर रखी है। और उन पर तुम इतरा रहे हो। कूड़ाघर पर बैठ कर तुम सिंहासन समझ रहे हो। इनमें से एक भी विचार तुम्हारा नहीं है। बचाओगे क्या? विवाद क्या करना है?

ज्यादा विवाद और तर्क तुम्हें तुम्हारे गुरु से दूरी पर रख देगा।
इसमें गुरु कुछ नहीं खो रहा है। वहां तो पाने-खोने को कुछ बचा नहीं।
तुम्हीं खो रहे हो।
यह तो ऐसे ही है, जैसा बुद्ध ने कहा है कि किसी गांव में ऐसा हुआ कि एक आदमी को तीर लग गया। भूल से लग गया। जंगल से गुजरता था शिकारी, उसका तीर लग गया। फेंका तो किसी जानवर की तरफ गया था, आदमी बीच में आ गया। पर आदमी कोई साधारण आदमी न था, विवादी था, दार्शनिक था, बड़ा तर्कनिष्ठ था। भीड़ इकट्ठी हो गई, लोग उसका तीर निकालना चाहते हैं। गांव का वैद्य आ गया। पर उसने कहा कि ठहरो, पहले यह पक्का हो जाए कि तीर किसने मारा? क्यों मारा? तीर विष-बुझा है या साधारण है, घातक है या मैं बच सकूंगा? तीर मत निकालो अभी। पहले सब तय हो जाए। और वह मायावादी दार्शनिक था। उसने कहा कि पहले यह भी पक्का हो जाए कि तीर है भी? क्योंकि ज्ञानियों ने कहा है, संसार माया है। जब पूरा संसार ही स्वप्नवत है तो तीर स्वप्न में लगा है या यथार्थ में?
बुद्ध उस गांव से निकलते थे। वे भी उस भीड़ में खड़े थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, ठीक से सुन लो उसकी बात। यही तुम्हारी दशा है। यह नासमझ, यह सब चर्चा बाद में कर ले तो अच्छा है; पहले तीर निकल जाने दे। मगर इसका कहना भी ठीक है कि अगर तीर है ही नहीं तो निकालोगे क्या? यह पहले सब जान लेना चाहता है, तब तीर को निकालने देगा। और इसे पता ही नहीं कि इस बीच, इस जानकारी में यह समाप्त हो जाएगा और तीर कभी न निकलेगा।
बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, ऐसा ही दुख का तीर तुम्हारे जीवन में लगा है। मैं तुमसे कहता हूं कि निकाल लेने दो। तुम कहते हो, दुख क्या है? है भी? सुख मिल सकता है? कोई संभावना? कभी किसी को मिला है कि सब कपोलकल्पना है? तुम पूछते हो, दुख कहां से आया? क्यों आया? हम दुखी क्यों हैं? परमात्मा ने दुख क्यों बनाया? और जो दुख बनाता है, वह परमात्मा कैसा है? तुम पूछते हो, दुख स्वप्न है या सत्य है। और बुद्ध ने कहा, मैं उस वैद्य की तरह हूं जो तुमसे प्रार्थना कर रहा है कि तीर निकाल लेने दो, फिर पीछे समय बहुत है, तब तुम चर्चा कर लेना। लेकिन तुम कहते हो, पहले सब साफ हो जाए, तब तीर निकालने देंगे। तब तुम मर जाओगे, तीर न निकल पाएगा।
और बुद्ध ने यह भी कहा, और मैं जानता हूं कि एक दफा तीर निकल जाए, फिर कोई तीर के संबंध में चर्चा नहीं करता। बात ही खत्म हो गई।
गुरु कहता है, तुम्हारी अज्ञान की अवस्था को बदल देने दो... । तुम कहते हो, पहले सब निर्णय हो जाए, पहले सब तर्क से सिद्ध हो जाए, सब प्रमाण मिल जाएं, साक्षी, गवाहियां जुटा ली जाएं--तभी मैं आगे बढूंगा। मैं कोई अंधा अनुयायी नहीं हूं; मैं सोच-विचारवाला आदमी हूं।
तब तुम ऐसे ही खो जाओगे। तब सरोवर निकट था; लेकिन सरोवर असमर्थ था, क्योंकि तुमने अंजुलि ही न बांधी। सरोवर निकट था, तुम्हारी प्यास बुझाने को तत्पर था, आतुर था; लेकिन तुम झुककर अंजुलि बांधकर सरोवर से पानी लेने को तैयार न हुए। तुम प्यासे ही मर जाओगे। ऐसे ही बहुत बार तुम मरे हो। ऐसे ही बहुत बार तुम विवाद में जीये हो।
और अज्ञान बड़ा विवादी है। ज्ञान तो निर्विवाद है। वहां कोई विवाद नहीं है। अज्ञान बड़ा विवादी है। विवाद अज्ञान की रक्षा का उपाय है। अज्ञान अपनी रक्षा करता है।
"मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।।"
और बहुत कठिनाई है। कबीर कहते हैं, हम आंख की देखी बात कर रहे हैं, तुम कागज की लिखी बात कर रहे हो। तुमने वेद पढ़ लिए, अब तुम वेद से भरे हो। तुमने गीता पढ़ ली, अब गीता के श्लोक तुम्हारी खोपड़ी में घूम रहे हैं। तुम कुरान कंठस्थ किए हो। और इन कागज पर लिखी बातों के सहारे तुम आंख वाले के पास विवाद करने पहुंच जाते हो। कुछ उसकी हानि नहीं। करो मजे से--तुम्हारी मौज है। लेकिन वह देखता है कि तीर चुभा है तुम्हारे जीवन में। जहर उसका फैलता जाता है प्रतिपल। तुम्हारा चून उसके जहर को तुम्हारे पूरे शरीर में दौड़ा रहा है। तुम जल्दी ही चुक जाओगे। और ये कागज की लिखी बातें कुछ भी सहारा न बनेंगी।

तुम मर रहे हो प्रतिपल, क्योंकि मौत किसी भी क्षण आ सकती है। और तुम किताबों में बड़े कुशल हो गए हो।
एक मित्र मेरे पास आए। कहने लगे, और सब ठीक है; वेद के संबंध में आपका क्या ख्याल है? वेद का क्या करोगे? उसके संबंध में ख्याल का भी क्या करोगे? नहीं, कहने लगे, मैं आर्यसमाजी हूं और अब तक यह साफ न हो जाए कि वेद के संबंध में आपकी क्या दृष्टि है, तब तक मेरा और आपका कोई तालमेल नहीं हो सकता। अगर आप वेद से राजी हैं तो सब ठीक है। लेकिन मैंने सुना है, आप वेद से राजी नहीं हैं।
मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।
सिद्धांत भारी हैं लोगों के मन पर। बड़ी गहन पकड़ है उनकी। और उन सिद्धांतों में है क्या?
मैंने उनसे कहा कि, अगर वेद को पढ़ कर, जान कर आप कहीं पहुंच गए, तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं। बात खत्म हो गई। अगर वेद आपकी नाव बन गया तो ठीक है। लेकिन कागज की नाव से कभी कोई पार नहीं हुआ। फिर कागज की नाव चाहे वेद की हो, चाहे कुरान की, चाहे बाइबिल की, चाहे गीता की, चाहे मेरी किताबों की--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। नाव कागज की है--डूबेगी।
उन्होंने कहा, और किताबें और हैं, वेद की बात और है। वेद तो स्वयं परमेश्वर ने रचा है। वही कुरान का मानने वाला भी कहता है। वही बाइबिल का मानने वाला भी कहता है। जिस किताब में भी तुम्हें डूब मरना हो, जिस किताब की भी नाव बनानी हो, उसी किताब के मानने वाले यही कहते हैं कि यह परमात्मा की रची हुई है। लेकिन शब्द की नाव से कब कौन पार हुआ है? नाव तो निःशब्द की चाहिए। नाव तो अनुभव की चाहिए, सिद्धांतों की नहीं। लेकिन अनुभव कीमती चीज है। जीवन से चुकाना पड़ता है मूल्य। वेद तो बाजार से खरीद लाओ, सस्ता मिलता है। और वेद के तो तुम जो भी अर्थ करना चाहो, कर लो; अर्थ तो तुम ही करोगे? वेद तो कुछ तुम्हें रोक न सकेगा कि यह अर्थ मेरा नहीं है। इसलिए वेद को थोड़े ही तुम पढ़ते हो; पढ़ते तो तुम अपने ही अर्थ को हो--वेद में पढ़ते हो। पढ़ते तुम अपने ही अर्थ को हो; वेद का तो बहाना है। अपने ही अज्ञान को तुम वहां से भी सुरक्षित करते हो।
ध्यान रहे, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है--ऐसी जब तुम्हें प्रतीति हो, ऐसा जब तुम पाओ कि दीन-हीन, कि न कोई ज्ञान है, न कोई प्रेम है, जीवन में कुछ भी नहीं है, पाओ तो बिल्कुल रिक्त--तभी तुम गुरु के पास आने के योग्य हो पाओगे। क्योंकि अगर तुम अपने से भरे हो, तो गुरु तुममें कैसे भर सकेगा? तुम जब खाली आओगे, खाली और नग्न, निर्वस्त्रः सब वस्त्र सिद्धांतों के, शास्त्रों के छोड़ कर आओगे; तुम ऐसे आओगे, जैसे छोटा बच्चा आता है, बिना किसी धारणा के, निर्धारणा में--तभी तुम गुरु से मिल सकोगे। और गुरु जीवित शास्त्र है; मुर्दा शास्त्रों को लेकर तुम गुरु के पास मत आना। क्योंकि गुरु खुद ही वेद है; गुरु खुद ही गीता है--और जीवंत है। गुरु का अर्थ ही इतना हैः जिसमें धर्म फिर से पुनरुज्जीवित हुआ है; जिससे परमात्मा फिर से बोला है; जिसकी बांसुरी को परमात्मा ने फिर अपने होठों पर रखा है। तुम पुराने गीत लेकर आते हो, जो बासे हो चुके, और सदियों में जिन पर धूल जम गई, और सदियों में आदमियों के हाथ चलते-चलते जो बहुत दिन चले हुए नोट की तरह गंदे हो गए। ताजा बरसता हो वहां तुम बासे को लेकर आते हो? जहां सद्यःस्नात सत्य जन्म रहा हो, वहां तुम सिद्धांतों और शास्त्रों की सड़ी-गली बातों को लेकर आते हो। ये बातें भी सड़-गल जाएंगी। और मुझे पक्का पता है कि, लोग इन बातों को लेकर भी दूसरे गुरुओं के पास जाएंगे, जो जीवित होंगे। वही भूल होगी, जो अभी हो रही है। वही भूल सदा होती जाती है।
बुद्ध के लोग वेद की बात लेकर जाते थे, चूंकि बुद्ध ने वेद का समर्थन नहीं किया। और कोई बुद्ध कभी किसी वेद का समर्थन नहीं करेगा। यह कोई वेद का विरोध नहीं है; यह तो सिर्फ एक छोटी सीधी सी बात है कि जीवंत सत्य मरे हुए शब्दों का समर्थन नहीं करेगा। अगर आज बुद्ध हों, तो खुद अपनी ही वचनों को, धम्मपद में जो वचन उन्होंने कहा, उनको भी वे उसी तरह इंकार कर देंगे, जिस तरह उन्होंने वेद के वचन इनकार कर दिए। सवाल वेद का नहीं है; सवाल किताब और जीवंतता का है।

कबीर कहते हैंः "मैं कहता हौं आंखन देखी, तू कागद की लेखी रे।"
मेल कैसे हो? ऐसा शिष्य अगर गुरु के पास आ भी जाए, तो कितना ही पास रहे, मेल नहीं हो पाता। वह ऐसा होता है जैसे रेल की पटरियां पास-पास होती हैं दोनों, मगर समानांतर, कहीं मिलती नहींः एक कागज से उलझा, एक जीवन जी रहा। कागज और जीवन में क्या संबंध? --समानांनतर! शास्त्र और सत्य समानांतर रेखाएं हैं, जो कहीं नहीं मिलतीं--बस रेल की पटरियां हैं। पास ही बनी रहती हैं, चार फीट का फासला है; लेकिन वह फासला पूरा नहीं हो पाता। और तुम्हें अगर कहीं मिलती दिखाई पड़ती हों तो समझना कि वह भ्रम है। बहुत दूर, अगर तुम देखोगे, तो क्षितिज पर रेल की पटरियां मिलती हुई मालूम पड़ती हैं। बस वे मालूम पड़ती हैं; अगर तुम जाओगे, वहां भी तुम पाओगे, वही चार फीट का फासला है। वे कहीं मिलती नहीं। समानांतर रेखाएं कहीं मिलती ही नहीं।
और कबीर यही कह रहे हैं कि आंख की देखी बात और कागज की लिखी बात समानांतर रेखाएं हैं। मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होइ रे।
"मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ अरुझाई रे।"
मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं, और तू और उलझाए चला जा रहा है।
सिद्धांत सुलझाते नहीं, उलझाते हैं; क्योंकि एक सिद्धांत दस प्रश्न खड़े करता है। एक प्रश्न का उत्तर अगर तुमने किताब से चुन लिया, तो वह उत्तर हजार नये प्रश्न खड़े कर देता है।
जीवन में समाधान है। किताबों में प्रश्न हैं, उत्तर हैं, उत्तरों से पैदा हुए नये प्रश्न हैं। इसलिए हर किताब और किताबों को जन्म देती है। जैसे आदमी बच्चों को जन्म देते हैं, वैसे किताबें किताबों को जन्म देती हैंः क्योंकि एक किताब प्रश्न उठा देती है, अब दूसरी किताब उत्तर देती है; उत्तर से और प्रश्न उठते हैं--तीसरी किताब की जरूरत हो जाती है। तो सातत्य बना रहता है।
हजारों टीकाएं हैं गीता पर। क्योंकि गीता कोई प्रश्नों का हल नहीं कर सकती। और जो भी हल देती है, उन पर नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं; उनका उत्तर देना पड़ता है। फिर हर टीका पर टीकाएं हैं। और टीकाओं पर टीकाओं पर भी टीकाएं हैं--सिलसिला जारी है। उसमें कोई अंत नहीं हो सकता। वह जारी रहेगा। शब्द किसी प्रश्न का हल करते ही नहीं। हल तो बहुत दूर है, शब्द प्रश्न
को छू भी नहीं पाते। क्योंकि प्रश्न तो उठता है जीवन से, और उत्तर आता है किताब से--समानांतर।
जीवन में दुख है। तुमने दुख को जाना है। तुमने दुख के आंसू बहाए हैं। दुख में तुम्हारा हृदय.जार-.जार रोया है। दुख में तुम्हारे रोएं-रोएं ने तड़फन अनुभव की है। यह दुख तो आया जीवन से, अब तुम जाते हो किताब में उत्तर लेने कि दुख क्यों है? किताब कहती है, पिछले जन्मों के कर्म के कारण। लेकिन सवाल यह है कि पिछले जन्मों में दुख क्यों था? वह और पिछले जन्मों के कर्म के कारण! लेकिन तब सवाल उठता है कि पहला जब जन्म हुआ होगा, तब कहां से दुख आया? तब किताब कहती है, सब भगवान की लीला है। पहले ही कह देते, इतनी देर क्यों लगाई? भगवान की लीला से कुछ हल होता है? फिर तुम वहीं के वहीं आ गए।
जीवन का दुख भीतर है। भगवान की लीला से क्या हल होता है? और भगवान क्या कोई दुष्ट पर-पीड़क, कोई महा हिटलर की भांति है कि लोगों को सता रहा है, इसमें लीला ले रहा है? लोग कष्ट पा रहे हैं तो भगवान क्या उन बच्चों की तरह है जो मेढकों को सताते हैं? अगर उनसे पूछो, तो वे कहते हैं, खेल रहे हैं। आदमियों को भगवान सता रहा है, दुखी कर रहा है? यह उसकी लीला है? तो भगवान के दिमाग को इलाज की जरूरत है। वह सैडिस्ट मालूम होता है, दुखवादी मालूम होता है, दुष्ट मालूम होता है। मस्तिष्क उसका ठीक नहीं है।
लेकिन ये किताब से आने वाले उत्तर सब ऐसे ही होंगे। थोड़ी-बहुत देर किताब में तुम उलझ जाओ, बस इतना ही है। जैसे ही लौट कर आओगे, पाओगे कि दुख तो अपनी जगह खड़ा है, किताब हल नहीं कर पाती। और इसे जान लेने से भी कि पिछले जन्मों के कारण दुख हैं, दुख मिटेगा नहीं। इसे भी जान लेने से कि परमात्मा की लीला है, दुख मिटेगा नहीं, दुख तो रहेगा।

दुख मिटेगा ध्यान से, विचार से नहीं। और ध्यान की यात्रा बड़ी अलग है।
वह कागज में लिखी हुई यात्रा नहीं है; वह आंखों से देखने की यात्रा है। ध्यान का अर्थ हैः दृष्टि का आभिर्वाव। ध्यान का अर्थ हैः तुम्हारा जाग जाना। वहां मिटेगा दुख; और वहां सब समाधान हो जाएगा। और असली सवाल यह नहीं है कि दुख कहां से आया है; असली सवाल यह है कि दुख कैसे मिटे?
जब तुम किसी बीमारी से ग्रस्त होते हो, तो तुम चिकित्सक से यह नहीं पूछते कि बीमारी कहां से आई, क्यों आई, जिस बैक्टीरिया की वजह से बीमारी पैदा हुई, वह कहां से आया? क्यों आया, भगवान ने बैक्टीरिया बनाए क्यों टी.बी. और कैंसर के? इनके बिना बनाए न चल सकता था? सिर्फ फूल और तितलियों से काम नहीं चल सकता था? नहीं, तब तुम इसकी चिंता नहीं करते। तुम चिकित्सक से कहते हो, इस फिकर में पड़ो ही मत। तुम मेरा इलाज करो। दुख कैसे जाए, तुम यह पूछते हो।
किताब के साथ बंधा हुआ आदमी हमेशा पूछता है, दुख कहां से आया? और सदगुरु बताता है कि दुख कैसे जाए?
बुद्ध ने कहा है, तुम मुझसे पूछो मत कि परमात्मा है या नहीं। तुम मुझसे इतना ही पूछो कि दुख कैसे जाए। जब दुख चला जाएगा, तब तुम जान लोगे कि परमात्मा है या नहीं। उस दुख-निरोध की अवस्था में तुम्हारी आंखें साफ होंगी, आंसू सूख गए होंगे। जीवन की पीड़ा तिरोहित हो गई होगी। स्वास्थ्य की मगनता उठेगी भीतर--एक ललक की भांति। तुम्हारा जीवन एक उत्सव बन जाएगा। उस उत्सव में तुम जान पाओगे कि परमात्मा की लीला क्या है। दुख में कहीं कोई जान सकता है लीला को? उत्सव में, आनंद की अवस्था में, जब तुम नाच उठोगे, तभी... ।
तो बुद्ध कहते हैं, मत पूछो ईश्वर; मत पूछो, किसने दुनिया बनाई? ... व्यर्थ की बातें हैं। दार्शनिकों को करने दो यह व्यर्थ की बकवास।
मैं कहता सुरझावनहारी... । कबीर कहते हैं, मैं सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं कि दुख कैसे जाए, अंधेरा कैसे मिटे, अंधापन कैसे मिटे; तू राख्यो अरुझाई रे--तू ऐसे सवाल उठाता है कि चीजें और उलझ जाती हैं।
इस बात को बहुत ठीक से समझ लेना, क्योंकि यही तुम्हारे और मेरे बीच भी
घट रहा है। मेरी सारी चेष्टा है कि तुम कैसे सुलझ जाओ। लेकिन तुम सब तरह के प्रतिरोध खड़े करते हो। तुम सब तरह की बाधाएं डालते हो। निश्चित ही तुम्हें पता नहीं है, तुम क्या कर रहे हो; अन्यथा तुम क्यों करते? तुम सब तरह की बाधाएं डालते हो।
एक मित्र कुछ दिन पहले आए। उन्होंने कहा, यह ध्यान जो आप करवा रहे हैं, मैंने करके देखा--शांति मिलती है, बड़ा अच्छा लगता है; लेकिन जैन-धर्म में इसका उल्लेख कहीं नहीं है। तुम्हें शांति मिलती है, तो जैन-धर्म में कहीं उल्लेख नहीं है--उस उल्लेख को चाटोगे? उस उल्लेख का करना क्या है? नहीं, तो उन्होंने कहा कि मैं तो जैन-धर्म का अनुयायी हूं, तो थोड़ा शक होता है; क्योंकि अगर यह ध्यान ठीक होता, तो महावीर स्वामी ने कहीं न कहीं उल्लेख तो किया होता। सब शास्त्र देख डाले, मगर इसका कहीं उल्लेख नहीं है। इसलिए ध्यान करना बंद कर दिया है।
शांति पर भरोसा नहीं है। अपनी ही शांति पर भरोसा नहीं है। अपने अनुभव
पर भरोसा नहीं है। आदमी कितनी गहन मूढ़ता में रहता है। वह महावीर ने क्यों नहीं कहा--वह उलझा रहा है मामले को। और चूंकि महावीर ने नहीं कहा, इसलिए जरूर कहीं कोई न कोई गड़बड़ होगी। और महावीर ने कुछ ठेका लिया है सब कुछ कह जाने का? ये सज्जन उनको भी मिल जाएं, तो वे भी अपना सिर पीट लें। महावीर ने जो भी कहा है, उसकी सीमा है; कहने की सीमा है। अनकहा बहुत रह गया है, जो कभी न चुकेगा। सदगुरु आते रहेंगे, कहते रहेंगे और अनकहा सदा बाकी रहेगा। यह सागर बड़ा है। इसमें महावीर भर लाए थोड़ा सा पानी अपने पात्र में, उससे कोई सागर थोड़े ही चुक जाता है?
तुम प्यासे मर रहे हो; लेकिन तुम कहते हो, यह जो जल आप बता रहे हैं, यह महावीर की गगरी में नहीं है। तुम्हें प्यास की फिकर है? नहीं, लेकिन लोग बड़े... ।

बड़ी हैरानी की घटना है यह कि तुम अपनी अशांति को टूटने नहीं देते, अपने दुख को टूटने नहीं देते, तुम अपनी भटकन को मिटने नहीं देते। तुम उलझाए चले जाते हो। अजीब-अजीब प्रश्न लेकर लोग उलझते हैं। और अगर उनकी तरफ तुम देखो तो वे बड़े गंभीर मालूम पड़ते हैं। उनको होश भी नहीं कि वे क्या कर रहे हैं, इसलिए ये बातें उठा रहे हैं।
आदमी बिल्कुल बेहोश है।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरुझाई रे। मैं कहता तू जागत रहियो,
तू रहता है सोई रे। कबीर कहते हैं कि सारी शिक्षाओं की शिक्षा तो एक ही है कि तुम जागते रहो, मगर तुम सो-सो जाते हो। तुम हजारा बहाने खोज लेते हो सोने के।
जीसस, आखिरी रात, जिस दिन उन्हें फांसी लगने वाली है, उसकी एक रात पहले, अपने शिष्यों को इकट्ठा किए एक बगीचे में, और उन्होंने कहा कि मैं आखिरी प्रार्थना कर लूं, तुम जागते रहना। यह रात आखिरी है। और यह ईश्वर का बेटा फिर दुबारा तुम्हारे साथ प्रार्थना करने को नहीं होगा।
जीसस ने प्रार्थना की, घड़ी भर बाद वे वापस आए, देखा, सारे शिष्य सो रहे हैं। उन्होंने जगाया। उन्होंने कहा, यह आखिरी रात... । उन्होंने कहाः क्या करें? दिन भर के थके मांदे हैं, झपकी लग गई। अब फिर कोशिश करेंगे। जीसस फिर घड़ी भर बाद प्रार्थना से आंख खोले; देखा, वे सब फिर घुर्रा रहे हैं।
क्या हो गया?
उन्होंने कहा, कोशिश तो करते हैं, नींद आ-आ जाती है। कोशिश करते ही नहीं हैं। वह भी बहाना है। वह भी सिर्फ तरकीब है। अगर तुम कोशिश करो, तो नींद कैसे आ जाएगी? अगर तुम कोशिश करो तो नींद तो आ नहीं सकती। अगर ठीक से समझो तो जिन लोगों को नींद नहीं आती, उनको इसलिए नहीं आती कि वे कुछ कोशिश करते हैं नींद को लाने की। सौ में निन्यानबे आदमी जिनको रात में नींद नहीं आती, उनका कुल कारण इतना होता है कि वे नींद को आने नहीं देते--कोशिश के कारण। वे कोशिश करते हैं। कोई गायत्री-मंत्र पढ़ता है, कोई कुछ करता है, कोई करवट बदलता है, सोचता है नींद आ जाए आंख बंद करता है, सोचता है नींद आ रही है, वह नहीं आती है। नींद को लाने के लिए कोशिश की जरूरत ही नहीं है। नींद तो आती ही तब है जब कोई कोशिश नहीं होती। क्योंकि कोशिश जगाती है। कोशिश और नींद विरोधी हैं।
तो शिष्य कह रहे हैं, कोशिश तो हम करते हैं। लेकिन वह कोशिश झूठी है।
वे करते नहीं हैं, या वे अपने को समझाते हैं कि हम कोशिश तो कर रहे हैं। लेकिन वह कोशिश कुनकुनी है। ऐसा थोड़ा सा करते हैं कि जब जीसस कहते हैं तो कर लो। वस्तुतः उन्हें भरोसा नहीं है कि यह आखिरी रात है। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि कल जीसस विदा हो जाएंगे। उन्हें यह भी भरोसा नहीं है कि प्रार्थना में कोई सार है। श्रद्धा नहीं है।
जब जीसस उनसे विदा होते हैं तो उनमें से एक शिष्य कहता है कि चाहे कुछ
भी हो जाए, सदा ही मैं तुम्हारे साथ रहूंगा। जीसस ने कहा, तू इस तरह की बातें मत कर, क्योंकि मुर्गे के बांग देने के पहले तू तीन दफे मुझे इनकार कर चुका होगा। आधी रात जा चुकी है। मुर्गे को बांग देने में ज्यादा देर नहीं है। लेकिन उस शिष्य ने कहा कि, नहीं, मेरी भक्ति अटूप है। मेरी श्रद्धा अपार है। मैं कभी आपको इनकार न करूंगा। फिर जीसस पकड़ लिए गए। दुश्मन की भीड़ उन्हें ले जाने लगी। वह शिष्य भी पीछे-पीछे भीड़ में साथ हो लिया कि देखें, क्या होता है। बाकी शिष्य तो भाग गए। वह एक साथ हो लिया। मशालों की रोशनी में भीड़ ने अनुभव किया कि कोई एक अजनबी साथ है, तो उसको पकड़ लिया और कहा कि तू कौन है? क्या तू जीसस का साथी है? उसने कहा कि नहीं, मैं तो उनको जानता ही नहीं। कौन जीसस? जीसस ने पीछे मुड़कर कहा कि देख, अभी मुर्गे ने बांग भी नहीं दी। अभी रात बहुत बाकी है।
शिष्य और गुरु के बीच कौन-सी घटना घटे ताकि सेतु बन जाए। वह घटना है जागरण की। गुरु जागा है, जैसे हिमालय के उत्तुंग शिखर पर है उसका जागरण। तुम सोए हो--गहन अंधेरी घाटी में। फासला बहुत है। गुरु कुछ कहता है, तुम्हारी नींद में तुम कुछ और अर्थ लेते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और समझते हो। गुरु कुछ और कहता है, तुम कुछ और व्याख्या कर लेते हो।

तुम्हारे सपने, तुम्हारी नींद, तुम्हारा अंधापन सब उसमें मिल जाते हैं और सब विकृत कर देते हैं।
तुम जागो! जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे तुम गुरु के करीब आने लगे। जागरण ही एक मात्र निकट आने का उपाय है।
मुझसे शिष्य पूछते हैं कि आपके हम ज्यादा से ज्यादा निकट कैसे आएं? एक
ही उपाय है कि ज्यादा से ज्यादा जागो। और असली सवाल मेरे निकट आना थोड़े ही है; असली बात तो मेरे बहाने परमात्मा के निकट जाना है। मेरे पास बैठ जाने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। मेरे चरणों को पकड़ लेने से थोड़े ही तुम मेरे निकट हो जाओगे। उससे तो कुछ भी न होगा। वह तो तुम धोखा दे रहे हो अपने आपको। तुम जागोगे तो ही मेरे निकट होओगे। क्योंकि यह निकटता तो भीतर की है, बाहर की नहीं। तुम मेरे जैसे ही होने लगोगे, तो ही मेरे निकट होओगे। तुम अपने जैसे बने रहे तो दूरी बनी रहेगी।
दो ही उपाय हैं। या तो गुरु सो जाए तो निकटता हो सकती है, या शिष्य जग जाए तो निकटता हो सकती है। गुरु सो नहीं सकता; क्योंकि जो जाग गया, उसके सोने का उपाय नहीं। पीछे लौटना होता ही नहीं। जो जान लिया, उससे वापस लौटना होता ही नहीं। गुरु सो नहीं सकता। एक ही उपाय है कि तुम जाग जाओ। कबीर कहते हैं, मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
और जागना कोई ऐसी बात नहीं है कि मंत्र की तरह तुम रटते रहो तो जाग जाओगे। जागना कोई मंत्र नहीं है, जागना तो जीवन की विधि है। तुम चौबीस घंटे जागे हुए जीओगे तो ही धीरे-धीरे करके जागरण का गुण तुममें इकट्ठा होगाः बूंद-बूंद जागरण इकट्ठा होगा, तब तुम्हारी गागर भरेगी। एक-एक कण इकट्ठा करना पड़ेगा। तब तुम्हारे जागरण का संग्रह होगा। भोजन करो तो जागे हुए। भोजन करते वक्त बस भोजन ही करो, मन में दूसरे विचार न आने दो; क्योंकि वे नींद ले आते हैं, सपना ले आते हैं। जागरण खो जाता है। राह पर चलो तो जागे हुए; एक-एक कदम होश में उठे। छोटे से छोटा काम भी करो तो जागे हुए। जागने को तुम जीवन की विधि बना लो, जीवन की शैली बना लो। ऐसा नहीं कि एक घंटे पर सुबह बैठ कर जागने का उपाय कर लिया और फिर तेईस घंटे भूल गए। तो जागरण कभी भी पैदा न हो पाएगा। सतत चौबीस घंटे चोट मारनी पड़ेगी, तो ही तुम्हारी नींद टूटेगी। हथौड़ी की तरह तुम चोट मारते ही रहो, कि मैं जागा हुआ ही सब कुछ करूंगा। और अगर तुम कोई काम कर रहे हो--समझो कि तुम स्नान कर रहे हो, और भूल गए, स्मृति खो गई, ऐसे ही कर लिया यंत्रवत, डाल लिया पानी बिना होश के; जैसे ही याद आ जाए, फिर से स्नान करो, जागकर करो। उतनी सजा दो कि ठीक इतना समय गया बिना जागे, अब फिर से जागकर करेंगे।
ऐसा हुआ कि बुद्ध जब बुद्ध न हुए थे तब एक गांव से गुजर रहे हैं। एक साधक साथ है। एक मक्खी बुद्ध के कान पर आकर बैठ गई है। वे साधक से बात कर रहे हैं। उन्होंने मक्खी को ऐसे ही मूर्च्छित, बात को बिना तोड़े, होश को बिना मक्खी की तरफ ले जाए, यंत्रवत उड़ा दिया--जैसा कि हम करते रहते हैं। कोई जरूरत नहीं है, नींद में भी कोई मक्खी बैठ जाए तो तुम उड़ा देते हो; मच्छर आ जाए तो हाथ हिला देते हो। वह ऑटोमैटिक है, यंत्रवत है। इसमें तुम्हारे होश की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तत्क्षण बुद्ध को याद आया। वे खड़े हो गए। तब मक्खी न थी कान पर, उड़ चुकी थी। क्योंकि मक्खी थोड़े ही फिकर करती है कि तुम जाग कर उड़ाते हो कि सोए हुए उड़ाते हो। मक्खी तो उड़ गई थी। बुद्ध खड़े हो गए, बात रोक दी। हाथ को फिर से उठाया, और मक्खी को उड़ाया, जो थी ही नहीं। वह जो साधक खड़ा था, उसने कहा, क्या आपका दिमाग कुछ अस्त-व्यस्त हो गया है? यह क्या कर रहे हो? मक्खी तो जा चुकी। वह तो आप उड़ा चुके। बुद्ध ने कहा, मक्खी को नहीं उड़ा रहा हूं; अब जाग कर उड़ा रहा हूं। मक्खी से क्या लेना-देना। लेकिन भूल हो गई, चूक गया। उतना कृत्य मूर्छा में हो गया, नींद में हो गया।
और जितने कृत्य तुम नींद में करोगे, उतनी ही नींद इकट्ठी होती चली जाती है। नींद एक गुणधर्म है, एक क्वालिटी है; और जागना भी एक गुणधर्म है।
ये चेतना के दो ढंग हैं।
तो तुम जो भी करो, हाथ का इशारा भी करो... यह हाथ मैंने उठाया, यह हाथ मैं ऐसे ही उठा सकता हूं--यंत्रवत; और यह हाथ मैं जाग कर भी उठा सकता हूं।

तुम दोनों तरह करके देखना। जब तुम जाग कर उठाओगे तब तुम पाओगे कि हाथ के उठने का गुणधर्म और है। हाथ बड़े माधुर्य से उठेगा; एक शालीनता होगी उसमें, क्योंकि होश होगा। और भीतर हाथ बड़ा विश्राम में रहेगा, तनाव नहीं होगा। हाथ ऐसे उठेगा जैसे परमात्मा उठा रहा है; तुम जैसे सिर्फ उपकरण हो। अगर तुमने मूर्च्छा में उठाया, तो हाथ हिंसा के ढंग से उठेगा; उसमें झटका होगा; वह शालीन न होगा। उसमें प्रसाद न होगा, माधुर्य न होगा। और उसके भीतर एक तनाव होगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, तुम पाओगे, तुम्हारा शरीर थकता ही नहीं, क्योंकि जागकर सब चीजें इतनी शांति और माधुर्य से भर जाती हैं, तनाव नहीं रह जाता। इसलिए थकान नहीं रह जाती। जितने तुम सोए-सोए जीओगे, उतना तनाव रहता है। जितना तनाव रहता है, उतने तुम थक जाते हो। थकान श्रम के कारण नहीं आ रही है, तुम्हारी मूर्च्छा के कारण आ रही है। इसलिए तो बुद्धपुरुषों को तुम सदा ताजा पाओगे, जैसे अभी-अभी स्नान करके आए हों। उनके ऊपर तुम सुबह की छाप पाओगे। उनके शब्दों में तुम ओस की ताजगी पाओगे, जैसे सब नया-नया है, सब अभी-अभी है, कुछ भी बासा नहीं है, कहीं धूल नहीं जम पाती। उनकी आंखों में तुम्हें झलक मिलेगी--शांत झील की। उनके सारे व्यक्तित्व में तुम्हें दर्पण की तरह गहराई, अनंत गहराई और अनंत ताजगी... । एक कुआंरापन तुम्हें बुद्धपुरुषों के पास मिलेगा। इसे धीरे-धीरे तुम भी अनुभव कर सकते हो जैसे- जैसे जागो।
इसको ही तुम अपनी साधना बना लोः उठोगे, बैठोगे, बात करोगे, हंसोगे, रोओगे--मगर जागकर करोगे। कभी जागकर हंसना, तुम तत्क्षण फर्क पाओगे। फर्क भारी हैः जब तुम ऐसे ही हंस देते हो मूर्च्छा में, तब तुम्हारा हंसना पागल जैसा होता है, हिस्टीरिकल होता है। और जब तुम जाग कर हंसोगे, तब तुम पाओगे, हंसने का गुणधर्म बदल गया; उसमें पागलपन नहीं है, उसमें एक बड़ी मधुरिमा है। वह तुम्हारी विक्षिप्तता से नहीं आ रहा है, तुम्हारी सजगता से आ रहा है। और तुम्हारे हंसने की हिंसा खो जाएगी, धीरे-धीरे तुम्हारी हंसी मुस्कान में बदलने लगेगी। धीरे-धीरे तुम्हारी हंसी मुस्कान से भी गहरी हो जाएगी। एक ऐसी घड़ी आएगी कि हंसी तुम्हारी मुखाकृति का अंग हो जाएगी। तुम पागल की तरह हंसोगे नहीं, तुम मुस्कराओगे भी न। चौबीस घंटे हंसी का एक भाव, जैसे फूलों की एक गंध तुम्हारे चेहरे को घेरे रहेगी; तुम हंसे हुए रहोगे। जो जानेगा वही जान पाएगा कि तुम कैसे प्रफुल्लित हो! तुम्हारी प्रफुल्लता गहन हो जाएगी, मौन हो जाएगी।
झरने जब उथले होते हैं तो शोरगुल करते हैं। जब नदी गहरी हो जाती है तो कोई शोरगुल नहीं होता। इसलिए तो हमें कुछ पता नहीं कि बुद्ध हंसते हैं कि नहीं, कि महावीर हंसे या नहीं, कि जीसस हंसे या नहीं। पता न होने का कारण यह नहीं है कि वे नहीं हंसे; पता न होने का कारण इतना ही है कि उनकी हंसी इतनी गहरी है कि तुम उसे देख न पाओगे। वह अदृश्य में लीन हो गई है। वे चौबीस घंटे प्रफुल्लित हैं। तुम हंसते हो--चौबीस घंटे दुख में घिरे हुए हो। तुम्हारी हंसी दुख में एक टापू की तरफ होती है--दुख के सागर में एक टापू। बुद्ध की हंसी एक महाद्वीप है; वह चौबीस घंटे है।
साधना तो वही जो अखंड है। जागो अखंडता है। और एक दिन अचानक पाओगे कि रात तुम तो सो गए हो और फिर भी जाग रहे हो। अगर तुमने दिन के हर कृत्य में जागरण को साधा, एक दिन तुम अचानक पाओगे कि शरीर तो सो गया है, तुम जागे हो। कृष्ण उसी को योगी कहते हैं गीता में। जब सब सो जाए, जब सब की रात हो तब भी जो जागा रहे, वही योगी है। निश्चित ही कृष्ण ने ठीक परिभाषा पकड़ी। वही परिभाषा है योगी कीः निद्रा में भी जो जागा रहे। तो जागे में तो जागा ही रहेगा; निद्रा में भी जो जागा है। अखंड है उसके जागने का स्वर।
"मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।।"
मोह निद्रा का अंग है; वह एक तरह की नींद है। निर्मोह जागृति की छाया है; वह जागरण का अंग है।
तुम अगर निर्मोही बनने की कोशिश करो, बिना जागने की कोशिश के तो तुम्हारा निर्मोह बड़ा कठोर और पाषाणवत हो जाएगा। अगर तुम निर्मोही बनने की कोशिश करो बिना जागे हुए, तो तुम्हारा निर्मोही होना एक तरह की हिंसा

होगी, जबरदस्ती होगी; निर्मोहिता तो कम होगी, कठोरता ज्यादा होगी। तुम अपनी पत्नी को छोड़ सकते हो, कह सकते हो कि मैं निर्मोही हो गया; लेकिन इस निर्मोह में प्रेम न होगा, घृणा होगी। अगर तुम जागते हो, तो भी तुम निर्मोही हो जाओगे एक दिन; लेकिन उस निर्मोह में परम करुणा होगी, प्रेम होगा। तुम चीजों को तोड़ कर नहीं हट जाओगे; तुम हटोगे भी तो भी चीजों को जोड़े रखोगे, और अगर तुम्हारे जागरण से तुम्हारा निर्मोह आया है--तुम्हारी पत्नी भी समझेगी, तुम्हारे बच्चे भी समझेंगे कि इस निर्मोह में कठोरता नहीं है। निर्मोह तो बड़ा मृदुल है, बड़ा प्रीतिपूर्ण है।
इसलिए कबीर या मैं तुम्हें निर्मोही बनने को नहीं कह रहे हैं। इसलिए कबीर ने पहले तो जागने की बात कही कि मैं कहता तू जागत रहियो--फिर कहा कि... मैं कहता तू निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे।
"जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।"
और कबीर कहते हैंः कितने युगों से समझा रहा हूं। बुद्धपुरुष युगों से समझा रहे हैं, हर युग में समझाते रहे हैं। यह कबीर कोई अपने ही बाबत नहीं कह रहे हैं। कबीर जैसे व्यक्ति जब बोलते हैं तो अपने बाबत नहीं बोलते; वे तो सारे बुद्धपुरुषों के बाबत बोल रहे हैं।
"जुगन जुगन समुझावत हारा, कहा न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्या खोई रे।।"
मन वेश्या की तरह है। किसी का नहीं है मन। आज यहां, कल वहां; आज इसका,
कल उसका। मन की कोई मालकियत नहीं है। और मन की कोई ईमानदारी नहीं है। मन बहुत बेईमान है। वह वेश्या की तरह है। वह किसी एक का होकर नहीं रह सकता। और जब तक तुम एक के न हो सको, तब तक तुम एक को कैसे खोज पाओगे? न तो प्रेम में मन एक का हो सकता है; न श्रद्धा में मन एक का हो सकता है--और एक के हुए बिना तुम एक को न पा सकोगे। तो कहीं तो प्रशिक्षण लेना पड़ेगा--एक के होने का। इसी कारण पूरब के मुल्कों ने एक पत्नीव्रत को या एक पतिव्रत को बड़ा बहुमूल्य स्थान दिया। उसका कारण है। उसका कारण सांसारिक व्यवस्था नहीं है। उसका कारण एक गहन समझ है। वह समझ यह है कि अगर कोई व्यक्ति एक ही स्त्री को प्रेम करे, और एक ही स्त्री का हो जाए, तो शिक्षण हो रहा है एक के होने का। एक स्त्री अगर एक ही पुरुष को प्रेम करे और समग्र-भाव से उसकी हो रहे कि दूसरे का विचार भी न उठे, तो प्रशिक्षण हो रहा है; तो घर मंदिर के लिए शिक्षा दे रहा है; तो गृहस्थी में संन्यास की दीक्षा चल रही है। अगर कोई व्यक्त्ति एक स्त्री का न हो सके, एक पुरुष का न हो सके, फिर एक गुरु का भी न हो सकेगा; क्योंकि उसका कोई प्रशिक्षण न हुआ। जो व्यक्ति एक का होने की कला सीख गया है संसार में, वह गुरु के साथ भी एक का हो सकेगा। और एक गुरु के साथ तुम न जुड़ पाओ तो तुम जुड़ ही न पाओगे। वेश्या किसी से भी तो नहीं जुड़ पाती। और बड़ी, आश्चर्य की बात तो यह है कि वेश्या इतने पुरुषों को प्रेम करती है, फिर भी प्रेम को कभी नहीं जान पाती।
अभी एक युवती ने संन्यास लिया। वह आस्ट्रेलिया में वेश्या का काम करती रही। उसने कभी प्रेम नहीं जाना। यहां आकर वह एक युवक के प्रेम में पड़ गई, और पहली दफा उसने प्रेम जाना। और उसने मुझे आकर कहा कि इस प्रेम ने ही मुझे तृप्त कर दिया; अब मुझे किसी की भी कोई जरूरत नहीं है। और उसने कहा कि आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि मैं तो बहुत पुरुषों के संबंध में रही; लेकिन मुझे प्रेम का कभी अनुभव ही नहीं हुआ। प्रेम का अनुभव हो ही नहीं सकता बहुतों के साथ। बहुतों के साथ केवल ज्यादा से ज्यादा शरीर का भोग, उसका अनुभव हो सकता है। एक के साथ आत्मा का अनुभव होना शुरू होता है; क्योंकि एक में उस परम एक की झलक है। छोटी झलक है, बहुत छोटी; लेकिन झलक उसी की है।
आकाश में चांद निकलता है--सागर में भी प्रतिबिंब बनता है, छोटी-छोटी तलैयों में भी प्रतिबिंब बनता है। चांद तो वही है; तलैया छोटी सही, प्रतिबिंब तो वही है। कोई फर्क नहीं है तलैया के प्रतिबिंब में और सागर के प्रतिबिंब में। इसलिए पूरब के मुल्कों ने, विशेष कर भारत ने, इस पर बड़ा आग्रह किया कि एक स्त्री एक ही पुरुष में लीन हो जाए, एक पुरुष एक ही स्त्री में लीन हो जाए। ऐसे एक का प्रशिक्षण होगा।

प्रेम पहला कदम है--एक की शिक्षा का। फिर श्रद्धा दूसरा कदम है कि एक गुरु में लीन हो जाए। फिर प्रार्थना अंतिम कदम है कि एक परमात्मा में लीन हो जाए। प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना--ऐसी सीढ़ियां हैं। तू तो रंडी फिरै बिहंडी--कबीर कहते हैं कि तू तो वेश्या की भांति है। वे शिष्य को कह रहे हैं। और इस तरह अपना ही नाश कर रहा है। सब धन डार्या खोई रे। और अपना ही धन खो रहा है--आत्म-धन खो रहा है; अपने अस्तित्व को खो रहा है; अपने को गंवा रहा है।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे। और सतगुरु की निर्मल धारा बह रही है, उसमें तू काया धोने के लिए तैयार नहीं और गंदे डबरों में वासना के, न मालूम कहां-कहां भटक रहा है।
"तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्या खोई रे।
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।"
और अगर तू सतगुरु की निर्मल धारा में नहा ले, तू सतगुरु जैसा ही हो जाएगा। और जब शिष्य गुरु जैसा होता है, उसी क्षण एक और द्वार खुलता है, जो आखिरी द्वार है। जब शिष्य गुरु जैसा होता है, तभी परमात्मा का द्वार खुल जाता है।
तो गुरु बड़ा पड़ाव है; वह कोई आखिरी मंजिल नहीं है; वहां रुक नहीं जाना है। मगर वहां से गुजरे बिना कोई आगे नहीं जाता है; वह बड़ा पड़ाव है। और जितनी जल्दी उसमें डूब जाओ, उतनी जल्दी उसके पार हो जाते हो। गुरु के बाद परमात्मा ही बचता है, और कुछ नहीं बचता है। और गुरु के पहले केवल संसार है, परमात्मा नहीं है। गुरु मध्य में खड़ा है; इस पार संसार है, उस पार परमात्मा है। जो गुरु में लीन हो जाता है, वह तत्क्षण परमात्मा की तरफ गतिमान हो जाता है।
"सतगुरु धारा निरमल बाहै, वामें काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे।।"
और कोई अड़चन नहीं है, वैसा हो जाने में; क्योंकि वस्तुतः गहनतम स्वभाव में तुम अभी भी वैसे ही हो, तभी तो वैसे हो सकते हो। जो तुम हो, वही तो हो सकते हो। जो तुम नहीं हो, वह तुम कभी भी न हो सकोगे। तुम गुरु के साथ एक हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर सदगुरु छिपा है। तुम परमात्मा के साथ एक हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा का आवास है।
"कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
आठवां प्रवचन

शिष्यत्व महान क्रांति है

सूत्र

गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।
पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मार्या बान।।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं परंत।
कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत।।

पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।।

कबिरा हिर के रुठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रुठाते, हरि नहिं होत सहाय।।

या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

ज्यां जैकस रूसो का एक प्रसिद्ध वचन है--वचन है कि मनुष्य स्वतंत्रता में पैदा होता है और परतंत्रता में जीता है। यह वचन बहुत गहरा नहीं है।
ऊपर से देखने पर ऐसा ही लगता है कि मनुष्य स्वतंत्रता में पैदा होता है, और फिर समाज, राजनीति, सभ्यता, संस्कृति, हजार तरह की परतंत्रताओं में उसे बांध देती हैं।
और गहरे देखने पर पता चलता है कि मनुष्य परतंत्रता में ही पैदा हेता है। जो स्वतंत्र है, वह तो फिर पैदा होता ही नहीं; उसका तो फिर आवागमन नहीं होता। जो बंधा है, वही संसार में आता है। जो अनबंधा है, उसके आने का उपाय ही समाप्त हो जाता है। बंधन ही संसार में लाता है।
इसलिए बच्चे भी परतंत्रता में ही पैदा होते हैं; यद्यपि बच्चे बेहोश हैं और उन्हें अपनी परतंत्रता का पता लगते-लगते समय बीत जाएगा। जब उन्हें पता चलेगा कि वे परतंत्र हैं, तभी वे जानेंगे। यह देरी इसलिए होती है जानने में कि बच्चे के पास अपना कोई होश नहीं है; जब होश आएगा तभी पता चलेगा कि मैं परतंत्र हूं।
और बहुत थोड़े-से लेग ही जान पाते हैं कि वे परतंत्र हैं। अधिक लोग तो ऐसे ही जी लेते हैं जैसे वे स्वतंत्र थे। परतंत्र ही मरते हैं, परतंत्र ही पैदा हुए थेः और परतंत्रता का चाक चलता ही रहता है। परतंत्रता राजनैतिक हो तो मोड़ देना बहुत आसान है। हजारों राजनीतिक क्रांतियां होती रहती हैं, आदमी की परतंत्रता नहीं टूटती। परतंत्रता आर्थिक हो तो समाजवाद, साम्यवाद उसे मिटा देते; लेकिन रूस और चीन में नई परतंत्रताएं निर्मित हो गईं। और मजे की बात तो यह है कि नई परतंत्रता की जंजीर पुरानी परतंत्रता से मजबूत होती है। पुरानी परतंत्रता की जंजीरें तो जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं; नई जंजीर बिल्कुल अभी-अभी ढाली होती है, ज्यादा मजबूत होती है। लेकिन नई परतंत्रता को आदमी स्वीकार कर लेता है स्वतंत्रता के ख्याल से, और जंजीर से आभूषण समझ लेता है। थोड़े दिन चलता है यह नशा, फिर टूट जाता है। फिर क्रांति की जरूरत आ जाती है।
बाहर के जगत में रोज क्रांति की जरूरत रहेगी; और क्रांति कभी होगी नहींः असली परतंत्रता भीतरी है; न राजनीतिक है, न आर्थिक है, न सामाजिक है। असली परतंत्रता आध्यात्मिक है। तुम परतंत्र हो; तुम्हें किसी ने परतंत्र बनाया नहीं है। तुम्हारे जीवन का ढंग ही परतंत्रता को पैदा करने वाला है। तुम स्वतंत्र होने को तैयार ही नहीं हो, स्वतंत्र होने की क्षमता और साहस ही तुममें नहीं है। इसलिए कौन तुम्हारे लिए परतंत्रता की जंजीरें ढाल

देगा, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता; कोई न कोई ढालेगा। तुम्हारी जरूरत है परतंत्रता। इसलिए मैं कहता हूं रूसो की तरह, हर आदमी परतंत्र ही पैदा होता है। और करोड़ में कभी कोई एक व्यक्ति जानता है कि वह परतंत्र है; शेष तो परतंत्रता में ही जीते हैं और परतंत्रता में ही समाप्त हो जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि वे परतंत्र थे।
और यह पता ही न चले कि हम परतंत्र हैं, तो स्वतंत्रता का उपाय कैसा? फिर तुम परतंत्र लोगों की भीड़ में ही जीते हो। वहां कौन तुमसे कहेगा? वे सभी कारागृह के कैदी हैं। उनमें से किसी ने भी स्वतंत्रता को चखा नहीं। उन्हें कुछ भी पता नहीं है उस मुक्त आकाश का। वे अपने पंखों पर कभी उड़े नहीं। वे सभी पिंजरों में बंद कैदी हैं। उनमें से किन्हीं के पिंजरे लोहे के हैं--वे गरीब कैदी हैं; किन्हीं के पिंजरे सोने के हैं--वे अमीर कैदी हैं। किसी के पिंजरों में हीरे-जवाहरात लगे हैं--वे सम्राट कैदी हैं; लेकिन कैदी सभी हैं, और सभी ने उड़ने की क्षमता खो दी है। आज अचानक कोई पिंजरे का द्वार भी खोल दे, तो भी तोता उड़ेगा नहीं; उड़ना ही भूल गया है। पिंजरा ही तो नहीं उसे परतंत्र बना रहा है; अब तो परतंत्रता और भी गहन है-- पंखों ने उड़ने की क्षमता खो दी है, भरोसा भी खो दिया है। और अगर उड़ भी जाए तोता, तो मुश्किल में पड़ेगा। पिंजरे में तो जिंदा रह सकता था; बाहर जिंदा न रह सकेगा; बाहर के संघर्ष को सह न सकेगा। हजार पक्षी हैं... बाहर मार डाला जाएगा। पिंजरे में तो प्राण बचे थे; परतंत्रता ही सही, लेकिन सुरक्षा थी। बाहर सुरक्षा भी नहीं है। और जो उड़ नहीं सकता है ठीक से अपने पंखों पर, वह कहीं भी किसी का भी शिकार हो जाएगा। पिंजरे में रहा तोता, मुक्त होकर केवल मरता है; परतंत्र होकर जी सकता है। इसलिए तो परतंत्रता छोड़ने में इतनी घबड़ाहट होती है। क्योंकि परतंत्रता अगर अकेली परतंत्रता होती तो उसे कभी का तोड़ देते। वह सुरक्षा भी है। वह जीवन को बचाने की व्यवस्था भी है। वह पिंजरे के चारों तरफ लगे हुए सींकचे तुम्हें उड़ने से ही नहीं रोक रहे हैं, शत्रुओं को भी भीतर आने से रोक रहे हैं। उनका काम दोहरा है।
स्वतंत्र होने के लिए पहले तो प्रशिक्षण चाहिए--पिंजरे के भीतर ही, पहले तो कोई सिखाने वाला चाहिए, जो पंखों का बल लौटा दे, जो भीतर की आत्मा को आश्वस्त कर दे। इसके पहले कि तुम उड़ो खुले आकाश में, कोई चाहिए जो तुम्हें खुले आकाश में उड़ने की योग्यता दे दे। गुरु का वही अर्थ और प्रयोजन है। गुरु का अर्थ हैः कारागृह में तुम्हें कोई मिल जाए, जिसने स्वतंत्रता का स्वाद चखा है। कारागृह के बाहर तो बहुत लोग हैं, जिन्हें स्वतंत्रता का स्वाद है; लेकिन वे कारागृह के बाहर हैं, उनसे तुम्हारा संबंध न हो सकेगा। बुद्ध हैं, महावीर हैं, कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं--अब सब कारागृह के बाहर हैं। अब उनसे तुम्हारा मिलन नहीं हो सकता। वे कारागृह के भीतर नहीं आ सकते, क्योंकि वे परिपूर्ण स्वतंत्र हो गए हैं। अब उनका जन्म नहीं हो सकता। तुम कारागृह के बाहर नहीं जा सकते, क्योंकि बाहर जाने की योग्यता ही होती तो कृष्ण का और क्राइस्ट का और राम का और महावीर का सहारा ही जरूरी न था।
गुरु का अर्थ हैः ऐसा व्यक्ति जो अभी कारागृह में है और मुक्त हो गया है। उसकी भी नाव किनारे आ लगी है। जल्दी ही वह भी यात्रा पर निकल जाएगा। थोड़ी देर और वह किनारे पर है। वह तुम्हारे ही जैसा है; लेकिन अब तुमसे बिल्कुल भिन्न हो गया है। तुम जहां खड़े हो, वहीं वह खड़ा है। जल्दी ही तुम उसे वहां न पाओगे; क्योंकि जिसके पंख पूरे खुल गए, जिसकी उड़ने की तैयारी पूरी हो गई और जिसने स्वतंत्रता का स्वाद भी चख लिया, अब वह ज्यादा देर परतंत्रता में न रुक सकेगा। थोड़ी देर और, वह अपनी नाव पर सवार हो जाएगा। फिर वह भी कारागृह के बाहर होगा।
तो गुरु का क्या अर्थ है?
गुरु का अर्थ हैः ऐसी मुक्त हो गई चेतनाएं जो ठीक बुद्ध और कृष्ण जैसी हैं, लेकिन तुम्हारी जगह खड़ी हैं--तुम्हारे पास। कुछ थोड़ा सा ऋण उनका बाकी है--शरीर का, उसके चुकने की प्रतीक्षा है। बहुत थोड़ा समय है यह।
बुद्ध को चालीस वर्ष में ज्ञान हुआ। चालीस वर्ष वे और रुके। उन चालीस वर्षों में उनके शरीर के जो ऋण शेष थे, वे चुक गए। ऋण चुकते ही नाव खुल

जाएगी। फिर तुम उन्हें खोज न पाओगे। फिर वे जैसे धुआं विलीन हो जाता है आकाश में, ऐसे ही विलीन हो जाएंगे। जैसे गंध उड़ जाती शून्य में, वैसे वे उड़ जाएंगे। फिर तुम उन्हें कहीं भी खोज न पाओगे। फिर तुम्हें कहीं उनकी रूप-रेखा न मिलेगी। फिर उनका स्पर्श संभव न होगा।
मुक्त हो जाने के बाद शरीर का ऋण चुकाने की जो थोड़ी सी घड़ियां हैं, उन थोड़ी ही घड़ियों में गुरु का उपयोग हो सकता है। फिर तुम लाख महावीर को चिल्लाते रहो, फिर तुम लाख बुद्ध को पुकारते रहो--बहुत सार्थकता नहीं है। सदगुरु का अर्थ हैः मध्य के बिंदु पर खड़ा व्यक्ति, जिसका पुराना संसार समाप्त हो गया, नया शुरू होने को है। पुराने का आखिरी हिसाब-किताब बाकी है--वह हुआ जा रहा है; जैसे ही वह पूरा हो जाएगा... । भीतर से तो बात समाप्त हो गई; लेकिन शरीर के संबंध उतने जल्दी समाप्त नहीं होते। शरीर पैदा हुआ था सत्तर साल या अस्सी साल जीने को। मां-बाप के शरीर से उसे अस्सी साल जीने की क्षमता मिली थी; और व्यक्ति चालीस साल में मुक्त हो गया, तो शरीर की क्षमता चालीस साल और शरीर को बनाए रखेगी। अब वह जिएगा मृत्यु की भांतिः यहां होगा और नहीं होगा।
गुरु एक पैराडॉक्स है, एक विरोधाभास हैः वह तुम्हारे बीच और तुमसे बहुत दूर; वह तुम जैसा और तुम जैसा बिल्कुल नहीं; वह कारागृह में और परम स्वतंत्र। अगर तुम्हारे पास थोड़ी सी भी समझ हो तो इन थोड़े क्षणों का तुम उपयोग कर लेना, क्योंकि थोड़ी देर और, फिर तुम लाख चिल्लाओगे सदियों-सदियों तक, तो भी तुम उसका उपयोग न कर सकोगे।
और आदमी अदभुत है। जब बुद्ध मौजूद होते हैं, तब वह उन्हें चूक जाता है। तब वह निर्णय ही नहीं कर पाता। तब वह यह सोचता हैः कल निर्णय कर लेंगे, परसों निर्णय कर लेंगे; और फिर सदियों तक रोता है। पर वे सब आंसू मरुस्थल में खो जाएंगे। उन आंसुओं से कोई सार नहीं। वह आंसू प्रार्थनाएं नहीं, पश्चाताप दे सकते हैं। उन आंसुओं से साधना न जन्मेगी। उनसे अतीत में जो तुम चूक गए हो, उसका पश्चाताप तो प्रगट होता है, लेकिन बुद्ध के साथ कोई सेतु न बन सकेगा। खोजना पड़ेगा तुम्हें किनारे पर कोई और जिसकी नाव आ लगी है; पूछना पड़ेगा उससे, समर्पित होना होगा उसके प्रति; उसके हाथ में अपने को छोड़ देना होगा। समर्पण की इसलिए जरूरत पड़ जाती है कि उसकी भाषा और, तुम्हारी भाषा और। और उसके पास ज्यादा समय नहीं है कि तुम्हें समझाए। तुम्हारे पास तो बहुत समय है समझने को, क्योंकि बहुत बार जन्मोगे; पर उसके पास ज्यादा समय नहीं समझाने को। जो बिल्कुल समझने को तैयार हैं, उसको ही वह समझा सकेगा। उसके पैर तो पड़ चुके हैं शरीर के बाहर जाने को; अब गया, तब गया।
बुद्ध का एक नाम हैः तथागत। तथागत का मतलब होता हैः अब गया, तब गया; जैसे हवा का झोंका आता है--और आया और गया!
मैं एक कविता पढ़ रहा था। शब्द का खेल मुझे प्रीतिकर लगा। वसंत पर किसी
ने एक कविता लिखी और मुझे भेजी। पहली पंक्ति हैः वसंत... आ गया। दूसरी पंक्ति हैः वसंत आ गया। ठीक लगा। इतनी ही देर है। वसंत आ गया और वसंत आ... गया। इतनी ही देर में गुरु को खोज लिया, खोज लिया। बस आ गया और आ... गया के बीच जितना फासला है उतना ही फासला है। हवा की एक लहर; पकड़ लिया; पकड़ लिया, हो गए सवार उस पर, हो गए सवार; चूक गए, चूक गए! फिर पछताने से कुछ भी नहीं होता।
मनुष्य कारागृह में है। कोई चाहिए जो कारागृह में हो और जिसने स्वतंत्रता जान ली हो--ऐसा ही अनूठा जोड़ गुरु है। कारागृह में तुम्हें कौन बताएगा बाहर जाने का राज? जो कारागृह के ही वासी हैं उन्हें कारागृह का सब पता होगा; लेकिन बाहर जाने का कोई द्वार उन्हें पता नहीं। उन्हें यह भी पता नहीं कि बाहर कुछ है भी। उन्हें यह भी पता नहीं कि बाहर जाना हो सकता है। और उन्हें पता भी चल जाए तो भी बाहर उन्हें डराएगा, भयभीतर करेगा।
सौ वर्ष पहले फ्रांस के क्रांतिकारियों ने फ्रांस का एक किला तोड़ दिया--बैस्तील। उसमें बड़े जघन्य अपराधी थे। वह फ्रांस के सबसे बड़े अपराधियों के लिए कारागृह था। कोई चालीस साल से बंद था, कोई पचास साल से।
किसी ने रजत-जयंती पूरी कर दी थी, किसी ने स्वर्ण-जयंती भी पूरी कर दी थी।

वहां आजन्म कैदी थे। उनके हाथों पर बड़ी मजबूत जंजीरें थीं। क्योंकि वे मरने के बाद ही खुलने वाली थीं। उनमें कोई ताला नहीं था, कोई चाबी नहीं थी। वे तो जब कैदी मर जाता था तो उसके हाथ को तोड़ कर ही बाहर निकाली जाती थीं। उनके पैरों में भयंकर बेड़ियां थीं, जिनको एक आदमी के बस के बाहर था कि उठा ले। चलना भी उनके लिए संभव न था। वे अपने कारागृह की कोठरियों में, अंध कोठरियों में--जहां न तो बाहर का आकाश दिखाई पड़ता, न कभी बाहर की सूरज की कोई झलक आती, न कोई हवा का झोंका बाहर की खबर लाता। वसंत आए कि पतझड़, भीतर सब एक सा ही अंधेरा बना रहता। सुबह हो कि रात, कुछ भेद नहीं होता। उनकी अंध कोठरियों में बंद कीड़े-मकोड़ों की तरह वे जीए थे। क्रांतिकारियों ने किला तोड़ दिया और क्रांतिकारियों ने सोचा कि बड़े अनुगृहीत होंगे कैदी, अगर हम उन्हें मुक्त कर देंगे। उन्होंने मुक्त कर दिया लेकिन कैदियों ने बड़ी नाराजगी जाहिर की। कैदियों ने कहा, हम बाहर नहीं जाना चाहते। पचास साल से मैं यहां हूं। किसी कैदी ने कहा, और अब बाहर जाना? अब फिर से दुनिया में उतरना? --इस उम्र में थोड़ा कठिन है। यहां तो समय पर खाना मिल जाता है। सब व्यवस्थित जीवन है। वहां बाहर कहां रोटी कमाऊंगा, कहां छप्पर खोजूंगा सोने के लिए? और फिर मेरी आंखें अंधेरे की आदी हो गई हैं, प्रकाश में बहुत पीड़ा पाएंगी। और फिर यह देह जंजीरों से सहमत हो गई है; बिना जंजीरों के तो मैं सो भी न पाऊंगा। ये जंजीरें तो मेरे शरीर का हिस्सा हो गई हैं--पचास साल, पूरा जीवन!
लेकिन क्रांतिकारी किसी की सुनते हैं? क्रांतिकारी तो क्रांति पर उतारू रहते हैं। उन्हें इससे मतलब ही नहीं कि क्रांति जिसके लिए कर रहे हैं, वह राजी भी है या नहीं। उन्हें क्रांति करनी है, वे क्रांति करके ही माने। उन्होंने जबरदस्ती कैदियों की जंजीरें तुड़वा दीं, उनको बाहर निकाल दिया। आधे कैदी रात वापस लौट आए, और उन्होंने कहा, हमारी कोठरियां हमें वापस दो। बाहर बहुत घबड़ाहट लगती है। न कोई प्रियजन है, न कोई परिचित रहा अब। कहां खोजें? सब पता-ठिकाना खो गया है। और बाहर की दुनिया इतनी बदल गई है। हम जब छोड़ कर आए थे तो कोई और ही दुनिया छोड़ कर आए थे; यह तो कुछ और ही हो गया है। और शोरगुल और आवाज--बड़ी अशांति मालूम पड़ती है, और बड़ी असुरक्षा। न हमें कोई जानता, न हम किसी को जानते। हमारी भाषा और, उनकी भाषा और। अब तालमेल नहीं बैठेगा।
अगर दरवाजा खुला भी हो कारागृह का--और मैं कहता हूं खुला है, उस पर कोई पहरेदार नहीं बैठे--तो भी तुम दरवाजे को देखते नहीं। दिख भी जाए तो तुम बचकर निकल जाते हो; क्योंकि तुम्हारी बेड़ियों में तुम्हारी सुरक्षा है। और फिर तुमने धीरे-धीरे अपने कारागृह को खूब सजा लिया है। और अब वह घर जैसा है। तुमने दीवारों पर रंग-रोगन कर लिया है, फूल-बूटे बना लिए हैं, लाभ-शुभ लिख लिया है। तुमने बिल्कुल घर बना लिया है अब कहां तुम्हें घर से उजड़ने की हिम्मत रही। तुम पूरे सुरक्षित हो गए हो अपनी परतंत्रता में। भला वह कब्र हो, लेकिन तुमने उसे अपना शयनकक्ष बना लिया है। भला वहां तुम सिर्फ मर रहे हो, जी नहीं रहे हो; फिर भी जीने का भय मालूम होता है, बाहर जाने में घबड़ाहट लगती है।
कौन तुम्हें बाहर ले जाए?
जिन कैदियों के साथ तुम हो, वे भी तुम जैसे ही कैदी हैं। तुम एक-दूसरे
का पारस्परिक सहयोग करते रहते हो। कैदी एक-दूसरे को कहते रहते हैं, यह कोई कारागृह थोड़े ही है, नौ लाख का सरकारी भवन है। कैदी एक-दूसरे को समझाते हैं कि हम कोई कैदी थोड़े ही हैं, अतिथि हैं, सरकारी अतिथि!
कैदी एक दफा कारागृह में रह आए तो फिर वापस बार-बार लौटता है, बाहर अच्छा नहीं लगता; जल्दी कोई उपाय करके फिर लौट आता है। दुनिया उसकी भीतर है; प्रियजन, सगे-संबंधी भीतर हैं; असली परिवार भीतर है। कारागृह के लोग अपने को समझा लेते हैं कि वे बड़े प्रसन्न हैं, बड़े आनंदित हैं।
तुमने भी ऐसे ही अपने को समझा लिया है। दुख हो तो तुम कहते हो, यह कोई दुख थोड़े ही है। सुख के लिए तो दुख झेलना ही पड़ता है। यह तो सुख पाने का उपाय है। तुम आशा को नहीं मिटने देते। आशा तुम्हारे कारागृह पर सुख का सपना बन कर छाई हुई है। रात हो अंधेरी तो तुम कहते हो कि सुबह होने के करीब

है। हालांकि सुबह तुम्हारे जीवन में कभी नहीं हुई, रात ही रात रही है; लेकिन तुम अपने को समझा लेते हो, कि जब गहन अंधेरी रात होती है, तो सबूत है कि सुबह होने के करीब है। और तुमने ऐसी कहावतें बना ली हैं कि अंधेरे से अंधेरे, काले से काले बादल में भी छिपी हुई रजत-रेखा की भांति बिजली है; और हर कांटे के पास गुलाब का फूल है। चिंता है थोड़ी, माना; लेकिन हर चिंता के बाद आनंद की संभावना है।
आशा कारागृह के बाहर नहीं जाने देतीः पता नहीं, तुम बाहर जाओ तभी कुछ
घट जाए! आशा तुम्हें भीतर बांधे रखती है। कोई पहरेदार नहीं है तुम्हारे कारागृह पर; आशा का पहरा है। तुम अपने ही कारण भीतर रुके हो। और भीतर सभी कैदी एक सी भाषा बोलते हैं। वे सब एक-दूसरे को सम्हाले रखते हैं।
कौन तुम्हें वहां जगाएगा?
गुरु का अर्थ हैः जो कारागृह में रहा हो अब तक और अचानक जाग गया हो। गुरु का अर्थ हैः जिसने किसी भीतर के मार्ग से कारागृह से बाहर होने का उपाय खोज लिया है। गुरु का अर्थ हैः जिसने कोई सेंध लगा ली है, और जो बहार के खुले आकाश को देख आया है, फूलों की सुगंध ले आया है, पक्षियों के गीत सुन आया है; जो कारागृह के भीतर बाहर के आकाश के टुकड़े को ले आया है। वह तुम्हें जगा सकता है। वही तुम्हें होश दे सकता है, मार्ग दे सकता है। वही तुम्हें बाहर ले जाने का उपाय दे सकता है। और वही तुम्हें तैयार करेगा इसके पहले कि तुम बाहर जाओ; नहीं तो बाहर बड़ी घबड़ाहट है--तुम वापस लौट आओगे।
कारागृह में तैयारी करनी होगी। सारे साधन, सारी विधियां वस्तुतः मोक्ष की विधियां नहीं हैं, सिर्फ तुम्हारे पंखों को तैयार करने की विधियां हैं। मोक्ष तो अभी उपलब्ध है, लेकिन तुम अभी तैयार नहीं हो; तुममें और मुक्ति में तालमेल न हो सकेगा। और अगर तुम्हें आज धक्का भी दिया जाए मोक्ष कर तरफ तो तुम वापस अपने कारागृह में लौट आओगे और जोर से कारागृह को पकड़ लोगे, क्योंकि अभी खुला आकाश तुम्हें डराएगा। कोई तुम्हें कारागृह के भीतर तैयार करे, तुम्हारे पैरों को मजबूत करे, तुम्हारे हाथों को बल दे, तुम्हारे पंखों को सम्हाले, और तुम्हारे भीतर की श्रद्धा को सजग करे कि तुम्हें आत्म-भाव जग आए, तुम अपने पर भरोसा कर सको; तुम इतने अपने आत्म-विश्वास से भर जाओ कि बड़े से बड़ा आकाश भी तुम्हारे आत्म-विश्वास से छोटा मालूम पड़े, तभी तुम बाहर जा सकोगे।
स्वतंत्रता कोई बाहर की घटना नहीं है, भीतर का भरोसा है। तुम इतने भीतर आनंद-भाव से भर जाओ और इतने बल और आत्म-भाव से आत्म-भान से कि सब असुरक्षाएं तुम्हें कंपा न सकें; तुम निर्भय होकर असुरक्षाओं में गुजर सको; वस्तुतः हर असुरक्षा तुम्हें पंखों को फैलाने का एक अवसर बनने लगे; हर कठिनाई तुम्हारे लिए एक चुनौती हो जाए, हर आकाश का खुलापन तुम्हारे लिए और दूर तक उड़ने की दिशा बना जाए। इसके लिए कोई जो तुम्हें तैयार करे, वही गुरु है।
गुरु का अर्थ होता हैः जो अब बस गया, गया, ज्यादा देर न रहेगा। इसलिए बहुत थोड़े लोग गुरु का लाभ ले पाते हैं। फिर अनेकों लोग उसकी पूजा करेंगे, उसके गीत गाएंगे सदियों तक। वह सब व्यर्थ है। उसका कोई सार नहीं है। वह पछतावा है। उससे तुम अपनी मूढ़ता तो प्रकट करते हो, लेकिन अपनी समझ नहीं। कबीर के इन वचनों को समझने की कोशिश करोः
गूंगा हुवा बावला, बहरा हुवा कान। पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मार्या बान।।
जो गूंगा था, वह बोलने लगा।
तुम्हारे भीतर कुछ है जो बिल्कुल गूंगा है। और जो तुम्हारे भीतर बोल रहा है, वह कोई बहुत सार्थक अंग नहीं है। तुम्हारा हृदय तो गूंगा है और तुम्हारी खोपड़ी बोले जाती है। और तुम्हारी खोपड़ी के बोलने में कुछ भी सार नहीं हैं। वह विक्षिप्त का उन्माद है। वह एक तरह की रुग्ण दशा है। वह सन्निपात है। अगर तुम बैठ कर अपने मन को गौर से देखोगे तो तुम पओगे कि यह क्या बोल रहा है मन, क्यों बोल रहा है? इस कूड़े-करकट की चर्चा क्यों? मन क्षुद्र के आस-पास घूमता है।

रामकृष्ण कहते थे, चील कितने ही ऊपर आकाश में उठ जाए, तो भी नजर उसकी कूड़ेघर पर पड़े हुए मरे जानवर पर लगी रहती है। आकाश में उड़ती हो, तो भी वह आकाश में उड़ नहीं सकती; नजर तो नीचे जमीन पर, जहां मांस का टुकड़ा पड़ा है, वहीं लगी रहती है। तुम्हारा मन अगर ईश्वर की भी बात सोचे, तो भी तुम गौर करना; तुम्हारी नजर कहीं मांस के टुकड़े पर, जमीन पर लगी होगी; तुम ईश्वर से भी मांस का टुकड़ा ही मांगोगे।
अगर ईश्वर मिल जाए--कभी तुमने सोचा? सोचने जैसा है, अगर ईश्वर मिल जाए,
तो क्या मांगोगे? तुम्हारा मन बहुत-सी चीजें बताएगा; लेकिन सभी कचरे-घर में पड़े हुए मांस के टुकड़े होंगे। ईश्वर अगर मिल जाए तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कुछ मांग ही नह पाओगे, अगर समझदार हो; अगर नासमझ हो तो कुछ कचरा मांगकर लौट आओगे। क्या मांगोगे? --इसी संसार का कुछ, इसी कूड़े-घर से कुछ।
तुम्हारा मन क्या सोचता रहता है, क्या मांगता रहता है? क्या चलती रहती
है गुनगुन मन के भीतर? क्या है उसका सार-सूत्र? थोड़ा अपने मन को गौर करके देखो तो तुम पाओगे, सार तो कुछ भी नहीं, असार ही बकवास चलती रहती है। यह तुम्हारा बोलता हुआ हिस्सा है, मुखर हिस्सा।
कबीर कहते हैं, गूंगा हूवा बावला... । लेकिन गुरु के पास जाकर वह हिस्सा बोलना शुरू करता है जो अब तक चुप ही रहा था। अब तक तुमने उसे बोलने का मौका ही न दिया था। और निश्चित ही, अगर एक पागल आदमी और एक स्वस्थ आदमी की मुलाकात हो जाए, तो पागल आदमी स्वस्थ को बोलने का मौका ही न देगा। पागल तो आक्रामक होता है, हिंसात्मक होता है। पागल तो बके ही जाएगा, वह अवसर भी न देगा बोलने का।
यहूदी फकीर हुआ, बालसेन। उसके पास एक बकवासी आ गया। और फकीरों में कुछ गुण होता है कि बकवासियों को आकर्षित करते हैं। वह बकवासी कोई घंटे भर तक बकवास करता रहा। उसने बालसेन को इतना भी मौका न दिया कि वह कहे, बस करो भाई, इतना भी मौका न दिया। वह दो वाक्यों के बीच में संधि ही नहीं छोड़ता था। तो वह बोले ही जा रहा था। आखिर उसने एक बात कही कि मैं पड़ोस के दूसरे नगर के फकीर के पास भी गया था। उन्होंने आपके संबंध में कुछ बातें कही हैं। जरा सी संधि मिल गई बालसेन को। उसने जोर से चिल्ला कर कहा, बिल्कुल गलत। बिल्कुल गलत। वह आदमी थोड़ा हैरान हुआ कि मैंने अभी बातें तो बताई ही नहीं कि फकीर ने क्या कहा; और आप पहले ही कहते हैं, बिल्कुल गलत, बिल्कुल गलत। बालसेन ने कहा, जब तूने मुझे मौका नहीं दिया बोलने का, उसको भी न दिया होगा। मैं मान ही नहीं सकता कि उसको तूने मौका दिया हो, और मेरे संबंध में वह कुछ बोल पाया हो। असंभव।
बकवासी और शांत व्यक्ति में बकवासी बोलता रहेगा। पागल और स्वस्थ में पागल बोलता रहेगा। सभ्य और असभ्य में असभ्य बोलता रहेगा।
तुम्हारे भीतर भी दोनों हैं। तुम्हारा असभ्य हिस्सा है तुम्हारा मन,
और तुम्हारा सभ्य हिस्सा है तुम्हारा हृदय। मन उसे बोलने ही नहीं देता। वह चुप्पी साधे है। और वही तुम्हारा केंद्र है। मन तो तुम्हारी परिधि है। मन तो तुम्हारे बाजार का हिस्सा है; वहां उसकी जरूरत है। जीवन के गहन में मन का कोई भी काम नहीं है। न तो प्रेम में काम पड़ता है मन; न प्रार्थना में काम पड़ता है मन; न सत्य की खोज में काम पड़ता है मन; न अमृत की यात्रा में काम पड़ता है मन--हां, बाजार के सौदे में, सब्जी खरीदने में, सब्जी बेचने में काम पड़ता है; रुपये-पैसे इकट्ठे करने में, चोरी करने में काम पड़ता है।
मन व्यर्थ की साज-सम्हाल रखता है। उसकी भी जरूरत है। मगर वह तुम्हारे ऊपर फैल जाए पूरी तरह और एकाधिकार कर ले तो वह तुम्हारी गर्दन घोंट देगा। उसने गर्दन घोंट दी है। तुम भूल ही गए हो कि तुम्हारे पास हृदय भी है; और एक सुमधुर वाणी है तुम्हारे पास; एक और शांत स्रोत है; एक और संगीत का उद्गम है--जहां वाणी बहुत मृदुल है; जहां स्वर बहुत शांत है; जहां कुछ कहा कम जाता है और ज्यादा समझा जाता है; जहां बोलना कम है और जीना ज्यादा है; जहां करना कम है और होना ज्यादा है। एक गहनता है अस्तित्व की तुम्हारे हृदय में; वहां तुम्हारा केंद्र है।
गूंगा हूवा बावला, कबीर कहते हैं, सद्गुरु मार्या बान।

और जब गुरु ने बाण मारा तो जो हिस्सा गूंगा था सदा से, वह बोल उठा। और
जब हृदय बोलता है, मन एकदम चुप हो जाता है। तुम मन को चुप करने की बहुत कोशिश करके सफल न हो पाओगे; ज्यादा बेहतर हो, तुम हृदय को सुविधा दो। इस पागल से मत ज्यादा उलझो। अपने भीतर गैर-पागलपन के सूत्र को खोजो। तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी दृष्टि हृदय की तरफ मुड़े। धीरे-धीरे तुम पाओगे, जो आवाज नहीं सुनी जाती थी, वह सुनी गई। जो अंर्तध्वनि तुम भूल ही गए थे, वह मिट नहीं गई है; उसकी कल-कल धारा अब भी भीतर बहती है।
तुमने कभी विचार किया? रास्ते पर शोरगुल चल रहा है, भरा बाजार है, पक्षी एक बोल रहा है वृक्ष पर--तुम अगर आंख बंद करके पक्षी की तरफ ध्यान से सुनो। बाजार भूल जाएगा; और पक्षी की धीमी सी आवाज इतनी तीव्र और प्रखर हो जाएगी कि तुम पाओगे, पूरे बाजार की आवाज भी उसे डुबा नहीं सकती। तुम्हारे ध्यान देने की बात है। तुम कभी अगर शांत बैठो और सिर्फ अपने हृदय की धड़कन सुनो, तो तुम पाओगे कि रास्ते पर चलते हुए ट्रेफिक का कारवां और सब तरफ का शोरगुल फीका पड़ गया; हृदय की धड़कन उस सब के ऊपर उठ कर उभर जाएगी।
सिर्फ ध्यान की बात है। जिस तरफ ध्यान, उसी तरफ जीवन की वर्षा हो जाती है। तुम्हारा ध्यान अगर तुमने विचारों की तरफ लगा रखा है, तो तुम विक्षिप्त को ही सुनते चले जाओगे। और मन से ज्यादा बकवासी तुमने कहीं देखा और मन से ज्यादा उबानेवाला तुमने कभी देखा? मन से ज्यादा व्यर्थ चीज तुमने कहीं जीवन में पाई?
सद्गुरु मार्या बान, गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।
तुम सुनते हो, फिर भी सुन नहीं पाते। क्योंकि जिस कान से तुम सुनते हो,
वह बाजार के लिए ठीक, ध्यान के लिए ठीक नहीं। कोई और कान चाहिए। सुनने की कोई और विधि चाहिए। सुनने का कोई और ढंग और शैली... ।
ऐसे तो मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो; लेकिन और तरह से भी सुना जाता है। जब कान ही नहीं सुनते, बल्कि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व कान हो जाता है--बहरा हुआ कान--तुम्हारा रोआं-रोआं जो बहरा पड़ गया है; तुम्हारी श्वांस-श्वांस जो बहरी पड़ गई है; सिर्फ कान सुनता है और तुम्हारा पूरा देह, तन-मन, प्राण, सब बहरा है--ऐसे काम न चलेगा। उस विराट को सुनना हो तो तुम्हें पूरा कान ही हो जाना पड़ेगा। महावीर ने यही श्रावक की परिभाषा की है। जिसका पूरा व्यक्त्तित्व कान हो जाए, वह श्रावक। जिसका पूरा व्यक्तित्व आंख हो जाए, वह द्रष्टा। जिसका पूरा व्यक्तित्व हृदय की धड़कन हो जाए, वह प्रेमी। खंड-खंड से काम न चलेगा। पूरा अखंड होकर कुछ भी कर लो, उसी से छुटकारा हो जाएगा। इसे तुम सूत्र मानोः जिस चीज को तुम अखंड होकर कर लोगे, वही तुम्हें इस कारागृह के बाहर ले जाने का द्वार हो जाएगी।
बहरा हूवा कान--सारा शरीर अब तक बहरा था, वह पूरा का पूरा कान हो गया-- सद्गुरु मार्या बान।
पाऊं थैं पंगुल भया... । और अब तक तो हिस्सा पक्षाघात से पंगुल पड़ा था, हिलडुल न सकता था, अचानक चलने लगा।
इस पद की मैं ऐसी व्याख्या करता हूं। और व्याख्याएं हैं, वे मुझे बचकानी लगती हैं। वे व्याख्याएं ये हैं कि जो गूंगा था, वह बोलने लगा; जो बहरा था, वह सुनने लगा; जो लंगड़ा था, वह चलने लगा--ऐसा गुरु का चमत्कार है। गुरु कोई सत्य साईंबाबा नहीं। और इस तरह की व्याख्याएं एकदम बचकानी हैं। इस पद का वचन गहरा है। चमत्कार बच्चों को लुभाने की बातें हैं, सड़क के किनारे जादूगर कर रहा है। उनसे कुछ आत्मक्रांति का सेतु नहीं बनता। बड़ा चमत्कार यही है कि तुम्हारे भीतर जो बोलता नहीं अंग, वह बोलने लगे। गूंगा बोलने लगे, यह कोई बड़ा चमत्कार नहीं है। यह विज्ञान ही कर लेगा। इसके लिए संतों की कोई जरूरत नहीं है। और बहरा सुनने लगे, यह तो दस-बीस रुपये का यंत्र खरीद कर भी हो जाएगा। इसके लिए कबीर जैसे गुरु को उलझाने की जरूरत नहीं है। और पक्षाघात ठीक हो जाए, यह तो साधारण इलाज की बात है। लेकिन एक और , जिसे कोई विज्ञान ठीक न कर सकेगा। एक और आत्मा है तुम्हारे भीतर जो पत्थर जैसे हो गई है, जिसको पिघलाना है, जिसको चलाना है, जिसको पैर देने हैं। वह कौन करेगा? अगर गुरु भी अस्पतालों का ही एक्सटेंशन हो, उन्हीं का

ही काम कर रहे हो, तो फिर दूसरा काम कौन करेगा? नहीं, गुरु का कोई चिकित्सक नहीं है, या चिकित्सक है तो अज्ञात का।
तुम्हारे भीतर ये सारी घटनाएं हैं। तुम यह मत सोचना कि किन्हीं गूंगों, बहरों और लंगड़ों के संबंध में चर्चा हो रही है; यह चर्चा तुम्हारे संबंध में हो रही है। और नहीं तो अगर गूंगे, लंगड़े, बहरे सब ठीक हो जाएं तो गुरु क्या करेगा? एक दिन ऐसा हो ही जाएगा। विज्ञान सारी व्यवस्था कर लेगा, दुनिया में कोई लंगड़ा न होगा, गूंगा न होगा, लूला न होगा। फिर सदगुरु को सिवाय आत्महत्या के कोई उपाय न रह जाएगा।
ये सारे शब्द तुम्हारे लिए हैंः ये किन्हीं गूंगों और बहरों के संबंध में नहीं हैं। यह तुम गूंगों और बहरों के संबंध में है। और यह बड़ा चमत्कार है कि तुम्हारे भीतर एक छोटा सा हिस्सा बोल रहा है, बाकी का सब बहरा है, गूंगा है, लंगड़ा है। कान सुन रहा है, लेकिन तुम नहीं सुनते। पैर चल रहे हैं; लेकिन तुम नहीं चलते। तुम चले ही नहीं; तुम बिल्कुल जड़ हो। तुम बहे ही नहीं। तुम्हारे जीवन में कोई सरिता जैसा भाव नहीं है। तुम अखीर में मरते वक्त पाओगे, चले बहुत और बिल्कुल कहीं पहुंचे नहीं। वही पक्षाघात है। पक्षाघात का वही अर्थ है। मरते वक्त्त तुम पाओगे, जहां पैदा हुए थे, वहीं मर रहे हो। चले बहुत, लेकिन चलना पैरों का था, आत्मा का न था; भीतर कोई गति नहीं हुई; भीतर गत्यात्मकता है ही नहीं।
तुम वही-वही रोज करते हो। कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, आज भी किया, कल भी करोगे--तुम वही करते रहोगे; भीतर कोई गति नहीं है। जब कोई व्यक्ति क्रोध से अक्रोध को उपलब्ध होता है, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। जब कोई व्यक्ति अशांति से शांति को उपलब्ध होता है, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। और जब कोई व्यक्ति वासा से करुणा को उपलब्ध होता है, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। तब गति हुई; तब चले; तब बर्फ पिघली तुम्हारे भीतर की जड़ता की; तुम तरल हुए, बहे; सागर की तरफ यात्रा हुई। जैसे कोई नदी सागर पहुंच जाए ऐसे जब तुम परमात्मा के सागर में पहुंच जाओगे, तब--पाऊं थैं पंगुल भया। सतगुरु मार्या बान।
क्या अर्थ है सदगुरु के बाण मारने का? शिष्य को ऐसा लगता है। सतगुरु
तो बाण मारता ही रहता है। लेकिन यहां बड़ी कठिनाई है। यह कोई साधारण धनुर्विद्या नहीं है। सतगुरु तो ठीक निशाने पर ही मारता है। लेकिन यहां जटिलता यह है कि लक्ष्य अगर राजी न हो, तो बाण चूक जाता है।
मैं एक बाण तुम्हारी तरफ फेंकता हूं। मैं कितना ही निशाना ठीक मारकर फेंकूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; अगर तुम राजी नहीं हो तो निशाना चूक जाएगा। और मैं गैर निशाने के अंधेरे में फेंक दूं, अगर तुम राजी हो, तीर पहुंच जाएगा। तुम्हारे राजी होने में सारी कला है। तुम्हारे तैयार होने में, खुले होने में, रिसेप्टिव, ग्राहक होने में सारी कला है। तुम्हारा द्वार खुला हो, फिर बाण कहीं भी फेंका जाए, तुम खींच लोगे बाण को।
सतगुरु तो चौबीस घंटे... उसके होने में बाण फेंकना छिपा है। उठता है, बैठता है, बोलता है--हर घड़ी वह बाण फेंक रहा है। यह कोई बाण फेंकना उसके लिए कृत्य नहीं है, यह उसके होने का ढंग है। क्योंकि जो उसे मिला है, वह बांट रहा है। लेकिन जिन्होंने अपनी झोली खोल दी होगी, उनकी झोली भर जाएगी। और जो संकोच से भरे, भयभीत, डरे, अश्रद्धा, संदेह में दबे, अपने द्वार को बंद रखे खड़े रहेंगे, उनकी झोली खाली रह जाएगी।
कबीर को बाण लग गया होगा सतगुरु का। उसमें खूबी सतगुरु की नहीं है; इसमें खूबी कबीर की है। यह जो आध्यात्मिक जीवन है, इसमें गुरु की बहुत खूबी नहीं है; इसमें खूबी शिष्य की है। शिष्य को ऐसा ही लगेगा, गुरु ने मारा बाण, गुरु की कला है। शिष्य गुरु को धन्यवाद देगा। और गुरुओं ने सदा शिष्यों को धन्यवाद दिया है, क्योंकि वे ज्यादा गहरी बात जानते हैंः साफ है कि शिष्य लेने को राजी था, इसलिए मिल गया है। तुम जितना लेने को राजी हो, उतना पा लोगे। अगर न पा सको तो किसी और को दोष मत देना; अपने राजीपन में ही तलाश करनाः तुम राजी ही नहीं हो; तुम लेने को भी उत्सुक नहीं हो। तुम्हें मुफ्त भी मिल रहा हो जीवन का समस्त धन तो तुम्हें भरोसा नहीं है कि यह धन

हो सकता है। तुम संदिग्ध हो। तुम्हारा संदेह ही गुरु के बाण को चुका देगा।
तुम श्रद्धा से भरे हो, बाण लगना निश्चित है।
और उस बाण के लगने का परिणाम यह होगा--और ठीक बाण शब्द बिल्कुल उचित है--जैसे हृदय छिद जाए किसी बाण से।
बस दो ही घटनाओं में यह बाण का प्रतीक सार्थक है। एक तो जब प्रेम में तुम कभी गिरते हो, तब सारी दुनिया में बाण का प्रतीक उपयोग में लाया जाता है, कि जैसे एक प्रेम का बाण तुम्हारे हृदय में आकर छिद गया। बाण के छिदने का अर्थ होता हैः पीड़ा, लेकिन मधुर। एक मीठी पीड़ा तुम्हारे हृदय में उठ आती है। पीड़ा होती है--पीड़ा जैसी नहीं, आनंद जैसी। तुम उसे छोड़ना न चाहोगे। चौबीस घंटे तुम्हारे हृदय में कुछ होता रहता है, जब कोई प्रेम में पड़ता हैं।
हिंदुओं की तो पुरानी प्रतीक-व्यवस्था है, और उन्होंने बड़े ठीक प्रतीक खोजे हैं। कामदेव सदा ही धनुष्य-बाण लिए खड़ा है। प्रतीक है प्रेम का कि लोग हृदय का चित्र बना देते हैं और एक बाण उसमें चुभा देते हैं। बाण के साथ एक त्वरा और तीव्रता है। और बाण एक क्षण में लग जाता है, सतय नहीं लगता है; अभी नहीं था, और अभी है; एक पल नहीं बीता और सब बदल गया। और बाण के लगते ही तुम्हारे हृदय में एक नई गतिविधि शुरू हो जाती है--एक पीड़ा जो मधुर है--और तुम बदलने शुरू हो जाते हो। प्रेम जिस जोर से बदलता है, कोई चीज बदलती नहीं। अभी तुम चल रहे थे--उदास-उदास, पैरों में गति न थी, ढोते थे बोझ, अपने के ही खींचते थे; और प्रेम का बाण लग गया--पैरों में गति आ गई, नृत्य आ गया। अब तुम चलते हो--चाल और है। एक गीत है चाल के भीतर छिपा। कोई भी देख कर कह सकता है कि लग गया बाण। कहते हैं, प्रेम को छिपाना असंभव है। वह मुझे भी ठीक लगता है, प्रेम को छिपाना असंभव है। कैसे छिपाओगे? तुम्हारा रोआं-रोआं, आंख, हाथ, पैर, चलना, उठना, बोलना, हर चीज कहेगी कि तुम प्रेम में पड़ गए हो। प्रेम को छिपाना असंभव है। वह ऐसी आग है।
तो एक तो प्रेम है, जहां बाण प्रतीक है; और उससे भी ज्यादा ठीक प्रतीक
है श्रद्धा के लिए। श्रद्धा भी ऐसे ही बाण जैसी चुभती है। सारी दुनिया श्रद्धा में गिरे आदमी को पागल कहेगी, जैसे प्रेम में गिरे आदमी को पागल कहती है। सारी दुनिया कहेगी कि सम्मोहित हो गए हो। होश खो दिया, विचार खो दिया? किस पागलपन में पड़े हो? सम्हलो। लेकिन जिसको बाण लग गयाः सारी दुनिया फीकी और उदास हो जाती है। जिसको बाण लग गया, वह कैसे कहे अपनी मीठी पीड़ा को किसी से? पीड़ा कहे, ठीक नहीं; सिर्फ मीठा कहे, नहीं काफी... , एक तो मिठास को बताना ही मुश्किल, फिर पीड़ा भरी मिठास को बताना तो और भी मुश्किल, और जटिल हो गया। और लोग कहेंगे, पागल हो। पीड़ा कहीं मीठी होती है? क्योंकि उन्होंने तो एक ही पीड़ा जानी है--जहरीली, कड़वी, पीड़ा जो दुख देता है उन्होंने सुख जाना जो सुख देता है, उन्होंने दुख जाना जो दुख देता है। लेकिन जब बाण लगता है श्रद्धा या प्रेम का, तो तुम एक अनूठे अनुभव से गुजरते होः एक ऐसा दुख जो सुख भी है; एक ऐसी तंद्रा जिसमें जागृति भी छिपी है; एक ऐसा सम्मोहन जिसमें होश आ रहा है। तुम विरोधाभास की सीमा पर आ गए। तर्क की दुनिया पीछे छूट गई, हृदय की दुनिया शुरू हुई।
इसलिए बाण खोपड़ी में कभी नहीं लगाया हुआ बताया जाता--कभी तुमने न देखा होगा; वह सदा हृदय में लगता हैं। खोपड़ी में बाण लग ही नहीं सकता; वह काफी सघन है; वह सब तरफ से बंद है। हृदय कोमल द्वार है। तुम तैयार हो तो बाण सदा तैयार है। अगर तुम चूके तो अपने कारण चूकोगे।
गूंगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान। पाऊं थैं पंगुल भया, सतगुरु मार्या बान।।
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं परंत। और मनुष्य ऐसा है माया में डूबा हुआ--अज्ञान से भरा हुआ, मूर्च्छा से संत्रस्त; जैसे पतंगा दीये पर आ-आकर गिरता है, ऐसे ही मनुष्य माया पर आ-आ कर गिरता है, जो देखता है, वह हैरान होता है--इस पतंगे को क्या पागलपन हुआ है? यह मरेगा दीये पर गिर कर। दीये से कोई जीवन न मिलेगा। मौत आएगी। लेकिन पतंगा वहीं-वहीं आकर गिरता है और मरता है। और दूसरे पतंगे भी देख रहे हैं, लेकिन उनको भी कुछ होश नहीं आता;

वे भी दीये की तरफ चले आ रहे हैं। सुबह ढेर लग जाता है पतंगों का जो दीये पर मरे; लेकिन बाकी पतंगों को कुछ भी खबर नहीं होती, होश ही नहीं होता।
कबीर कह रहे हैं, माया दीपक नर पतंग--माया है दीपक इस संसार का। सारा लोभ, वासना, कामना, तृष्णा वह है दीपक। और मनुष्य एक पतंगे की भांति है। और कितनी बार गिरा इसी दीये पर और मरा। जन्मों-जन्मों से यही चल रहा है। फिर भी वही वासना खींचती है, कामना खींचती है--फिर दीये की तरफ चल पड़ते हैं। हर बार जन्म के बाद मौत के सिवा और कुछ तो मिलता नहीं। हर जीवन मौत में ही तो बदल जाता है। पतंगे ही नहीं मरते। हम भी तो आखिर में मरे हुए ढेर पर पड़े पाए जाते हैं। सारे जीवन की निष्पत्ति मौत है, फिर भी कोई जागता नहीं है। माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं परंत। और बार-बार उसी भ्रम में, बार-बार उसी नासमझी में, बार-बार उसी अंधकूप में आकर आदमी गिर जाता है। कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत।। लेकिन जिसके हृदय में गुरु
का बाण लग गया, उसके जीवन में क्रांति घटित हो जाती है। कोई एकाध जो गुरु का निशाना बन गया, जिसने गुरु का निशाना अपने को बनने दिया वह कोई एकाध उबर जाता, फिर मौत विलीन हो जाती है; फिर जीवन का सनातन नाद बजता है; फिर जीवन की शाश्वतता उपलब्ध होती है; फिर वही बच रहता है, जिसकी कोई मौत नहीं और उसे पाए बिना शांति न मिलेगी।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें शांति चाहिए। शांति मिल नहीं सकती जब तक तुम अमृत को न पा लो। मिल ही कैसे सकती है--मौत सामने खड़ी है। शांति कैसे मिल सकती है? थोड़ी बहुत देर को पीछा छिपा दो, ढांक दो, भूल जाओ-- यह हो सकता है; लेकिन शांति मिल नहीं सकती। शांति तो अमृत की छाया है। इसलिए मैं यहां तुम्हें शांति के उपाय नहीं बता रहा हूं। शांति में मेरी उत्सुकता नहीं है। मेरी उत्सुकता तो अमृत में है। तुम जिस दिन अमृत को पा लोगे; शांति अपने आप बंधी चली आती है। वह अमृत की दासी है, छाया है, और मृत्यु की छाया है अशांति। तुम चाहो कि मृत्यु को पार हुए बिना तुम शांत हो जाओ। यह असंभव है। और अच्छा है कि यह असंभव है। अगर मृत्यु के रहते तुम शांत हो जाओ। तो धर्म का द्वार तुम्हारे लिए सदा के लिए बंद हो जाएगा। महाकरुणा है अस्तित्व की वह तुम्हें शांत नहीं होने देता जब तक कि तुम अंतिम द्वार को पार न कर जाओ। नहीं तो तुम न मालूम किसी कूड़े-घर पर बैठ कर और शांत हो गए होते; तुम न मालूम कोई तिजोरी पकड़ कर बैठे रहते, छाती से लगा कर, और शांत हो गए होते; तुम सड़ जाते। नहीं, परमात्मा तुम्हें छोड़ेगा नहीं। परमात्मा तुम्हें धकाता ही रहेगा। जब तक कि वास्तविक घटना न घट जाए। और वह घटना यही है कि तुम अमृत को जान लो।
कहैं कबीर गुरु ज्ञान थैं, एक आध उबरंत।
गुरु ज्ञान तो बहुतों को बांटता है, पर एकाध उबरता है। हजारों लेते हैं, एकाध तक पहुंचता है। हजारों सुनते हैं, एकाध सुनता है। हजारों चलते हैं, एकाध ही पहुंचता हैं। बात क्या है? कहीं गुरु और शिष्य के बीच गड़बड़ हो जाती है। गुरु कुछ कहता है, शिष्य कुछ सुनता है। तुम जब तक कुछ सोचते रहोगे तब तक तुम वही न सुन पाओगे जो गुरु कहता है; तुम कुछ और सुन लोगे। तुम अपने को मिश्रित कर दोगे। तुम गुरु के ज्ञान में अपना अज्ञान डाल दोगे। तुम गुरु के ज्ञान से भी अज्ञान ही ले पाओगे। तुम पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान न हो सकोगे। इसलिए बहुत सुनते हैं, कोई एकाध ही सुन पाता है।
जीसस हर बार कहते हैं, जब भी वे बोलते हैं कि जिनके पास कान हों, वे सुन लें। जिनके पास आंख हों, वे देख लें। हर बार, हर बोलने के पहले उनका पहला वचन यही है, क्या जीसस अंधों और बहरों के बीच ही रहते थे? निश्चित ही बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट अंधों और बहरों के बीच ही रहते हैं।
रोज मुझे अनुभव होता है कि जो मैं कहता हूं, तुम कुछ और सुनते हो। जब लोग आकर मुझे कहते हैं कि कल आपने ऐसा कहा, तब मुझे पता चलता है।
मैं अगर कहूं कि सघन उपाय करना पड़ेगा तभी तुम पा सकोगे--मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि सघन उपाय तो होता नहीं; हो नहीं सकता, क्योंकि और हजार काम हैं। और मन में इतनी शक्ति भी नहीं है कि सघन उपाय कर सकें--तो यह तो हमसे न हो सकेगा।

मैं कभी बोलता हूं कि किसी उपाय की जरूरत नहीं है, तुम सिर्फ शांत होकर बैठ जाओ--तो लोग मुझसे आकर कहते हैं कि यह तो हो ही नहीं सकता। वही लोग जो कह गए थे, सघन उपाय नहीं हो सकता। मैं कहता हूं, सिर्फ बैठ जाओ, यह तो हो नहीं सकता। खाली कैसे बैठें? आप कुछ करने को बताएं। आलंबन तो चाहिए--कोई विधि, कोई उपाय तो चाहिए; नहीं तो खाली कैसे बैठें?
दोनों मार्गों से आदमी पहुंचता है। या तो सब विधि छोड़कर खाली बैठ जाओ--तो भी पहुंच जाता है, कोई बाधा नहीं है। लेकिन सब नहीं छूटता। वे कहते हैं, कुछ तो आलंबन चाहिए। और या फिर किसी विधि में इतने लीन हो जाओ कि पीछे कुछ भी न बचे। वे कहते हैं, यह भी नहीं होता। तो वे कहते हैं, हम बीच का कोई रास्ता निकाल लेते हैंः थोड़ी-थोड़ी विधि करेंगे, थोड़ा-थोड़ा शांत बैठेंगे। यह उन्होंने अपने को मिला लिया; उन्होंने अपना अज्ञान डाल लिया। जो आग मैंने दी थी, उसे उन्होंने कुनकुनी कर लिया। अब ज्यादा से ज्यादा वे कुनकुने हो जाएंगे; लेकिन वाष्पीभूत कभी भी न हो सकेंगे।
तुम अपने को मत मिलाओ। तुम जो भी मिलाओगे, वह गलत होगा, क्योंकि तुम गलत हो। लेकिन गलत आदमी को भी यह भ्रांति होती है कि पूरा थोड़े ही गलत हूं थोड़ा-बहुत होऊंगा। इस ख्याल में तुम पड़ना ही मत। या तो तुम गलत होते हो पूरे, या तो तुम सही होते हो पूरे। मैंने अब तक ऐसा कोई आदमी नहीं देखा जो थोड़ा-थोड़ा सही और थोड़ा-थोड़ा गलत हो। ऐसा आदमी होता ही नहीं। ऐसे आदमी के होने का प्रकृति में उपाय ही नहीं है। साथ-साथ प्रकाश और अंधकार नहीं रहते। या तो तुम्हारे भीतर प्रकाश होता है या अंधकार होता है। तुम कहो, आधे में तो प्रकाश और आधे में अंधकार है, ऐसा होता नहीं। क्योंकि अगर प्रकाश होगा, तो वह आधे में अंधकार को न बचने देगा। और अगर आधे में अंधकार है तो आधा प्रकाश कल्पना होगा। लेकिन तुम की इस भ्रांति में मत पड़ना, जिसमें सभी पड़ते हैं। तब तुम सुन न पाओगे। तुम अपना ही गणित लगाए चले जाते हो। तुम कुछ करते हो, जो तुमने ही ईजाद कर लिया--जो मैंने कभी कहा नहीं। और तुम सुनते हो व्याख्या के साथ। जब कोई निर्व्याख्या से सुनता है, तब उसके पास कान हैं। जब कोई मन को और विचारों को और अपने अतीत को बीच में नहीं लाता, हटा देता है, सरका देता है किनारे पर; सीधा सुनता है; बीच में कोई विचार का परदा नहीं होता--तब कभी वह घटना घटती है। कहैं कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत--और तब गुरु का ग्यान उबार लेता है।
ज्ञान नहीं उबारता, गुरु का होना उबार लेता है। क्योंकि उस घड़ी में जब तुम सारे विचारों को हटा कर सुनते हो, तुम सुनते थोड़े ही हो, तुम पीने लगते हो; तुम दूर थोड़े ही रह जाते हो, तुम पा आ जाते हो; तुम भिन्न थोड़े ही रह जाते हो, अभिन्न हो जाते हो।
बीच में विचार न हो तो भेद कहां होगा? बीच में कोई विचार न हो, मेरे और तुम्हारे बीच में अगर कोई विचार न हो, तो मेरा अंत कहां होगा और तुम्हारी शुरुआत कहां होगी? सीमाएं खो जाएंगी।
जब कोई शिष्य ऐसे सुनता है कि गुरु के साथ सीमा खो जाए, उसी क्षण उबर जाता है। क्योंकि उसी क्षण गुरु का होना शिष्य के होने के गुणधर्म को बदल देता है--जैसे पारस लोहे को सोना कर देता है। कहीं पारस--तुमने सुनी हैं कहानियां--होता नहीं। पारस तो आध्यात्मिक प्रतीक है। पारस तो गुरु के पास होने का एक ढंग है। तब लोहे जैसी साधारण चीज भी सोने जैसे बहुमूल्य तत्व में रूपांतरित हो जाती है।
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर। सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।।
पासा पकड़ा प्रेम का--जुआरी खेलता है, पासे फेंकता है; कबीर कहते हैं कि
यह पासा प्रेम का है। हाथ में प्रेम का पासा ले लिया। सतगुरु दाव बताइया-- सतगुरु ने इशारा किया कि कहां दांव लगा दो, और कबीर दास खेले।
प्रेम हो तो ही सतगुरु दांव बता सकता है। प्रेम हो तो ही शिष्य दांव को समझ सकता है। प्रेम के अतिरिक्त अध्यात्म में और दूसरी कोई समझ नहीं है। प्रेम हो ही क्रांति घटित हो सकती है।ं और शरीर चौपड़ है, क्योंकि शरीर में ही सारा काम करना है। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं तुम्हारे अव्यवस्थित शरीर को व्यवस्थि करने के उपाय हैं, तुम्हारी शरीर की ऊर्जा को संतुलित करने की

व्यवस्थाएं हैं। तुम्हारे शरीर का अगर ठीक-ठीक समायोजन हो जाए, तुम्हारे शरीर की वीणा अगर ठीक-ठीक कस जाए तो वह मधुर संगीत तुमसे उठने लगेगा, जिसका नाम आत्मा है। वह उठ ही रहा है; लेकिन तुम्हारी वीणा ठीक अवस्था में नहीं है। वह मौजूद ही है--सोया है; जगा लेने की जरूरत है।
वीणा रखी हो एक कोने में--संगीत सोया है; छेड़ दो तान, तार को हिला दो-- संगीत जाग गया! ऐसे ही तुम सोए हो--शरीर की वीणा के भीतर छिपे।
सारी किया सरीर--शरीर को चौपड़ बना लिया। पासा पकड़ा प्रेम का, सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर। और कबीर तो केवल दास हैंः जैसा गुरु कहते हैं, वैसा करता है; जो दांव बताते हैं, वैसे चलता है--जैसे गुरु का हाथ है।
दास का अर्थ होता हैः जिसकी अपनी कोई मर्जी नहीं। दास का अर्थ होता हैः समर्पण की आत्यंतिकता। दास का मतलब गुलाम नहीं होता। गुलाम तो वह है जिसको जबरदस्ती दास बना लिया गया हो। दास वह है जो अपनी मर्जी से गुलाम बन गया हो। फर्क भारी है। गुलाम तो वह है जिसको हमने जबरदस्ती ठोक-पीट कर भय भीतर करके दास बना लिया है; डर के कारण जिसने सर झुका दिया है। लेकिन डर के कारण सिर भला झुक जाए, आत्मा कभी नहीं झुकती। भय से कहीं आत्मा झुकी है? तो गुलामा का सिर झुका है, भीतर घृणा भरी है; भीतर उबल रहा है बगावत के लिए; ऊपर-ऊपर है सब दिखावा; भीतर मौका मिल जाएगा तो मालिक की गर्दन काट लेगा। दुश्मन है मालिक। भय के कारण झुका है। भय के कारण झुको तो तुम गुलाम हो। अगर भय के कारण तुम्हारी प्रार्थना है तो गुलामी है। भय के कारण अगर तुम मंदिर में जाते हो तो मंदिर कारागृह है। भय के कारण अगर तुम गुरु के पास पहुंचते हो तो गुरु तुम्हारे लिए एक नई परतंत्रता बन जाएगा, एक जंजीर होगी।
भय से विपरीत है प्रेम। भय से बिल्कुल उलटा है प्रेम। प्रेम के कारण
जब कोई सपर्पित होता है, तो दास हो जाता है। दास का मतलब हैः स्वेच्छा से समर्पण, किसी दबाव में नहीं, किसी भय के कारण नहीं, आनंद में, अहोभाव में, एक महोत्सव में, अपनी पूर्ण मर्जी से, अपने समग्र संकल्प से समर्पण। और तब दासता में ऐसे फूल खिलते हैं कि मालकियत में भी नहीं खिल सकते; तब झुकने में ऐसी संपदा उपलब्ध होती है कि अकड़े हुओं को उसका कोई पता ही नहीं। कबीर कहते हैं, मैं तो दास हूं, और गुरु बता देता है, वैसी चाल देता हूं। प्रेम का पासा पकड़ा है।
इसे ठीक से समझो, क्योंकि ये दो दिशाएं हैंः प्रेम और भय। और अधिक लोगों का भगवान भय की ही उत्पत्ति है। तुम डरे हुए हो मौत से, चिंताओं से जीवन के संघर्ष से, टूटे, पराजित, हारे, तुम मंदिर में हाथ जोड़कर खड़े हो, घुटने टेके--लेकिन अगर भय से, तो तुम्हारा धर्म गुलामी है। और यह धर्म तुम्हें मोक्ष की तरफ न ले जाएगा। यह धर्म तो तुम्हें अंतिम गुलामी में गिरा देगा। लेकिन अगर तुम गए हो नाचते हुए मंदिर में, एक अहोभाव से, जीवन की प्रफुल्लता से, जीवन के वरदान के स्वाद से, देख कर कि इतना दिया है उसने, अकारण; जान कर कि जीवन दिया है उसने बिना मांगे; बहुत दिया है, जरूरत से ज्यादा दिया है--इस धन्यवाद से, इस अनुग्रह-भाव से तुम मंदिर में गए हो, नाचते, गीत गाते और झुक गए हो वहां तो तुम्हारे झुकने में ही तुम अपने परम शिखर को उपलब्ध हो जाओगे। उस झुकने में ही तुम गौरीशंकर हो जाओगे। वह झुकने की कला ही लाओत्सु की पूरी कला है, जिसको वह ताओ कहता है। इस झुकने से बड़ा कुछ भी नहीं है जगत में। लेकिन यह स्मरण रहे कि वह हो प्रेम का झुकना। और बारीक फासला है, नाजुक। तुम समझो तो ही समझ पाओगे; बाहर से तो दोनों एक-से दिखाई पड़ते हैं।
मंदिर में दो लोग प्रार्थना कर रहे हैं; दोनों घुटने टेके खड़े हैं; दोनों की आंखों से आंसू बह रहे हैं--कैसे फर्क करोगे बाहर से? अगर तुम ले आओ एक चिकित्सक को, फिजियोलॉजिस्ट को, शरीर शास्त्री को, उसे कहोः जांच करो। वे आंसुओं की जांच करेंगे, दोनों को एक-सा पाएंगे। क्योंकि प्रेम में बहे आंसू... चाहे भय में, आंसू तो एक ही होता है, उसकी केमिस्ट्री में फर्क नहीं पड़ता। उसके अध्यात्म में भेद होता है, लेकिन उसके रसायन में कोई भेद नहीं होता। कहां प्रेम के आंसू और कहां भय के आंसू! दोनों झुके हैं। दोनों के घुटने जमीन से लगे हैं। घुटने तो एक ही हैं। अगर तुम घुटनों की जांच-परख

करोगे, कोई फर्क न पाओगे। लेकिन घुटनों के भीतर बड़ा भेद है, आकाश-जमीन का भेद है।
प्रेम से जो झुका है, वह सच में ही झुका है। प्रेम से घुटने ही नहीं झुक गए हैं, सारी आत्मा ही झुक गई है, सारा होना झुक गया है; उसका अहंकार विसर्जित हो गया है। भय से जो झुका है, उसका अहंकार भीतर खड़ा है। भय से जो झुका है, वह परमात्मा से भी बदला लेना चाहेगा। भय से जो झुका है, वह एक न एक दिन, अगर परमात्मा मिल जाए, तो उसकी पीठ में छुरा भोंक देगा।
ईसाइयत ने भय सिखाया पश्चिम में कि डरो। धार्मिक आदमी को कहते हैं-- गॉड फीयरिंग, ईश्वर-भीरु। अब यह अधार्मिक आदमी का लक्षण है। ईसाइयत ने भय सिखाया, घबड़ा दिया लोगों को। उसका आखिरी परिणाम हुआ। नीत्से का वचन--पचास साल पहले, इस सदी के प्रारंभ में, उसने कहा, गॉड इ.ज डेड। यह है छुरा भोंक देना छाती में कि ईश्वर मर चुका है, और आदमी अब स्वतंत्र है। यह जो नीत्से का वचन है, यह दो हजार साल की ईसाइयत की शिक्षा का अंतिम परिणाम है, निष्कर्ष है।
भय से जो भगवान है, वह मित्र नहीं हो सकता; वह शत्रु हो सकता है। तुम उसके सामने कंप सकते हो, भयातुर; लेकिन तुम खिल न पाओगे, तुम फूल न बन सकोगे। और तुम्हारे जीवन की परम समाधि और परम सुवास उस भय से न उठ सकेगी।
भय से तो सिर्फ दुर्गंध उठती है; सुवास तो प्रेम का ही अंग है।
इसलिए कबीर कहते हैंः
"पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर।।
कबीरा हरि के रुठते, गुरु के सरने जाए।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय।।"
कबीर कहते हैं कि ईश्वर रूठ जाए। कोई फिकर नहीं कि गुरु की शरण जा सकते हैं। ईश्वर के रूठने की कोई फिकर नहीं--गुरु की शरण जाया जा सकता है। लेकिन अगर गुरु रूठ जाए तो फिर क्या करोगे? फिर तो हरि भी सहाय नहीं हो सकता।
कारण है। कारण यह है कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच खड़ा है गुरु, वह सेतु है। अगर गुरु रूठ जाए तो सेतु हट जाता है। तुम्हें तो परमात्मा की कोई खबर नहीं, सिर्फ शब्द तुमने सुना है। उसका कोई अता-पता भी नहीं। तुम जाओगे कहां उसकी सहायता लेने? तुम कैसे खोजोगे उसे? किससे पूछोगे? न तुम्हें शरीर की चौपड़ का कोई पता है; न प्रेम के पासे का तुम्हें कोई पता है। तुम कारागृह में बंद ही रहोगे, क्योंकि परमात्मा है बाहर का खुला आकाश। तुम कारागृह के अतिरिक्त खुले आकाश को जानते नहीं। तुम्हारा वही जीवन है। बीच का आदमी खो गया, तो परमात्मा सहायता भी करना चाहे तो भी नहीं कर सकता।
यह बड़ी मधुर बात कह रहे हैं। तुम्हारी सहायता तो वही आदमी कर सकता है
जो दोनों के बीच है; जिसका एक पैर परमात्मा में है--खुले आकाश में है--और एक पैर तुम्हारे कारागृह में जमा है। वही सेतु हो सकता है, जो आधा तुम जैसा है और आधा परमात्मा जैसा है।
हिंदुओं की धारणा है नरसिंह की--आधा पशु। पश्चिम नहीं समझ पाता कि यह क्या बात है? नरसिंह मुक्ति का उपाय है। कथा है कि प्रहलाद का पिता मर नहीं सकता था; आशीर्वाद था उसे। उसने सब तरह की सुरक्षा कर ली थी। आशीर्वाद में उसने व्यवस्था कर ली थी कि मनुष्य न मार सकेगा, पशु न मार सकेगा। घर के भीतर कोई न मार सकेगा, घर के बाहर कोई न मार सकेगा। लेकिन कितनी ही व्यवस्था करो, जीवन कोई कानून नहीं है। और कानून तक में से रास्ता निकल आता है, तो जीवन में से तो निकल ही आएगा। और मृत्यु हो तो उसकी मुक्ति हो सकती थी। और कोई मुक्ति का उपाय नहीं। मरे बिना कोई मुक्त हुआ? तो परमात्मा को आधी देह पशु की, आधी देह मनुष्य की रखनी पड़ी और बीच द्वार पर, देहरी पर, प्रहलाद के पिता की हत्या करनी पड़ी। यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रतीक है।
गुरु नरसिंह है और तुम्हें मारेगा; क्योंकि बिना मारे तुम अमृत को उपलब्ध न हो सकोगे। सदगुरु मार्या बाण--वह तुम्हें मिटाएगा, क्योंकि

तुम्हारे मिटने में ही तुम्हारा असली आविर्भाव है। तुम्हारी राख से ही तो तुम्हारी परमात्म-अवस्था का जन्म होना है। बीज टूटेगा तो वृक्ष होगा। तुम बिखरोगे तो तुम आत्मा बनोगे। तो गुरु मारेगा। और देहरी पर ही मारे जा सकते हो तुम, क्योंकि देहरी से बाहर खुला आकाश है। वहां तुम जा नहीं सकतेः भय है। भीतर कारागृह हैं। मध्य द्वार पर जहां गुरु खड़ा है----।
गुरु यानी द्वार। जीसस बार-बार कहते हैं, आई एम दि गेट--मैं हूं द्वार।
वे इतना ही कह रहे हैं कि मैं वहां खड़ा हूं जो मध्य-बिंदु है, जहां से एक हाथ तुम तक भी पहुंचता है और दूसरा हाथ परमात्मा तक भी।
गुरु नरसिंह है। वह तुम्हें भी द्वार पर खींच लेगा, क्योंकि आधा वह तुम जैसा है--पशु; आधा वह परमात्मा जैसा है।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय।
उपाय ही खो गया। हरि हैं उस किनारे, तुम हो इस किनारे--बीच का सेतु गिर गया। और वह दूसरा किनारा बहुत दूर; गुरु के होते, बहुत पास। जैसे कभी तुमने अगर दूरबीन से तारा देखा हो तो एकदम पास; दूरबीन हट गई, तारा बहुत दूर। जब शिष्य गुरु से परमात्मा को देखता है तो वह बहुत पास; और शिष्य गुरु को हटा कर देखता है तो इतना दूर कि सामर्थ्य खो जाए, यात्रा की हिम्मत ही टूट जाए। "कबिरा हिर के रुठते, गुरु के सरने जाए।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय।।
या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दीये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।"
यह शरीर तो मौत का घर है। विष की बेलरी। यहां तो सिवाय मौत के फल के और कोई फल लगता नहीं। फल से ही वृक्ष पहचाने जाते हैं। और जिस शरीर में मौत ही मौत के फल लगते हों, वह विष की बेलरी।
गुरु अमृत की खान--गुरु से पहली भनक आती है अमृत की। गुरु के पास बैठ
कर पहली दफा पगध्वनि सुनाई पड़ती है अमृत की। गुरु के पास पहली दफा उस संगीत का एकाध टुकड़ा तुम्हारी तरफ तैरता चला आता है जो अमृत से आता है, जहां कोई मृत्यु नहीं है।
या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। सीस दिए जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।
गर्दन भी चढ़ाकर मिल जाए गुरु तो महंगा मत समझना। क्योंकि गर्दन तो चढ़
ही जाएगी; आज नहीं कल मरघट पर चढ़ेगी। कोई ज्यादा कीमत भी गर्दन की है नहीं। सिर की क्या कीमत?
मैंने ऐसा सुना है कि एक सम्राट, जो भी कोई आता, उसको सिर झुका कर नमस्कार करता था। वजीरों ने कहाः यह उचित नहीं--सम्राट और सिर झुकाए! तो सम्राट ने कहाः ठीक, कुछ समय बाद उत्तर दूंगा। वजीरों ने कहाः उत्तर अभी दे सकते हैं, अगर उत्तर है। सम्राट ने कहाः उत्तर तो है; लेकिन तुम जब तक तैयार नहीं तब तक उत्तर न दे सकूंगा। प्रश्न पूछ लेना काफी नहीं है, उत्तर के लिए उत्तर को झेलने की तैयारी भी चाहिए। रुको--समय पर, ठीक जब समय पकेगा, उत्तर दूंगा।
कुछ महीने बीत गए, बात भूल गई। बड़े वजीर को बुला कर एक दिन सम्राट ने
एक कारागृह के कैदी की, जिसको फांसी की सजा हो गई थी, उसकी गर्दन दी और कहाः बाजार में जाकर इसे बेच आओ। बड़ा वजीर भी भूल चुका था, थोड़ा हैरान भी हुआ। लेकिन जब सम्राट की आज्ञा है तो माननी पड़ेगी। वह गया बाजार में। जिस दुकान पर गया, वहीं लोगों ने कहाः भागो, हटो, यहां गंदगी मत करो। आदमी की खोपड़ी-- इसका कोई मूल्य है? जहां गया वहीं दुत्कारा गया; जिससे कहा, उसी ने कहा, हटो यहां से। ले जाओ यहां से इस भयानक खोपड़ी को... खून टपकती... यहां किस लिए ले आए हो? और तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? आदमी की खोपड़ी अगर बिकती होती तो लोग उसको जलाते कि मरघट में राख कर आते? बेच लेते लोग ऐसे धनलोलुप हैं कि अगर खोपड़ी बिकती होती और पत्नी मर जाती तो खोपड़ी बेच लेते। दूसरी शादी के काम आता पैसा। वह तो बिकता नहीं है। आदमी के शरीर में कुछ भी बेचने योग्य नहीं है, इसलिए आदमी को मरघट में जला आते हो। नहीं तो तुम निकाल लेते बेचने योग्य जो भी होता।

थका-मांदा सांझ वापस लौट आया। उसने कहा, कहां का काम बताया। जहां गया वहीं दुत्कारा गया। लोग नाराज हो जाते हैं, बात ही नहीं करते हैं। पैसे की तो बात ही नहीं उठती। मुफ्त भी लेने को कोई तैयार नहीं है। क्योंकि मैंने आखिर में यह भी कोशिश की, भई कुछ मत दो; ले लो। उन्होंने कहाः क्या करेंगे? इसको फेंकने की हमें झंझट करनी पड़ेगी, तुम्हीं अपना ले जाओ।
एक आदमी से तो--वजीर ने कहा, मैंने यह भी कहा कि भैया कुछ पैसा ले ले, क्योंकि सम्राप ने कहा है, बेच आओ। अब जो भी अपने ही जेब से जाएगा, लेकिन पैसा ले ले। तो भी वह बोला कि तुम मुझे क्या पागल समझे हो? हटो यहां से। सम्राट ने कहाः तुम्हें ख्याल हैः तुम कहते थे, गर्दन मत झुकाओ, सिर
मत झुकाओ? जिस खोपड़ी का कोई भी मूल्य नहीं उसको झुकाने के काम में ले आने दो। क्यों मुझे बाधा डालते हो। इतना उपयोग तो कर ही लेने दो, क्योंकि इसका कोई और उपयोग तो दिखाई नहीं पड़ता।
ऐसा हुआ कि एक मुसलमान फकीर डाकुओं द्वारा पकड़ लिया गया। उस फकीर का नाम था जलालुद्दीन रूमी। बड़ा अनूठा आदमी हुआ। डाकुओं ने पकड़ लिया। वे उसे बेचने ले चले। उन दिनों गुलाम बिकते थे। रास्ते में--जलालुद्दीन मस्त फकीर था, स्वस्थ शरीर था, जवान था; कोई भी खरीद लेता, अच्छे दाम मिलने कि आशा थी--रास्ते मेंएक आदमी मिला। उसने कहा कि एक हजार दिनार देता हूं, एक हजार सोने के सिक्के, अगर यह आदमी बेचते हो। डाकू तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कभी सुना भी न था कि एक हजार एक गुलाम के मिल सकते हैं। वे तैयार हो गए। जलालुद्दीन ने कहाः रुको। यह तो कुछ भी नहीं है। तुम्हें मेरी कीमत का पता नहीं है। ज्यादा मिल सकते हैं। अभी असली कीमत को परखने वाले को आने दो। तो डाकू रुक गए। आगे चले। एक सम्राट गुजरता था। उसने भी फकीर को देखा। उसने कहा, मैं इसके दो हजार दिनार देता हूं। तब तो डाकुओं ने कहा, बात तो यह फकीर ठीक कहता है, उन्होंने पूछा जलालुद्दीन को कि क्या इरादा है? उसने कहा कि अभी भी नहीं।
फिर एक रईस गुजरता था। इसने तीन हजार दिनार भी कहे। फकीर से फिर उन्होंने पूछा। अब तो बहुत हो गई बात। उन्होंने कहाः तीन हजार कभी सुने नहीं। तो बेचने की तैयारी कर ली। जलालुद्दीन ने कहाः रुको, घाटे में रहोगे। बड़ा पशोपेश हुआ; सोचा कि बेच ही दे तीन हजार में, फिर कोई मिले न मिले। और इसका क्या भरोसा? लेकिन अब तक तो इसकी बात ठीक निकली है, शायद आगे भी ठीक हो।
तो वे रुक गए। आगे एक आदमी मिला--एक घसियारा, वह एक घास की टोकरी अपने सिर पर लिए जा रहा था--घास का बंडल। उस आदमी ने भी देखा कि इस फकीर को बेचने जा रहे हैं। उसने कहाः भाई, बेचते हो क्या? उन लोगों ने पूछाः तू क्या देगा? तेरे पास कुछ है? उसने कहाः घास की गठरी दे दूंगा। जलालुद्दीन ने कहाः दे दो। यह आदमी पहचानता है असली मूल्य। अब मत चूको, क्योंकि यही है कीमत इस देह की।
"या तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।"
अगर सब कुछ देकर भी गुरु मिल जाए तो भी सस्ता है, क्योंकि देने योग्य तुम्हारे पास है भी क्या? दोगे भी क्या? कुछ नहीं है, उसको भी देने में भयभीत हो। अगर कुछ होता तो न मालूम तुम क्या करते। ना-कुछ के बदले सब कुछ देने को कोई तैयार है; तुम ना-कुछ देने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाते। मैं तुमसे मांगता ही क्या हूं? जो तुम्हारे पास नहीं है, वह दे दो। सुन लो मेरी बातः जो तुम्हारे पास नहीं है वे दे दो। और जो तुम्हारे पास है, वह मैं तुम्हें दे दूंगा। लेकिन जो तुम्हारे पास नहीं है, कभी नहीं था, सिर्फ वहम है कि तुम्हारे पास था, वह भी छोड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते--तो फिर गुरु कभी भी न मिल सकेगा।
गुरु कोई बाहर की घटना थोड़े ही है, तुम्हारे भीतर की क्रांति हैं। तुम
जब सब देने को तैयार हो, तब गुरु हजारों मील दूर हो तो भी दौड़ा चला आएगा। आना ही पड़ेगा।
इजिप्त में वे कहते हैं कि जब शिष्य तैयार है, तो गुरु तत्क्षण मौजूद
हो जाता हैं। गुरु को खोजने जाने की भी जरूरत नहीं है; अगर तुम तैयार हो तो

गुरु को आना पड़ेगा। लेकिन तैयारी चाहिए सब कुछ दे देने की। और कुछ है नहीं। और जो है उसका तुम्हें पता नहीं। और जिसे तुम समझते हो कि है, वह सिर्फ सपना है।
"कस्तूरी कुंडल बसै!"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
नौवां प्रवचन

प्रार्थना है उत्सव

सूत्र

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।

सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देइकै, अंतर के पट खोल।।

माला कर कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआं तो दहुदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समान सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूं तित तूं।।

आनंद की खोज है। किसकी नहीं है? कौन है जो आनंद नहीं चाहता?
सत्य की भी खोज है। और ऐसा कौन है जो असत्य में न उठ जाना चाहे--अंधेरे
से प्रकाश में, संसार से परमात्मा में? नास्तिक भी वही चाहता है, चाहे उसे पता भी न हो। और जितने जोर से कोई नास्तिक कहता है कि मुझे ईश्वर में भरोसा नहीं, उतनी ही प्रगाढ़ता से बात साफ हो जाती है कि भीतर बड़ी खोज है ईश्वर की। उस खोज को दबाने का ही यह उपाय है--यह नास्तिकता। वह अपने को ही समझा रहा है कि जो है ही नहीं उसकी खोज पर क्या जाना; लेकिन भीतर कोई गहन चाह है जो धक्के मार रही है। उस चाह को ही वह दबा रहा है।
नास्तिकता आस्तिकता का दमन है। क्योंकि ऐसा तो कोई आदमी हो ही नहीं सकता जो आनंद न चाहे। और जिसने भी आनंद को खोजा, आखिर में वह पाता है कि उसकी खोज परमात्मा की खोज में बदल गई; क्योंकि परमात्मा के सिवाय और कोई आनंद नहीं। उससे कम पर तुम नाच न सकोगे। परमात्मा से कम पर तुम आनंदित न हो सकोगे। उससे कम के लिए तुम बने ही नहीं हो। वह परम ही प्रकट हो, वह परम ही तुम्हारे चारों ओर बरसने लगे--तभी संतृप्ति होगी, तभी परितोष होगा; तभी तुम्हारे घर के भीतर जो सतत रुदन चल रहा है, वह बंद होगा, आंसू सूखेंगे; तुम पहली बार हंसोगे; तुम्हारा पूरा अस्तित्व पहली बार खिल सकेगा--एक फूल की भांति!
इतनी खोज है! सभी की खोज है। लेकिन मिलन तो बहुत थोड़े से लेगों का हो पाता है। अंगुलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग उसके मंदिर में प्रवेश कर पाते हैं। मामला क्या है? इतने लोग खोजते हैं, सभी खोजते हैं--फिर यह खोज थोड़े से लोगों की क्यों पूरी होती है? उसके कारण को ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि वही कारण तुम्हें भी बाधा डालेगा। उसे अगर न समझा तो तुम खोजते भी रहोगे और पा भी न सकोगे। और वह कारण बड़ा सीधा-साफ है। लेकिन कई बार सीधी-साफ बातें दिखाई नहीं पड़तीं। कारण है कि लोग गलत मनोदशा में उसे खोजते हैंः दुख में तो उसकी याद करते हैं, और सुख में उसे भूल जाते हैं। बस यही सूत्र है--इतने लोग नहीं उसे उपलब्ध हो पाते--उसका।
दुख का स्वभाव परमात्मा के स्वभाव से बिल्कुल मेल नहीं खाता। दुख तो उससे ठीक विपरीत दशा है। वह है परम आनंद, सच्चिदानंद। दुख में तुम उसे खोजते हो। दुख का अर्थ है कि तुम पीठ उसकी तरफ किए हो, और खोज रहे हो। कैसे तुम उसे पा सकोगे? जैसे कोई सूरज की तरफ पीठ कर ले और फिर खोजने निकल जाए-- खोजे बहुत, चले बहुत लेकिन सूरज के दर्शन न हों; क्योंकि पहले ही पीठ कर ली।

दुख है परमात्मा की तरफ पीठ की अवस्था। दुख में तुम हो ही इसलिए कि तुमने पीठ कर रखी है। और उसी वक्त जब तुम्हारी पीठ परमात्मा की तरफ होती है, तभी तुम्हें उसकी याद आती है। जब तुम सुख में होते हो तब तुम उसे भूल जाते हो।
परमात्मा सुख भी नहीं है, दुख भी नहीं है; लेकिन परमात्मा से दुख बहुत दूर है, सुख थोड़ा निकट है। दुख है परमात्मा की तरफ पीठ करके खड़े होना, और सुख है परमात्मा की तरफ मुंह करके खड़े होना। जिन्होंने सुख में खोजा, उन्होंने पाया; जिन्होंने दुख में खोजा, वे भटके। दुख का तालमेल नहीं है परमात्मा से। वहां तुम रोते हुए न जा सकोगे। वह द्वार सदा रोती हुई आंखों के लिए बंद है। वहां रुदन का प्रवेश नहीं; नहीं तो अपने रोने को उसके प्राणों में भी गुंजा दोगे।
अस्तित्व के द्वार बंद हैं उनके लिए, जो दुखी हैं; अस्तित्व अपने द्वार खोलता है केवल उन्हीं के लिए जो नाचते, गीत गाते, गुनगुनाते आते हैं। अस्तित्व उत्सव है; वहां मरघटी सूरत लेकर नहीं जाया जा सकता। अस्तित्व परम जीवन है; वहां उदासी का कोई काम नहीं है।
लेकिन जब दुख आता है तब तुम याद करते हो। वह याद व्यर्थ हो जाती है। वही तो क्षण थे जब याद का कोई अर्थ ही नहीं है। लेकिन तुम्हारी भी तकलीफ मैं समझता हूंः दुख में तुम याद करते हो ताकि दुख हट जाए। वह भी परमात्मा की याद नहीं है, सुख की आकांक्षा है। जब तुम दुख में उसे पुकारते हो तो तुम उसे नहीं पुकारते, तुम सुख को पुकारते हो। तुम उसे पुकारते हो इसलिए ताकि सुख मिल जाए, यह दुख हटे। इसीलिए तो तुम सुख में नहीं पुकारते कि अब जरूरत ही क्या रही; जो पाना था वह मिल ही गया, अब परमात्मा की क्या जरूरत रही। इसलिए दुख में अगर तुम पुकारो तो तुम सुख की आकांक्षा करते हो। सुख की आकांक्षा से प्रार्थना का कोई संबंध नहीं। सुख में जब पुकारों तब परमात्मा की आकांक्षा करते हो; क्योंकि सुख तो था ही। सुख के लिए तो पुकार ही नहीं सकते थे--अब तो तुम परमात्मा को उसी के लिए पुकार रहे हो। और जब तुम उसी के लिए पुकारते हो, तभी सुनी जाती है प्रार्थना; उसके पहले नहीं सुनी जा सकती। सुख में जिसने पुकारा, उसका अर्थ हो गया कि उसे सुख काफी नहीं है; उसने समझ ली सुख की व्यर्थता, तभी तो पुकाराः उसने जान लिया कि सुख क्षणभंगुर है; अभी है, अभी गया; इसमें ज्यादा रमने की जरूरत नहीं, इसमें उलझने का कोई उर्थ नहीं। उसने सुख की व्यर्थता को जान लिया तभी तो पुकारा। दुख की व्यर्थता तो सभी जानते हैं; जो सुख की व्यर्थता जान लेता है वही संन्यस्त हो जाता है। दुख को तो सभी छोड़ना चाहते हैं; जो सुख को भी छोड़ने को तत्पर हो जाता है, उसकी ही प्रार्थना सुनी जाती है। अब वह प्रौढ़ हुआ।
दुख छोड़ने की बात तो बचकानी है। कांटा गड़ जाए--कौन है जो उसे नहीं निकाल देना चाहता? लेकिन जब फूल गड़ता है, जब तुम फूल को भी निकाल कर फेंक देने को तत्पर हो जाओ... । और फूल भी गड़ता है। कांटे तो गड़ते ही हैं, फूल भी गड़ता है। लेकिन फूल की गड़न को जानने के लिए बड़ी संवेदनशील चेतना चाहिए। फूल की चुभन को जानने के लिए बड़ा होश चाहिए। कांटा गड़ता है तो नींद में पड़े आदमी को भी पता चलता है; शराब पिये आदमी को भी पता चलता है। फूल गड़ता है, यह तो तभी पता चलेगा, जब तुमने ध्यान के मार्ग पर दो चार कदम उठाए हों, और तुम संवेदनशील बने होओ, और तुमने जीवन को जाग कर देखना शुरू किया हो, थोड़ा होश आया हो--तब तुम पाओगे कि फूल भी गड़ता है। तब जो प्रार्थना उठेगी, वही प्रार्थना पहुंचती है उसके द्वार तक। और इस प्रार्थना में रुदन नहीं होगा। इस प्रार्थना में आंखों में आंसू नहीं होंगे। इस प्रार्थना में सुख की मांग नहीं होगी। यह प्रार्थना भिखारी की प्रार्थना नहीं होगी। यह प्रार्थना सम्राट की प्रार्थना होगी; क्योंकि अब जिसे सुख की भी आकांक्षा न रही। वही सम्राट है।
भिखारी लौटा दिए जाते हैं।
रहीम ने कहा है, बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। वह इसी घड़ी
के लिए कहा है कि परमात्मा के द्वार पर जो बिना मांगे खड़ा हो जाता है, उसे तो सब मिल जाता है, मोती बरस जाते हैं; और जो भिखारी की तरह खड़ा होता है, उसे

दो रोटी के टुकड़े भी नहीं मिलते। असल में भिखारियों की अस्तित्व में कोई जगह नहीं है; वहां तो जगह केवल सम्राटों की है।
इसलिए तो सारे ज्ञानियों ने कहा है, तुम इच्छारहित हो जाओ, तुम मांगो मत, तुम जरा रुको, मांगो मत--और देखो कि कितना मिलता है! मांग-मांग कर ही तुम गंवाए जा रहे हो। जितना तुम मांगते हो उतना कम मिलता है; जितना कम मिलता है उतनी तुम्हारी मांग बढ़ती जाती है; उतना ही और कम मिलता जाता है। जिस दिन मांग पूरी हो जाती है, मिलना बंद हो जाता है। उस दिन तुम परम दीन हो जाते हो।
इससे उलटी है यात्रा।
मांगो कम, मिलता ज्यादा। बिन मांगे मोती मिलें। और जिस दिन तुम्हें
यह सूत्र समझ में आ जाता है, उस दिन प्रार्थना में मांग खो जाती है; प्रार्थना हृदय का उच्छ्वास हो जाती है। उसमें कुछ मांग नहीं होती।
दुखी आदमी तो बिना मांगे कैसे प्रार्थना करेगा?
दुख के स्वभाव को थोड़ा समझ लें।
दुख का पहला लक्षण है कि दुख आदमी को सिकोड़ता है। तुमने भी अनुभव किया होगाः जब तुम दुखी होते हो तो सब सिकुड़ जाता है--जैसे प्राण सिकुड़ गए--जम गया पत्थर की तरह सब कुछ। जब तुम दुख में होते हो तो तुम चाहते हो कि एक कोने में छिप जाओ; कोई तुम्हें मिले न, कोई तुमसे बोले न।
इसीलिए तो बहुत दुख की अवस्था में लोग आत्मघात कर लेते हैं। आत्मघात
का मतलब इतना ही है कि वे कब्र में छिप जाना चहते हैं; अब कोई उपाय नहीं देना चाहते कि कोई दूसरा उनसे मिले; अब जीवन से बिल्कुल टूट जाना चाहते हैं।
दुख सिकोड़ता है। दुख बंद करता है। दुख चाहता है कि अंधेरे में डूब जाओ। दुख आत्मघात सिखाता है। और परमात्मा है विस्तार और दुख है सिकुड़ना-- उनका तालमेल नहीं। परमात्मा का अर्थ हैः यह जो फैला हुआ है सब ओर; यह जो अनंत तक फैलता चला गया है; जिसकी कोई सीमा नहीं; जिसके कण-कण में पद-चिह्न हैं, और पत्ती-पत्ती पर जिसकी छाप है। लेकिन तुम उसकी सीमा न पा सकोगे, जो सब तरफ फैलता ही चला गया है।
परमात्मा का स्वभाव विस्तार है। हिंदुओं ने जो शब्द परमात्मा के लिए चुना है--वह हैः ब्रह्म। ब्रह्म का अर्थ होता हैः विस्तीर्ण; जो फैलता ही चला गया है। और दुख सिकोड़ता है; और परमात्मा है फैलाव। तुम विपरीत हो गए, तुम मेल न खा सकोगे।
सुख फैलता है। सुख में तुम थोड़े फैलते हो। सुख में तुम दूसरे से मिलना चाहते हो; भोज देते हो मित्रों को, प्रियजनों को, और परिवार को निकट बुलाते हो; हंसते हो, गाते हो; मिलते हो, जुलते हो। सुखी आदमी अपने सुख को बांटना चाहता है, क्योंकि सुख अकेले नहीं भोगा जा सकता। दुख अकेले भोगा जा सकता है। उसके लिए दूसरे की जरूरत ही नहीं है। दुख बिल्कुल निजी है। सुख फैलाव मांगता है, और भी प्राण मांगता है आस-पास, जिनमें इस सुख का प्रतिबिंब बने, झलक उठे। सुख फैले। इसलिए सुख सदा बंटता है, बंटना चाहता है। सुख में तुम्हारे प्राण थोड़ा सा आयाम लेते हैं; तुम थोड़े से फैलते हो।
यह थोड़ा सा फैलना प्रार्थना का क्षण बन सकता है; क्योंकि अभी तुम परमात्मा जैसे हो--बड़े छोटे अर्थों में! अगर वह विराट है--सागर, तो तुम एक छोटी बूंद हो। लेकिन अभी तुम्हारा स्वभाव, गुणधर्म एक जैसा हैः तुम भी फैल रहे हो, परमात्मा भी फैल रहा है। अभी तुम एक कदम उसके साथ चल सकते हो; और जो एक कदम उसके साथ चल लिया, वह फिर कभी वापस नहीं लौटता। उसके साथ एक कदम चल लेना इतनी परिपूर्ण तृप्ति है, ऐसे अपरिसीम धन की उपलब्धि है कि फिर कौन पीछे लौटता है, फिर कौन देखता है।
एक कदम उठ जाए, मंजिल आधी पूरी हो गई। एक कदम उठ जाना ही काफी है। स्वाद आ गया। फिर तो तुम फैलते ही चले जाओगे। फिर तुम भूल ही जाओगे सिकुड़ना। फिर हजार सिकुड़ने की स्थितियां खड़ी हो जाएं, तुम छलांग लगा कर बाहर हो जाओगे। तुम कहोगे, मैं सिर्फ फैलना जानता हूं, मैंने फैलने का रस ले लिया है; अब मैं वह पागल नहीं जो सिकुड़े, कि कोई गाली दे और मैं दुखी होकर सिकुड़ जाऊं। अब सिकुड़ना मैं चाहता ही नहीं। अब तुम कुछ भी करो, तुम

मुझे सिकोड़ न सकोगे। अब तुम गाली दोगे, मैं धन्यवाद देकर फैल कर आगे बढ़ जाऊंगा।
जिसने एक बार स्वाद ले लिया परमात्मा के साथ एक कदम चलने का, वही जानता है, प्रार्थना क्या है। वह एक कदम चलना सुख में हो सकता है। यह तुम्हें बहुत जटिल लगेगा। मगर इसी कारण तुम चूक रहे हो। तुम दुख में पुकारते हो--तब तुम्हारा कदम उठने को तैयार ही नहीं, पक्षाघात से भरा है; तब तुम चलने की कोशिश करते हो। और जब तुम्हारे प्राणों में जोश है और जब तुम्हारे पैर में ऊर्जा है, और जब तुम नाच सकते हो, दौड़ सकते हो--तब तुम भूल ही जाते हो कि यह वक्त था जब मैं परमात्मा के साथ हो लेता। सुख में विस्मरण हो जाता है। दुख में याद होती है--इसलिए तालमेल नहीं बैठता; तुम चूकते चले जाते हो।
दुख का स्वभाव अंधेरा है। आनंद का स्वभाव प्रकाश है, परम प्रकाश है। अंधेरे से उठी प्रार्थना प्रकाश के लोकों तक नहीं पहुंच सकती, अंधेरे में ही भटकती है। अंधेरे से उठी प्रार्थना भी अंधेरी होती है; वह रोशनी के जगत में प्रवेश नहीं कर सकती।
तुमने कभी अंधेरे के टुकड़े की रोशनी में प्रवेश करते देखा है कि तुम
घर में बैठे हो, दीया जला है, सब रोशन है, और देखा है कि खिड़की से एक अंधेरे का टुकड़ा भीतर चला आ रहा है? कभी ऐसा तुमने देखा है कि एक छोटी बदली जैसा अंधेरे का टुकड़ा आ गया घर में?
रोशनी आ सकती है अंधेरे में; अंधेरा रोशनी में नहीं जा सकता। तुम घर में बैठे हो अंधेरे मेंः यह हो सकता है, राह से गुजरता राहगीर लालटेन लिए हो तो उसकी रोशनी तुम्हारे कमरे में आ जाएगी, तैर जाएगी। लेकिन अंधेरा प्रकाश में नहीं आ सकता। रोशनी प्रकाश में जा सकती है।
तो यह तो हो सकता है कि परमात्मा तुममें आ जाए, जब तुम अंधेरे से भरे हो; लेकिन यह नहीं हो सकता कि अंधेरे में उठी प्रार्थना परमात्मा में चली जाए। और जब तुम अंधेरे में हो और दुख में हो, परमात्मा आ जाए तो तुम उसे पहचान न सकोगे। वह आता भी है, लेकिन दुख में भरी आंखें सब तरफ अंधेरा देखता हैं और रोशनी को पहचान नहीं सकतीं। वे मान ही नहीं सकतीं।
बहुत बार इस पृथ्वी पर परमात्मा चला है, बहुत रूपों में चला हैः कभी बुद्ध, कभी कृष्ण, कभी क्राइस्ट के रूप में। उसने तुम्हारे द्वार पर दस्तक भी दी है, लेकिन तुम पहचान नहीं पाए; तुमने हजार बहाने खोज लिए हैं अपने अंधेरे में, और तुमने अपने को समझा लिया है कि यह भी हमारे जैसा ही आदमी है--होगा थोड़ा ज्यादा समझदार! वह भी बड़ी मुश्किल से तुमने उतनी स्वीकृति दी है।
प्रकाश अंधेरे में आए भी तो तुम आंख बंद कर लेते हो। तुम अंधेरे के आदी हो। और दूसरी बात तो हो ही नहीं सकती कि अंधेरे में उठी प्रार्थना, और प्रकाश के लोक में प्रवेश कर जाए। जो अंधेरे से उठता है, अंधेरे का स्वभाव है उसमें।
जब तुम सुख में मग्न हो, जब तुम सुख में ऐसे मगन हो कि तुम बांटना चाहते हो, उसी क्षण अगर तुमने प्रार्थना की तो सुख का स्वभाव परम प्रकाश का तो नहीं है; वह कोई महासूर्य नहीं है सुख; छोटा मिट्टी का दीया है--लेकिन मिट्टी के दीये में भी ज्योति जलती है, उसका स्वभाव तो सूरज का ही है। इसीलिए तो सुख की इतनी आकांक्षा है। सुख की आकांक्षा में वस्तुतः आनंद की आकांक्षा छिपी है। किसी दिन तुम खोज लोगे कि सुख की आकांक्षा में वास्तविक आकांक्षा क्या है। इसलिए तो तुम सुख को रोकना चाहते हो। वह तो क्षणभंगुर है। मिट्टी का दीया कितनी देर चलेगा। ज्योति तो बुझेगी, तेल तो चुकेगा। इसलिए तो तुम सुख को जोर से पकड़ते हो कि खो न जाए; शाश्वत हो जाए सुख। सुख शाश्वत नहीं हो सकता; यद्यपि शाश्वत सुख भी है। लेकिन तुम्हारी आकांक्षा साफ है कि तुम सुख को शाश्वत बनाना चाहते हो। तुम समझ नहीं पा रहे हो--तुम आनंद की तलाश में हो।
आनंद शाश्वत सुख है। सुख आनंद की एक झलक है--इस लोक में उतरी।
ऐसा समझो कि आकाश में चांद है, और झील के पानी पर उसका प्रतिबिंब बनता है--बस ऐसा ही आकाश में आनंद भरा है और तुम्हारे मन की तरंगों से भरी झील पर

उसका प्रतिबिंब बनता है--वह सुख है। और जब वह भी खो जाता है--प्रतिबिंब भी खो जाता है--तब दुख है। जब प्रतिबिंब बन रहा है तब तो तुम असली चांद की तलाश में निकल सकते हो, क्योंकि तुम्हारे बीच और असली चांद के बीच थोड़ा-सा नाता है--प्रतिबिंब का ही सही। बहुत सपनीला है; जरा-सा कोई हिला दे झील को, मिट जाएगा। लेकिन अगर झील शांत हो तो तुम अपने बनते प्रतिबिंब की राह से ही असली चांद तक भी पहुंच सकते हो।
सुख झलक है परमात्मा की संसार में। दुख उसका अभाव है। जब उसकी झलक है, तभी पुकार लेना, तब वह करीब है, तब कहीं आस-पास है। झलक झूठी है; लेकिन जिसकी झलक है, वह सच है। जब झलक से तुम भरे हो, तब सब काम छोड़ कर प्रार्थना में लीन हो जाना। यही बड़ी कठिनाई हैः सुख में तो जरूरत ही मालूम नहीं पड़ती।
एक मां अपने छोटे बेटे को कह रही थी कि मैं दो दिन से देख रही हूं कि तूने रात की प्रार्थना नहीं की, परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया। समझाने के लिए उसने कहा, कि देख इस गांव में गरीब बच्चे हैं जिनको दो जून रोटी भी नहीं मिलती, कपड़े फटे-चीथड़े पहने हुए हैं। तुझे भगवान ने सब कुछ दिया है। धन्यवाद देना जरूरी है। उस लड़के ने सिर हिलाया। उसने कहा कि यही तो मैं सोचता हूं। तो प्रार्थना उनको करनी चाहिए कि मुझको? जिनको न रोटी है, न कपड़े हैं, मैं किसलिए प्रार्थना करूं? सब मिला ही हुआ है और बिना ही प्रार्थना किए हुए मिला हुआ है--तो मुझे क्यों झंझट में डालना? प्रार्थना उनको करनी चाहिए जिनको कुछ नहीं मिला है।
यह बच्चा तुम्हारे सबके मन की बात कह रहा है। यही तुम कह रहे हो। जब तुम दुख में हो, तब प्रार्थना; जब तुम सुख में हो तब क्या जरूरत है। इसलिए सुख में आदमी सहज ही भूल जाता है। जब मौका था नाव को छोड़ देने का सागर में, तब तो तुम भूल जाते हो और जब मौका बिल्कुल नहीं था सागर में नाव को छोड़ने का--तूफान था सागर में, ज्वार उठा था, भयंकर आंधी चलती थी और हवाएं प्रतिकूल थीं--तब तुम अपनी छोटी सी नाव को लेकर सागर के किनारे पहुंचते हो। तुमने डूबने की तैयारी ही कर ली। और जब सागर में अनुकूल हवा थी कि पतवार भी न चलानी पड़ती, सिर्फ पाल तान देते, और सागर की हवा ही तुम्हें ले जाती, डूबने का कोई खतरा न था, न तूफान था न आंधी थी, सागर में छोटी-छोटी लहरें थीं, जिनमें बड़ा निमंत्रण था--तब तुम भूल ही जाते हो कि यात्रा पर निकलना है।
तुम गलत मौका चुनते हो, इसलिए परमात्मा से चूके हुए हो। जब आदमी बीमार होता, अस्वस्थ होता, तब वह प्रार्थना करता है। बीमारी में परमात्मा की याद कठिन है। हां, जिसने जान लिया, उसको तो हर घड़ी संभव है; उसको तो उसकी याद ही है, और कुछ याद नहीं रह जाता। लेकिन जो यात्रा पर निकल रहा है, उसको बीमारी में परमात्मा की याद करनी कठिन है। क्योंकि जब शरीर रुग्ण होता है तो शरीर ही ध्यान को आकर्षित करता है। सिर में दर्द हो तो सिर का दर्द ही याद आता है। उस वक्त तुम कितना ही राम-राम जपो, हर राम के पीछे सिरदर्द होगा, दो राम के बीच में सिरदर्द होगा, आगे-पीछे सब तरफ सिरदर्द होगा। और राम-राम जपने से और सिरदर्द बढ़ेगा, जब शरीर रुग्ण है तब शरीर मांगता है सारा ध्यान। उस समय तुम प्रार्थना करने बैठे हो। जब शरीर स्वस्थ है तब शरीर भूला जा सकता है। स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है। जिन क्षणों में तुम शरीर को बिल्कुल भूल सको, वही स्वास्थ्य का क्षण है; क्योंकि जब भी शरीर बीमार होगा तो तुम पूरा नहीं भूल सकते। जहां बीमारी है, वहां शरीर तुमको चाट मारता रहेगा। सिर में दर्द है तो वह याद दिलाता रहेगा। और यह स्वाभाविक है, नहीं तो सिरदर्द को तुम मिटाओगे कैसे? शरीर कहता है, यहां तकलीफ है, इसको मिटाओ। वह सूचन कर रहा है। वह खबर भेज रहा है कि सिर में तकलीफ है, यह पहले जरूरी है, इसको मिटाओ; प्रार्थना वगैरह पीछे कर लेना; अभी अस्पताल जाओ, यह वक्त मंदिर जाने का नहीं है। वह यह कह रहा है कि शरीर बड़ी तकलीफ में है।
और शरीर तुम्हारा आधार है। अगर उसकी याद भूल जाए तो शरीर सड़ ही जाएगा।
तो शरीर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए समस्त साधना-पद्धतियां चाहती हैं कि तुम पहले स्वस्थ हो जाओ। लेकिन जैसे तुम स्वस्थ होते हो, वैसे ही तुम प्रार्थना को एक तरफ रख देते हो। तब दूसरे ज्यादा जरूरी काम

तुम्हें करने जैसे मालूम पड़ते हैं। असल में जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुम शरीर को भोगना चाहते हो। तब कौन प्रार्थना करे! जब रुग्ण होते हो, जब तुम शरीर को भोग नहीं सकते, तब तुम प्रार्थना करते हो। तब प्रार्थना हो नहीं सकती। जब स्वस्थ होते हो तब तुम कहते हो, कर लेंगे प्रार्थना। अभी कोई जल्दी है? अभी तो जवान हैं। आने दो बुढ़ापा, कर लेंगे प्रार्थना। अभी कौन समय खराब करे! अभी जिंदगी हरी-भरी है। अभी सब तरफ निमंत्रण है। अभी बहुत कुछ भोगने को है।
उमरखैयाम ने लिखा है कि सुबह-सुबह मैंने जाकर मधुशाला के द्वार पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आई, अभी मधुशाला खुलने का समय नहीं है। तो मैंने कहा, सुनो समय-असमय की बात नहीं, सूरज निकल चुका है, सांझ होने में देर कितनी लगेगी; थोड़ा ही समय हाथ में है; जितना पी सकूं, पी लेने दो।
जब तुम स्वस्थ हो, तब लगता है थोड़ा ही समय हाथ में है, जल्दी ही सांझ हो जाएगी। तब तुम मधुशाला की तरफ दौड़ते हो। जब तुम दौड़ नहीं सकते, पंगु हो, बिस्तर पर पड़े हो, जब कुछ और करने को नहीं सूझता, तब तुम प्रार्थना करते हो। प्रार्थना ऐसी मालूम पड़ती है कि तुम्हारे जीवन-व्यवस्था की फेहरिश्त पर आखिरी चीज है। जब कुछ करने को नहीं होता, तब तुम प्रार्थना करते हो। तुम किसे धोखा दे रहे हो?
प्रार्थना तुम्हारी फेहरिश्त पर जब प्रथम होगी तभी सुनी जा सकेगी। वस्तुतः तो प्रार्थना ही जब अकेली तुम्हारी फेहरिश्त हो जाएगी, जब प्रार्थना ही तुम्हारा भोग, जब प्रार्थना ही तुम्हारा प्रेम, जब प्रार्थना ही तुम्हारा धन, जब प्रार्थना ही तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी, जब प्रार्थना ही सर्वस्व होगी, तभी सुनी जा सकेगी। जब पूरे प्राणपण से एक लपट की भांति प्रार्थना उठेगी, तभी वह ज्योति परमात्मा के चरणों तक पहुंच पाती है।
लेकिन जब तुम दीन-हीन होते हो, रुग्ण, अस्वस्थ, अस्पताल में पड़े, टांग-हाथ बंधे, तब तुम प्रार्थना करते हो। तुम्हें प्रार्थना के लिए और कोई समय नहीं मिलता। जब तुम बूढ़े हो जाते हो, जीवन चुक जाता है, हाथ से समय खो गया होता है, सब अवसर तुमने मिट्टी कर दिए, जब जीवन की आखिरी घड़ी आने लगी और मौत की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी--तब तुम भयभीत, भय-कातर, प्रार्थना में संलग्न हो जाते हो।
नहीं, अस्वस्थ दशा में प्रार्थनानहीं हो सकती। प्रार्थना के लिए एक आधारभूत स्वास्थ्य की जरूरत है। यह तो ऐसे ही है जैसे कि किसी वृक्ष को पानी न मिले, जमीन सूख गई हो, धूप भयंकर पड़ती हो, वृक्ष का तन-प्राण कुम्हला गया हो--और तब वृक्ष फूलों को लाने की कोशिश करे। कैसे फूल आएंगे? फूल तो वृक्ष के स्वास्थ्य से उत्पन्न होते हैं। फूल तो वृक्ष के भीतर के स्वास्थ्य की खबर हैं। फूल तो वृक्ष का अपरिसीम दान है--आनंद का। फूल तो यह कह रहे हैं कि वृक्ष अब इतना भर गया है ऊर्जा से कि बांटने को तत्पर है। और वृक्ष के पास अब इतना है कि वह देगा। वह अपनी सुवास से अपने को बांटेगा। अनजान-अपरिचित हवाएं ले जाएं अब उसकी वास को, पहुंचा दें दूर-दिगंत तक! वृक्ष में जैसे फूल हैं वैसे ही जीवन में प्रार्थना है। जब तुम भरे- पूरे हो, जब सब तरफ ऊर्जा प्रवाहित होती है, जब सब तरफ भीतर युवापन होता है--तभी जीवन के फूल, तभी प्रार्थना के फूल संभव होते हैं।
लेकिन तुम उलटे क्षण चुनते हो।
ध्यान कोई थैरेपी या चिकित्सा नहीं है। चिकित्सा के लिए अस्पताल है, मंदिर नहीं। चिकित्सा के लिए डाक्टर है, गुरु नहीं। गुरु के पास तो तुम परिपूर्ण स्वस्थ होकर आना, तो वह तुम्हें अनंत की यात्रा पर सरलता से ले जा सकेगा। लेकिन तुम गुरु के पास ऐसे आते हो, जैसे वह कोई डाक्टर हो।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, बीस साल से मिर्गी आती है, वह मिटती नहीं। उसके लिए डाक्टर है, उसके लिए अस्पताल है। यहां मैं मिर्गी ठीक करने को नहीं हूं। और मिर्गी ठीक हो जाएगी, फिर करोगे क्या? जिनकी ठीक है, वे क्या कर रहे हैं? वही करोगे न? मिर्गी में खुद ही उलझे हो, मिर्गी ठीक होगी तो दस-पांच को और उलझा दोगे। और क्या करोगे?

जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जीसस एक गांव में आए, और उन्होंने एक आदमी को, युवा आदमी को, सुंदर आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते देखा। वे पहचान गए उस आदमी को, क्योंकि वह आदमी पहले अंधा था और जीसस ने ही हाथ से छूकर उसकी आंखें ठीक की थीं। तो उसे पकड़ा और कहा कि नासमझ, क्या मैंने तुझे आंखें इसलिए दी थीं कि तू वेश्याओं का पीदा कर? उस आदमी ने बड़े क्रोध से जीसस की तरफ देखा और कहा, आंखों का उपयोग ही क्या है? यह तो तुम्हें देने के पहले ही सोच लेना था। आखिर आंख मैं चाहता किसलिए था? --इसलिए कि रूप देखूं। अब आंख देकर शिकायत कर रहे हैं?
जीसस को उसने चौंका दिया होगा। उन्होंने सोचा था कि शायद आंख देने से आंख परमात्मा की तरफ उठेगी। लेकिन बहुत आंख वाले हैं; किसकी आंख परमात्मा की तरफ उठ रही है? अंधा जब तक था, तब तक शायद वह प्रार्थना करता रहा हो, और परमात्मा की स्तुति गाता रहा हो; जब आंख मिल गई तो आदमी वेश्या की तरफ जाता है। आदमी बहुत अदभुत है।
वे गांव के भीतर घुसे। उन्होंने एक शराबघर के बाहर, एक शराबी को बड़ा उत्पात मचाते देखा, शोरगुल मचा रहा है, अनाप-शनाप गालियां बक रहा है, मुंह से फसूकर गिर रहा है। वे उसको भी पहचान गए। उन्होंने कहा, अरे मेरे भाई, तू तो बिस्तर पर पड़ा था, हड्डी-हड्डी हो गया था--भूल गया। उस आदमी ने भी गौर से जीसस को देखा और कहा, हां ठीक, मैं पहचानता हूं। तुम्हीं ने मुसीबत खड़ी की। मैं तो अपनी शांति से अपने बिस्तर पर पड़ा था। अब तुमने मुझे स्वस्थ कर दिया; अब स्वास्थ्य का क्या करूं?
स्वास्थ्य हो तो आदमी शराब-घर जाता है, बीमार हो तो सदगुरु की तलाश करता है। जीसस उदास होकर गांव के बाहर निकल गए। अपने ही किए पर पछतावा होने लगा होगा कि, यह मैंने क्या किया! मैं तो सोचता था कि स्वस्थ आदमी पूजा-प्रार्थना में लीन होगा; और वह मुझ पर नाराज हो रहा है कि अब क्या करूं।
गांव के बाहर जाते थे तो उन्होंने एक आदमी को देखा, जो एक वृक्ष से फंदा लगा कर अपनी फांसी लगाने की कोशिश कर रहा था। उन्होंने उसे रोका कि रुको, यह क्या कर रहे हो? जब वह पास आया तो देखा यह भी पुराने परिचितों में से था। यह आदमी मर चुका था, जीसस ने इसको जिंदा किया था। उस आदमी ने कहा, तुम मेरे दुश्मन हो, मित्र नहीं। मैं तो मर गया था, तो शांति हो गई थी; तुमने मुझे मरे से उठा दिया। और यह उपद्रव इतना ज्यादा है कि मैं अब जीना नहीं चाहता। तो मैं मरने का इंतजाम कर रहा हूं। और जो भूल मेरे साथ की, दूसरे के साथ मत करना। जो मर जाए, उसको मर ही जाने देना।
क्योंकि जिंदगी इतना उत्पात है आखिर जीवन का करोगे भी क्या? इसे थोड़ा समझ लेना, क्योंकि अनेकों को ऐसी भ्रांति है कि सदगुरु कोई चिकित्सक है। है चिकित्सक, लेकिन बीमारियों की चिकित्सा नहीं करता, स्वस्थों की चिकित्सा करता है। वह चिकित्सा स्वस्थ आदमी की है, बीमार की नहीं। बीमार के लिए तो दूसरे लोग हैं, वे कर लेते हैं। उसके लिए झंझट में पड़ने की सदगुरु को कोई जरूरत नहीं है। सदगुरु तो स्वस्थ की चिकित्सा करता है; क्योंकि एक और महास्वास्थ्य है, एक और महाजीवन है--जो, जब तुम स्वस्थ हो, तभी उसी यात्रा पर निकल सकोगे। लेकिन अगर तुम स्वस्थ हो जाओ तो तुम सदगुरु के पास आते ही नहीं।
मेरे पास लोग आते हैंः बीमार हैं या अशांत हैं--शरीर से बीमार हैं या
मन के बीमार हैं। वे कहते हैं, बड़ी अशांति है, कोई मार्ग बताइए। जब चित्त तुम्हारा अशांत है, तब तो ध्यान करना बहुत मुश्किल होगा। तुम करीब-करीब विक्षिप्त दशा में हो। तुम्हारी अवस्था ऐसी नहीं है कि मैं तुमसे कहूं कि तुम पांच क्षण के लिए शांत बैठ जाओ तो तुम बैठ सको। मैं पूछता हूं, जब शांत थे, तब क्यों न आए? वे कहते हैं, जब शांत थे तब जरूरत ही क्या थी? अशांत हैं, इसलिए आए हैं।
इस बात का बहुत मूल्य है। स्मरण रखना जरूरी है, क्योंकि जितने शांत तुम मेरे पास आओगे, उतनी आसानी से काम हो सकेगा। नहीं तो मेरी ऊर्जा और तुम्हारी ऊर्जा पहले तो तुम्हें शांत करने में लगती है। व्यर्थ समय तो उसमें जाता है। और यह भी पक्का नहीं है कि शांत होने के बाद तुम टिकोगे।

शांत होकर तुम भागोगे बाजार में, क्योंकि शांति तुम इसलिए चाहते हो कि जरा मन शांत रहे तो धन थोड़ा और कमा लें; जरा मन शांत रहे तो आने वाला इलेक्शन लड़ लें। अब मन इतना अशांत है कि कहां जाएं, क्या करें--मुसीबत है!
मन की शांति तुम चाहते इसलिए हो कि संसार में थोड़ी सफलता और मिल जाए?
और संसार के कारण ही अशांति हो रही है। और शांति भी तुम इसीलिए चाहते हो कि संसार में और थोड़ी सफलता मिल जाए। अगर तुम शांत हो भी गए तो तुम उस शांति को नई अशांति को पाने में ही लगाओगे, और करोगे भी क्या?
इसलिए मेरी कोई उत्सुकता नहीं है कि तुम शांत हो जाओ। मेरी उत्सुकता
तो इसमें है कि तुम ठीक से समझ लो कि तुम्हारी अशांति के कारण क्या हैं? और तुम कारणों को छोड़ दो। शांत होने की फिक्र मत करो; जड़ को पकड़ लो कि अशांत होने के कारण क्या हैं।
कारण हैं महत्वाकांक्षा... कि बहुत धन इकट्ठा कर लें; कि बहुत बड़े पद
पर हो जाएं; कि जिंदगी में लोगों को करके दिखा दें कि कुछ हैं; कि इतिहास में नाम छूट जाए। यह तो तुम्हें अशांत कर रही है बात। अगर तुम सामान्य जीवन के लिए राजी हो जाओ, तो अशांति की जरूरत क्या है? रोटी तुम कमा लेते हो। दिल्ली दिक्कत दे रही है! दिल्ली पहुंचना है। बिस्तर तुम्हारे पास सोने का है, नींद तुम्हें ठीक आ सकती है; लेकिन बिस्तर पर नींद नहीं आ सकती है।, क्योंकि मन दिल्ली में है और तुम यहां पूना में सोते हो। फासला बहुत रहता है। मन दिल्ली में, तुम पूना में। दोनों एक साथ सोओ तो ही सो सकते हो। तनाव बना रहता है। इतना तो काफी है कि तुम पानी पी लो, खाना खा लो, छप्पर बना लो। हर आदमी के लिए काफी है। अगर जरूरतें पूरी करनी हों तो पृथ्वी काफी है। लेकिन अगर वासनाएं पूरी करनी हैं तो यह पृथ्वी क्या, अनंत पृथ्वियां हों तो भी काफी नहीं। तब अशांति पैदा होती है। जब तुम किसी ऐसी चीज के पीछे जाते हो जो कि व्यर्थ है, तब अशांति पैदा होती है। होनी ही चाहिए।
मैं शांत करके और तुम्हें मुसीबत में नहीं डालूंगा। तुम्हें अशांत होना ही चाहिए, तभी तो तुम जागोगे। तुम्हारी अशांति ही तो तुम्हें एक दिन इस बात का बोध दिलाएगी कि जो कर रहे हो, वह ऐसा है कि उससे अशांतति होगी ही। अब तुम हाथ आग में डाल रहे हो और हाथ जलता है और तुम कहते हो कि कुछ उपाय बता दीजिए कि हाथ न जले, और आग में तुम डाले ही जाते हो। जलना ही चाहिए, क्योंकि जलेगा तो ही तुम शायद खींचोगे।
अशांति में तुम ध्यान करने को उत्सुक होते हो। शांति में ध्यान करने
को उत्सुक हो तो ही ध्यान लग पाएगा। अशांति को हटाने के लिए कारण अलग कर दो। महत्त्वाकांक्षा छोड़ दो। कुछ होने का कुछ सार नहीं है। ना-कुछ होने को राजी हो जाओः अशांति ऐसे विदा हो जाएगी जैसे सुबह की ओस सूरज के उगते ही विदा हो जाती है। अशांति को मिटाने के लिए किसी ध्यान की जरूरत नहीं है। अशांति को मिटाने के लिए तो सिर्फ नासमझी को देख लेने की जरूरत है। सिकंदर होना है, हिटलर होना है--तो अशांत रहोगे ही। इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। तुम्हारी आकांक्षा यह है कि तुम हिटलर भी हो जाओ और शांत रहते हुए हो जाओ। इसलिए तुम ध्यान की तरफ आते हो। ध्यान तुम्हारे किसी काम न पड़ेगा। ध्यान तुम्हारा लगेगा भी नहीं।
एक राज्य के मिनिस्टर मेरे पास आते हैं। उनको चीफ मिनिस्टर होना है।
और वे बड़ी कोशिश करते हैं कि कुछ भी रास्ता बता दें शांत होने का, सब गुरुओं के पास जाते हैं कि शांति को कोई रास्ता... ! मैंने उनसे पूछाः तुम्हें करना क्या है शांति से? उन्होंने कहा कि न रात नींद ठीक से आती है, दिन में चित्त अशांत रहता है, किसी भी काम में मन नहीं लगा पाता--इसलिए पिछड़ा जा रहा हूं। दूसरे लोग मिनिस्टर होते जाते हैं, चीफ मिनिस्टर होते जाते हैं। और मैं आज पंद्रह साल से बस मिनिस्टर के पद पर ही उलझा हूं। अब तक मुझसे पीछे आने वाले लोग चीफ मिनिस्टर हो गए और मेरी अपनी उलझनें हैं कि कहीं सिरदर्द, कहीं नींद न आना, कहीं यह बीमारी, कहीं वह बीमारी। मैं ज्यादा सफर भी नहीं कर सकता, शरीर कमजोर है। तो मैं पिछड़ा जा रहा हूं। आप कुछ रास्ता बता दें कि चित्त शांत हो जाए।

चित्त शांत हो जाए तो उन्हें चीफ मिनिस्टर होना है। अभी मिनिस्टर होने में इतना अशांत है और चीफ मिनिस्टर होकर और भयंकर अशांति होगी। अशांति तो सिर्फ देखने की बात है, देख लो, समझ लो अपने भीतर, पैदा हो रही है तो उसका अर्थ है कि तुम प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हो। उसका अर्थ है, तुम्हें जो होना चाहिए तुम वैसा नहीं हो। जो करना चाहिए वह नहीं कर रहे हो, इसलिए अशांत हो। अशांति तुम्हारा फल है, तुम्हारा कर्मफल है। मेरा कोई कसूर नहीं है कि मैं उसे शांत करूं। शांत हो जाओ, फिर मेरे पास आओ, क्योंकि मैं तुम्हें शांत अवस्था में ही किसी महान यात्रा पर भेज सकता हूं; अशांत हो तो मनोचिकित्सक है, उसके पास जाओ। बीमार हो तो चिकित्सक है, उसके पास जाओ। जब मन शांत हो, शरीर स्वस्थ हो, तब मेरे पास आ जाना। तब सागर शांत है, लहरों में निमंत्रण है--तुम्हारी छोटी-सी नाव को परमात्मा की यात्रा पर भेजा जा सकता है। मेरी उत्सुकता उसमें है।
लेकिन शांत आदमी कहता है कि आएं ही क्यों, हम तो शांत हैं। स्वस्थ आदमी कहता है, अभी आने की क्या जरूरत है; जब अस्वस्थ हो जाएंगे, आ जाएंगे। जवान आदमी कहता है कि अभी तो जवान हैं, अभी तो भोग लें, बाजार में बड़ा रस है; जब बूढ़े हो जाएंगे तब आ जाएंगे।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप जवान लोगों को संन्यास देते हैं? संन्यास
तो बुढ़ापे के लिए है। जब मर ही गए तब के लिए संन्यास है? जब कुछ बचा ही न करने को, हाथ-पैर भी न हिलने को रहे, तब के लिए संन्यास है? तो संन्यास तुम्हारे जीवन का हिस्सा नहीं है। संन्यास तो तब जब जीवन की ऊर्जा अपनी प्रगाढ़ता में हो, अपने शिखर पर हो, तभी यात्रा पर निकल पाओगे, क्योंकि यात्रा बड़ी है।
सुखी आदमी भोग में लीन होता है, और दुखी आदमी प्रार्थना की कोशिश करता है--इसीलिए लोग भटकते हैं और पहुंच नहीं पाते। सुखी पहुंच सकता है, अगर वह प्रार्थना में लीन हो। शांत पहुंच सकता है, अगर वह प्रार्थना में लीन हो।

अब हम इन पदों को समझने की कोशिश करें।
सुख में सुमिरन न किया, दुखा में कीया याद। कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।
सुख ही सुमिरन बन सके, इसकी चेष्टा करो। जब तुम पाओ--और अनेक बार तुम पाते हो--कि मन बड़ा प्रसन्न है, उस क्षण क्लब-घर मत जाओ। जब मन बड़ा प्रसन्न है तब होटल में मत जाओ। जब मन बड़ा प्रसन्न है तब रेडियो या टी.वी. खोल कर मत बैठो। यह बहुमूल्य क्षण मुश्किल से मिलता है। यह बहुमूल्य क्षण ऐसा बाजार के कचरे में फेंक देने के योग्य नहीं है। हीरे को मत फेंको। जब भी तुम पाओ कि शांत क्षण आया है, भागो मंदिर की तरफ--यह हीरा परमात्मा के चरणों में चढ़ाने जैसा है; यह किसी वेश्या के चरणों में मत चढ़ा आना। जब पाओ कि चित्त स्वस्थ है, हलका है, उदास नहीं, एक भीतरी प्रफुल्लता है--तब हजार काम छोड़ देनाः यह वक्त प्रार्थना का है।
प्रार्थना को क्रियाकांड मत बनाओ कि रोज सुबह उठ कर कर लेंगे; क्योंकि कभी क्षण होगा, कभी नहीं होगा। मेरे हिसाब में जब तुम सुख में हो तभी सुबह है; वही ब्रह्ममुहूर्त है। घड़ी से पता नहीं चलता ब्रह्ममुहूर्त तुम्हारे भीतर की घड़ी की बात है। भरी दुपहर में तुम अचानक पाते हो कि चित्त बड़ा प्रसन्न है इस क्षण में, अकारण प्रसन्न हैः द्वार-दरवाजे बंद कर दो--यह मौका खोने का नहीं; अभी प्रार्थना में डूब जाओ, अभी कर लो स्मरण। यह छोटा सा क्षण मिला है, इसका कर लो उपयोग। यह ज्यादा देर न रहेगा, लेकिन अगर इसका प्रार्थना में उपयोग किया तो यह टिकेगा, काफी टिकेगा, यह गहरा होगा। अगर तुमने सुख में प्रार्थना की तो तुम पाओगे कि तुम्हारे सुख के क्षण बढ़ने लगे, रोज ज्यादा होने लगे, और सुख की गहराई भी बढ़ने लगी। अगर तुमने सुख का क्षण प्रार्थना के लिए उपयोग कर लिया और परमात्मा को चढ़ाया, तो तुम्हारी भेंट स्वीकार हो जाएगी। तुम जल्दी ही पाओगे कि उसका प्रसाद तुम्हें मिलने लगा, और सुख बरसने लगा। जितना सुख बरसेगा, उतनी ही प्रार्थना तुम करने लगे ज्यादा, उतना ही ध्यान में लीन होने लगे। जल्दी ही

तुम पाओगे कि सुख चौबीस घंटे थिर होने लगा और चौबीस घंटे स्मरण चलने लगा। अब अलग बैठने की कोई जरूरत भी न रही। अब तुम जहां हो वहीं उसकी याद है।
सुख के साथ जोड़ लो प्रार्थना को, तो इसी जन्म में यात्रा पूरी नहीं हो सकती है। दुख के साथ मत जोड़ो। दुख तुम्हें पसंद नहीं, परमात्मा को भी पसंद नहीं। दुख किसी को भी पसंद नहीं। उदास शक्लें और गंभीर लंबे चेहरे लेकर मत परमात्मा के पास जाओ।
एक छोटा बच्चा चर्च से घर लौटा। वह पहली ही दफा चर्च गया था। उसकी मां
ने कहा, कैसा लगा? उसने कहा कि गीत तो बहुत अच्छे थेः प्रवचन बहुत उबाने वाला था। और उसने पूछा कि एक सवाल मेरे मन में उठता रहा कि जो लोग वहां बैठे थे, ये लोग क्या रोज चर्च आते हैं? उसकी मां ने कहा कि हां, ये जो लोग वहां बैठे थे, ये वर्षों से चर्च आते हैं; ये बड़े धार्मिक लोग हैं, गांव के सब धार्मिक लोग हैं। तो उसने कहा कि परमात्मा इनके चेहरे देख-देख कर ऊब गया होगा। ऐसे बैठे हैं मरे-मराए। परमात्मा भी थक गया होगा रोज-रोज इनके चेहरे देख-देख कर।
चर्चों, मंदिरों, मस्जिदों से परमात्मा भाग खड़ा हुआ है। वहां सब तरह
के रोगी इकट्ठे हो जाते हैं। मंदिर तो उत्सव का होना चाहिए। मंदिर तो इंद्रधनुष के रंगों का होना चाहिए। मंदिर में तो फूलों की गंध और तितलियों के पंख होने चाहिए। मंदिर में तो प्रवेश करते ही नृत्य पकड़ लेना चाहिए। तो ही मंदिर मंदिर है। लेकिन कठिनाई है, क्योंकि दुखी लोग मंदिर जाते हैं, सुखी लोग मंदिर जाते नहीं। तो धीरे-धीरे मंदिर उदास होता जाता है। और जो लोग दुखी हैं, वे मंदिर जाकर यह कहते हैं कि जो लोग सुखी हैं, वे सब नरक जाने की तैयारी कर रहे हैं। स्वभावतः दुखी आदमी सुखी आदमी को बरदाश्त नहीं कर सकता। और दुखी आदमी चाहता है कि कोई हर्ज नहीं, आज हम दुख झेल रहे हैं, कल तुम झेलोगे; हमने अपना झेल लिया, तुमने नहीं झेला--झेलोगे। दुखी लोगों ने मंदिरों और मस्जिदों में बैठ कर नरक की धारणा की हैः सुख अपने लिए, और जो सुखी हैं आज संसार में, दुख उनके लिए, महा नरक। दुखी आदमी किसी को सुखी नहीं देखना चाहता, और दुखी आदमी सुखी से बड़ी ईर्ष्या करता है।
इसलिए तो तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में बैठे गुरु और साधु और संत सिखा रहे हैं। वे सिखा रहे हैं तुम्हें कि उदास हो जाओ। वे सिखा रहे हैं कि उदासी प्रार्थना है। वे सिखा रहे हैं कि गंभीर हो जाओ। वे सिखा रहे हैं कि तुम जितना ही गंभीर और मुदों चेहरा लेकर आओगे, उतनी ही तुम्हारी गहरी प्रार्थना होगी।
तो जरा बाहर जगत की तरफ देखो--परमात्मा के बनाए जगत को! वहां तुम उदासी देखते हो? अगर आदमी को हटा दो तो सिवाय उत्सव के वहां कुछ भी नहीं। परमात्मा थकता ही नहीं। फिर-फिर बसंत आ जाता है। फिर-फिर मेघ घिर जाते हैं। फिर-फिर नाद गूंजने लगता है मेघों का। प्रपात बहते जाते हैं परम निनाद में।
अगर परमात्मा की तरफ देखो। उसकी कृति की तरफ देखो। और ध्यान रखो, कृति
की तरफ देख कर ही तुम उसके कर्ता की तरफ आंख उठा पाओगे अगर तुम चित्रकार को समझना चाहते हो, उसके चित्रों को दे, और क्या ढंग है इस चित्रकार को समझने का? उसके चित्रों में अगर तुम्हें फूल दिखाई पड़ते हैं और तितलियां दिखाई पड़ती हैं और गीत दिखाई पड़ते हैं, तो जाहिर है कि परमात्मा के मन में उत्सव है, उदासी नहीं। लेकिन उदास आदमी, दुखी आदमी, पीड़ित-परेशान, उत्सुक होता है प्रार्थना में; क्योंकि वह सोचता है शायद प्रार्थना से ये सब चीजें मिट जाएं, और वह सारे मंदिरों को अपने साथ डुबा लेता है।
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद। कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।
आनंद में कही गई प्रार्थना ही सुनी जाती है, क्योंकि आनंद परमात्मा
का स्वर है, वह परमात्मा की भाषा है। दुख तुम्हारी भाषा है। परमात्मा उस भाषा को समझता ही नहीं। दुख तुमने अपना पैदा किया है। परमात्मा ने तो तुम्हें भी फूल की तरह नाचने और गाने को ही पैदा किया है। दुख तुम्हारी कृति है, वह तुम्हारा कर्म है। वह तुम्हारी संभावना नहीं है, संभावना तो

तुम्हारे आनंद की है। दुख की भाषा परमात्मा को समझ ही नहीं आती। इसलिए जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश पा सकेंगे। छोटे बच्चों की भांति नाचते, कूदते, प्रफुल्लित! सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।
प्रार्थना कोई बोलना नहीं है। प्रार्थना में कुछ कहना नहीं है। तुम
जो भी कहोगे, वह गलत होगा। तुम गलत हो। तुम जो भी कहोगे, वह अंधेरे का हिस्सा होगा। तुम्हारी सारी वाणी तुम्हारे मन से आती है--जो अंधकार है, अज्ञान है।
इसलिए कबीर कहते हैंः सुमिरन सुरत लगाइके--प्रभु की याद करके, मुंह को बंद करके शांत हो रहो। मुख ते कछू न बोल--कुछ कहने की जरूरत नहीं है, परमात्मा समझता है। तुम्हारे चिल्ला-चिल्ला कर कहने की कोई जरूरत नहीं है।
एक मुल्ला अजान लगा रहा था मस्जिद पर, कबीर पास से निकले, तो उन्होंने चिल्ला कर कहा, क्या कर रहा है? क्या बहरा हुआ खुदा? इतने जोर से क्यों चिल्ला रहा है? क्या खुदा बहरा हो गया है?
शब्द की तो कोई जरूरत नहीं है। तुम तो अपने हृदय को उसके सामने खोल कर
रख दो। तुम यह भी मत कहो कि मुझे यह चाहिए, वह चाहिए; क्योंकि तुम्हारी चाह गलत ही होगी। तुम खुद ही पछताओगे पीछे। अगर तुम्हारी चाह भी पूरी हो जाए, तो तुम रोओगे, पछताओगे, छाती पीटोगे।
मिदास की यूनान में एक कथा है। उसने पूजा की, प्रार्थना की और किसी देवता को राजी कर लिया, तो उसने कहा, मांग ले वरदान। तो मिदास ने कहा, मैं जो भी छुऊं, वह सोना हो जाए। शुरू हो गया दूसरे दिन से; जो भी छुए, सोना होने लगा। फिर छाती पीटने लगा और चिल्लाने लगा; क्योंकि पत्नी को छुआ और वह सोना हो गई; बेटे-बेटी भाग गए घर छोड़ कर; दरबारी फासले पर खड़े होकर वहां इतने दूर से बात करने लगे, क्योंकि अगर छू दे, तो मारे गए। भोजन करे, सोना हो जाए। पानी पिए, सोना हो जाए। बहुत चिल्लाने लगा कि क्षमा कर दो, भूल हो गई।
तुमने भी मांगी होती... ! चाह अज्ञान से निकली होगी तो ऐसा ही होगा। मांगते वक्त तो बड़ी समझदारी की लगी थी। बड़े मजे का था, सीधा मामला था--जो भी छुआ, सोना हो जाए। अब इससे बड़ा और क्या हो सकता था? महल छुआ, सोना हो गया; पहाड़ छुआ, सोना हो गया--अब तुम्हारे धन का, धान्य का क्या अंत था! लेकिन अज्ञान देख नहीं सकता पूरी स्थिति। भूखा मरने लगा मिदास। पानी न पी सके, खाना न खा सके। पत्नी मर गई; बच्चे घर छोड़ कर भाग गए, सारा गांव दुश्मन हो गया। सोना तो हो गईं चीजें; लेकिन सोने को खाओगे या पीओगे?
और मिदास की कथा अधिक लोगों की कथा है। जिंदगी भर कोशिश करके आखिर में तुम थोड़ा बहुत सोना इकट्ठा कर लेते हो; उसमें पत्नी भी मर गई, बच्चे भी भाग गए, उसी उपद्रव में--सोना करने में। उसमें तुम भी भूखे रहे, प्यासे रहे, कभी ठीक से सो न सके, कभी दो क्षण चैन के न पाए। आखिर में सोना हो गया इकट्ठा-- तुम मरने को तैयार।
मिदास ने आत्महत्या कर ली। और करने को कुछ बचा नहीं। चाह पूरी हो तो ऐसी मुसीबत आती है।
नहीं, तुम कुछ मांगना मत।
सुमिरन सुरत लगाइके... । और ये शब्द सुमिरन सुरत समझ लेने जैसे हैं। ये कबीर के पारिभाषिक शब्द हैं।
सुरति शब्द आता है बुद्ध से। बुद्ध जिसको सम्यक स्मृति कहते थे, वही शब्द लोक-भाषा में आते-आते स्मृति से सुरति हो गया। स्मृति का अर्थ हैः माइंडफुलनेस, समग्र होश, होशपूर्वक।
होशपूर्वक बैठ जाना। प्रार्थना की कोई जरूरत नहीं। मुख से कुछ बोलना नहीं है। सिर्फ शांत रहना। स्मृति का क्या अर्थ है, जिसे कबीर ने कहा है? कई बार वे एक ही प्रतीक का बार-बार उपयोग करते हैं, क्योंकि वह उन दिनों बड़ा सार्थक प्रतीक था। वे कहते हैं, गांव की स्त्रियां पनघट से पानी भर कर लाती हैं, तो वे सिर पर दो-दो, तीन-तीन घड़े रख लेती हैं, हाथ से पकड़ती भी नहीं, दोनों हाथ खुले छोड़ कर गपशप, बातचीत करती हुई गांव के भीतर आती हैं--

लेकिन उनकी सुरति घड़ों में लगी रहती है। हाथ से पकड़ा नहीं है, सुरति से पकड़ा है। याद घड़े की बनी रहती है। होश घड़े का बना रहता है कि घड़ा गिर न जाए। कुछ शब्द की भी जरूरत नहीं रहती। ऐसा कुछ बार-बार वे दोहराती नहीं हैं कि घड़ा गिर न जाए। न शब्द की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ होश... और घड़ा नहीं गिरता। घड़ा सम्हला रहता है। बातचीत करती रहती हैं, गीत गाती रहती हैं, उछलती- कूदती गांव की तरफ वापस लौटती हैं। अब तो वैसे दृश्य न रहे क्योंकि पनघट भी न रहे। नलघट हैं, और उन पर सिवाय उपद्रव के, झगड़े के और कुछ भी नहीं। लेकिन वह प्रतीक सार्थक है। भीतर एक होश बना है, होश से सम्हाला हुआ है घड़े को।
कबीर कहते हैंः ऐसे ही शांत होकर बैठ जाना, सिर्फ होश रह जाए, भीतर का दीया जलता रहे। कुछ बोलना मत।
सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल।
लेकिन यह तभी होगा जब तुम सुख में, जब तुम शांति में, जब तुम स्वस्थ हो, तभी होगा। नहीं तो अशांति घूमती रहेगी; मुख न बोलेगा तो अशांति घूमेगी। इसलिए सुख के क्षण को खोजो। सुख आता है, क्योंकि एक नियम है जीवन काः जब दुख आता है तो सुख भी उसके साथ का पहलू है। तुम्हें पता न चलता हो आपाधापी में, लेकिन थोड़ा तुम खोजोगे तो पा लोगे। जैसे दिन के पीछे रात है, रात के पीछे दिन है--ऐसा हर दुख के बार सुख है, हर सुख के बाद दुख है, एक रिदम, एक लयबद्धता है जीवन में।
तुम दुख को देखते रहते हो, कितने परेशान हो जाते हो दुख में कि उसके पीछे आता सुख तुम्हें याद ही नहीं पड़ता, दिखाई भी नहीं पड़ता। जरा होश सम्हाल कर अगर तुमने जागृत होकर देखा तो तुम जल्दी ही पा लोगे कि चौबीस घंटे में कई क्षण आते हैं, जब मन में एक रस होता है, जब सब शांत होता है। उसी क्षणः सुमिरन सुरत लगाइके, मुख ते कछू न बोल। बाहर के पट देइकै, अंतर के पट खोल।।
अब बाहर के पट बंद कर लो। सुख है भीतर। सम्हाल लो। बाहर के सब पट बंद
कर दो कि कहीं बह न जाए। पुरानी आदत हैः सुख जब भी आता है, बाहर बहता है। सुखा आया कि भागे कि चलो किसी मित्र को पकड़ कर ताश ही खेलें। सुख आया कि भागे, चलो मित्र के पास बैठ कर गांजा पी लें। सुख आया कि तुम भागे--अब सुख को कहीं व्यय कर लें। सुख को व्यय मत करो। सुख को बचाओ। उससे बड़ी कोई संपदा नहीं है। उस लयबद्धता का तुम तरंग की तरह उपयोग करो कि वह तरंग तुम्हें परमात्मा में ले जाए।
बाहर के पट देइकै, अंतर के पट खोल।
अब तुम बाहर की बात ही भूल जाओ। सुख को भीतर सम्हाल लो। शांत बैठ जाओ। कुछ करने का नहीं है, कुछ कहने का नहीं है; परमात्मा समझता है। तुम जितना अपने आप को समझते हो, उससे ज्यादा वह तुम्हें समझता है। उसने तुम्हें बनाया है। तुम उससे आए हो। वह तुम्हारे रोएं-रोएं को समझता है। तुम तो अपनी सतह को ही जानते हो; वह तुम्हारे केंद्र को भी जानता है। तुम तो सिर्फ अपनी ऊपर-ऊपर की खोल को पहचानते हो; वह तुम्हारे भीतर के अंतरतम को जानता है। इसलिए तुम कुछ मत करो। तुम सिर्फ बाहर के पप बंद कर दो, अंतर के पट खुले कर दो। हृदय को खोल दो परमात्मा के सामने। बस।
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआं तो दहुदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।
न तो जरूरत है कि तुम हाथ में लेकर माला फेरो। क्योंकि हाथ में फिरती माला का क्या परमात्मा से संबंध है? माला तो कर में फिरै--और तुम अगर प्रार्थना कर रहे हो कि तुम पतित पावन हो और मैं पतित हूं, और तुम यह हो और मैं वह हूं--इस सब बकवास में अगर तुम लगे हो, जैसा कि भक्तगण लगे रहते हैं; जीभ फिरै मुख माहिं, --यह तो सिर्फ जीभ फिर रही है मुख में, इसमें हो क्या रहा है? मनुआं तो दहुदिसि फिरै--और मन तो दसों दिशाओं में घूम रहा है। ग्यरह दिशाएं हैं। मन दस दिशाओं में घूम सकता है, ग्यारहवीं में नहीं। ग्यारहवीं तुम हो। आठ दिशाएं चारों तरफ, एक नीचे जानेवाली दिशा, एक ऊपर जाने वाली दिशा--दस दिशाएं, और एक भीतर जाने वाली दिशा है। तो मन दस दिशाओं में घूम सकता है। ग्याहरवीं दिशा में डूब जाओ, न तो हाथ में माला

फेरने की जरूरत है, न मुंह में जीभ फेरने की जरूरत है, न मन को दसों दिशा भटकाने की जरूरत है। मन की कल्पनाओं की भी कोई जरूरत नहीं है।
बहुत से लोग मन की कल्पना करते हैं। जब प्रार्थना करने बैठते हैं, तब
वे सोचते हैं कि प्रकाश दिखाई पड़ रहा है, कि कुंडलिनी जग रही है, कि परमात्मा सामने खड़े हैं--बांसुरी बजा रहे हैं, कि रामचंद्र खड़े हैं धनुष्य लिए। इस सब में कुछ सार नहीं है। यह तो मन दस दिशाओं में भटक रहा है। मन के बनाए राम, कि कृष्ण, कि क्राइस्ट कुछ काम न आएंगे। वह तो कल्पना का जाल है।
कुछ भी मत करो, क्योंकि तुमने कुछ किया कि तुम बाहर गए। अनकिये हुए रहो।
अकर्ता बन जाओ।
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।
तुम कुछ भी करोगे वह सब मरने वाला है। तुम्हारे कर्तृत्व से जो भी पैदा होता है, वह सब मर जाएगा। तुम्हारा शरीर मरणधर्मा है। माला फेरोगे मरणधर्मा से, अमृत में नहीं ले जाएगी। मरणधर्मा की यात्रा अमृत में कैसे ले जा सकती है? तुम्हारे ओंठ, जीभ भी मर जाएंगे। तो उन ओंठ और जीभ की तड़फड़ाहट से पैदा हुए शब्दों का उस परमात्मा तक कैसे पहुंचना हो सकता है? जाप जिनसे पैदा होता है वही कल मिट्टी में मिल जाएंगे। तो और जो उनसे पैदा हुआ था, वह भी मिट्टी में खो जाएगा।
तुम्हारा मन भी मरणधर्मा है, प्रतिपल मरता है। उसकी कल्पनाओं का कुछ सार नहीं है। तुम क्षणभंगुर को मत पकड़ो। इसलिए कबीर एक बड़ी क्रांतिकारी बात कहते हैं। कहते हैं, जाप मरै--अगर तुमने जाप की, जाप मर जाएगी; अजपा मरै--अगर तुमने अजपा किया तो वह भी मर जाएगा। क्योंकि अजपा जाप का ही सूक्ष्म रूप है। पहले तुम जाप करते हो कि तुम राम, राम, राम, राम दोहराते हो। पहले जोर से दोहराते हो, वह स्थूल रूप है। फिर तुम होंठ बंद कर लेते हो। भीतर दोहराते हो--राम, राम, राम, राम--वह सूक्ष्म रूप है। वह जाप है। फिर तुम वह भी बंद कर देते हो, कि तुम दोहराते नहीं, होंठ में भी नहीं दोहराते, जीभ भी नहीं हिलती, होंठ भी नहीं हिलते; सिर्फ मन में ही राम, राम, राम, राम--वह और भी सूक्ष्म रूप है। लेकिन सभी के पीछे तुम्हारा कर्तृत्व छिपा है।
जाप मरै, अजपा मरै, अनहद भी मरि जाए। और तुम जिस अनहद को सुन लेते हो,
वह भी ऐसी घड़ी भी आ जाती है जब तुम्हें जाप करने की जरूरत नहीं रहती। भीतर भी नहीं रहती, मन में भी ओम को दोहराने की जरूरत नहीं रहती। ओम तुम में इस तरह समाविष्ट हो जाता है कि तुम बिल्कुल शब्द बंद कर दो तो भी ओम गूंजता रहता है। वह प्रतिध्वनि है। उसको लोग अनहद समझ लेते हैं। ऐसा समझो कि हम एक घंटा बजाएं; घंटा बंद हो गया लेकिन थोड़ी देर उसकी प्रतिध्वनि गूंजती रह जाती है। धीरे-धीरे धीरे-धीरे प्रतिध्वनि खोती है।
अगर तुम वर्षों तक ओम का पाठ करते रहो, तो तुम्हारे भीतर इतना मोमेंटम इकट्ठा हो जाएगा कि तुम अगर पाठ न भी करो, तुम जाप भी छोड़ दो, अजपा भी छोड़ दो, सिर्फ आंख बंद करके बैठ जाओ फिर वह जो वर्षों तक जाप किया है, वह तुम्हारे रोएं-रोएं में तुम्हारे कण-कण में समा गया है। उसमें प्रतिध्वनि गूंजेगी। अब तुम अचानक पाओगे कि ओम का तो जाप अपने आप हो रहा है। यह भी मर जाएगा। यह भी प्रतिध्वनि है। जब मूल ही मर गया तो प्रतिध्वनि कितनी देर रह जाएगी। इसलिए कबीर कहते हैं, अनहद भी मरि जाए। अनहद का अर्थ हैः ओंकार। सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।
सिर्फ एक ही चीज बचती है, उसी को पकड़ लो, वही सहारा है। उसके अतिरिक्त तुमने कुछ और पकड़ा कि तुम डूबे। सुरत समानी सब्द में--तुम्हारी जो स्मृति की क्षमता है, जागरण की क्षमता है, होश की क्षमता है, होश की क्षमता है, यह तुम्हारे भीतर... । सबद पारिभाषिक शब्द है। बाइबिल में कहा है, इन दि बिगिनिंग देअर वा.ज वर्ड; ओनली दि वर्ड एक्झिस्टेड एण्ड नथिंग एल्स। शुरू में सबद था। उस सबद से ही सब पैदा हुआ। उस सबद के अतितिक्त शुरू में कुछ भी न था। इस सबद को तुम शब्द मत समझ लेना।
जैसा वैज्ञानिक कहते हैं कि सारे अस्तित्व की मूल ऊर्जा विद्युत है, सभी चीजें विद्युत-कणों से बनी हैं--वैसे ही ज्ञानियों ने कहा है कि सभी

चीजों की मूल ऊर्जा ध्वनि है, विद्युत नहीं। और सभी चीजें ध्वनि से बनी हैं। और इन दोनों में बड़ा तालमेल है। और दोनों सही हो सकते हैं। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत से ही ध्वनि बनी है। और ज्ञानी कहते हैं कि ध्वनि का ही संघात विद्युत को पैदा करता है। दोनों सही हो सकते हैं। दो तरफ से एक ही चीज को देखने का ढंग मालूम होता है। अगर तुम एक ही ध्वनि का उच्चार करते रहो तो ताप पैदा हो जाता है। इतना ताप भी पैदा हो सकता है कि तुम कल्पना भी न कर सको।
तिब्बत में उसके बड़े प्रयोग किए गए हैं और एक खास योग की साधना है तिब्बत में ताप पैदा करने की। तो तिब्बत में बर्फ जमी रहती है, चारों तरफ बर्फ पड़ती रहती है, और उस योग का साधक नग्न खड़ा रहता है बर्फ में और पसीना चूता रहता है। नग्न खड़ा रहता है और शरीर से पसीना झरता रहता है। वह कुछ भी नहीं करता, वह सिर्फ भीतर, तिब्बत का एक मंत्र है। "ओम मणि पद्मे हुम्"-- ओंकार का ही एक रूप है--वह उसका भीतर पाठ करता है। वह उसकी जोर से रटन करता है। वह रटन इतनी गहन हो जाती है, उसकी चोट इतनी गहरी पड़ती है कि सारा शरीर उत्तप्त हो जाता है; गिरती बर्फ में हाथ से पसीना चूने लगता है।
दोनों सही हो सकते हैं।
संगीतज्ञो ने बहुत बार संगीत से दीये को जलाया है। जो लोग मिलिटरी साइंस का अध्ययन करते हैं, सैन्य-विद्या का, उनको पता है कि पुलों पर से जब सैनिक गुजरते हैं तो उनको कह दिया जाता है। कि वे लयबद्धता से न गुजरें, एक साथ पैर न उठाएं, पैरों की लयबद्धता तोड़ दें--क्योंकि बहुत बार बड़े-बड़े पुल सैनिकों की लयबद्धता से गिर गए हैं। सैनिक गुजरते हैं तो उनके पैर लेफ्ट-राइट करते हुए एक साथ उठते हैं। उस चोट से एक खास तरह की ध्वनि पैदा होती है, और अनेक बार बड़े से बड़े मजबूत पुल जिन पर से ट्रेनें गुजर जाती थीं, ट्रक गुजर जाते थे, थोड़े से सैनिकों के गुजरने से गिर गए हैं।
ध्वनि का एक आघात है। और अब तो ध्वनि पर काफी अध्ययन हो रहा है। रविशंकर के सितार पर कनाडा में प्रयोग किया गया है। रविशंकर सितार बजाते रहे और दोनों तरफ दो क्यारियों में बीज बाए गए। वे रोज एक घंटा वहां सितार बजाते हैं और वे बीज धीरे-धीरे बड़े होते हैं। वे सब पौधे सितार की तरफ झुके हुए बढ़े--सब पौधे! एक भी दूसरी तरफ नहीं झुका। सब पौधे--जैसे सुनने को बहरा आदमी कान पास में ले आता है--ऐसे पौधे सितार सुनने को कान पास ले आए। और सितार के कारण जो पौधा तीन महीने में फूल देने योग्य होता, वह डेढ़ महीने में फूल देने योग्य हो गया। तो ध्वनि ने कुछ जीवन-ताप पैदा किया, कुछ ऊर्जा पैदा की, संगीत ने कुछ किया।
मोझर्ट के एक प्रसिद्ध संगीत--जिस पर अनेक मुल्कों में कानूनी रूप से रोक लगा दी गई है। उसका कोई उपयोग नहीं करता, क्योंकि बहुत से लोग उसे सुनते वक्त मर गए हैं। तो उसके एक खास संगीत "नाइन्थ सिम्फोनी" पर रोक लगाई गई है। बाजार में मिलता नहीं उसका रिकार्ड, क्योंकि वह खतरनाक है। वह इतना शांति में ले जाता है कि आदमी तत्क्षण विलीन हो जाता है। तो शांति धीरे-धीरे समाधि बन जाती है, मौत हो जाती है।
कबीर जिसको सबद कहते हैं, उस सबद का अर्थ हैः इस जगत की मूल ध्वनि, जिससे सारा जगत पैदा हुआ है; वही ओंकार है। उसे तुम्हारे जाप से सुनने की जरूरत नहीं है। जिस दिन तुम बिल्कुल ही शांत हो जाओगे, उस दिन वह सुनाई पड़ेगी। सुनाई पड़ेगा, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहां सुनने वाला और सुनाई पड़ने वाली ध्वनि दो न होंगे; तुम्हीं सुनोगे तुम्हीं को। तुम्हारा ही अस्तित्व ध्वनित होगा। उस परम ध्वनि का नाम सबद है। इसलिए सबद को मैं सबद ही कह रहा हूं, शब्द नहीं। शब्द मत कहना। सबद कबीर का लोगोस है, जिसको दि वर्ड बाइबिल में कहा है। वह जीवन की, अस्तित्व की परम ध्वनि है, जिससे सब चीजें निर्मित हुई हैं। कबीर कहते हैं, सुरत समानी सब्द में--जब तुम अपने उस मूल स्रोत में समा जाओ, इतने शांत हो जाओ कि जैसे गंगा गंगोत्री में समा गई हो।
ऐसा समझो कि वृक्ष में फल लगे हैं, फल वापस फूलों में समा गए, वापस पत्तियों में समा गए, पत्तियां वापस शाखाओं में समा गईं, शाखाएं पीड़ में समा गईं, पीड़ जड़ों में समा गईं, जड़ें वापस बीज में समा गईं--वह बीज सबद।

तुमने सब विस्तार समेट लिया, सब पसारा समेट लिया, और समाने लगे भीतर। एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम्हारी चेतना, तुम्हारा होश मूल बीज में समा जाता है। कबीर कहते हैं, वही एक अमृत है, बाकी तो सब मर जाएगा। तुम्हारा किया कुछ भी न बचेगा। जो तुम्हारे से भी पहले से है, जो तुम्हारे करने के पीछे छिपा है, जो तुम हो, वही बचेगा। कृत्य तो खो जाएंगे, कर्ता खो जाएगा, सिर्फ आत्मा बचेगी।
सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिं खाय।।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं।
और कबीर कहते हैं कि समाते-समाते, भीतर सुरति के डूबते-डूबते--और उस सारे डूबने में तेरी ही याद थी; शब्दों में कही नहीं, माला से फेरी नहीं, होठों पर दोहराई नहीं, भीतर जाप न किया, अजपा की फिक्र न की--लेकिन इस सारी यात्रा में याद तेरी थी; याद शब्दों की न थी; प्राणों की थी। स्मरण तेरा ही बना था।
तूं तूं करता तूं भया--और जितनी यह याद गहन होने लगी, उतना ही पाया कि मैं तो मिटता जा रहा हूं और तू ही होता जा रहा है।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं। और एक दिन अचानक पाया कि मैं
तो मिटता जा रहा हूं और तू ही होता जा रहा है।
"तूं तूं करता तूं भया", मुझ में रही न हूं। और एक दिन अचानक पाया कि मैं तो खो ही गया, हूं भी खो गई।
"मैं हूं" हम कहते हैं। "मैं"--अहंकार, अकड़; "हूं" अकड़ की छाया, अस्मिता--उतनी अकड़ नहीं बड़ी विनम्र। मैं का आदमी तो अलग दिखाई पड़ता है अकड़ा हुआ, उसको तुम पहचान सकते हो--उसकी चाल, उसकी आंख, उसका ढंगः हर घड़ी वह कर रहा है, अपने चारों तरफ संदेश भेज रहा है, ब्रॉडकास्ट कर रहा है कि मैं कुछ हूं; तुमने मुझे समझ क्या रखा है? हर घड़ी वह बतला रहा है कि मैं कुछ हूं--कपड़ों से, उठने-बैठने से। यह तो सीधी स्थूल अहंकार की दशा है। इसको हमने अहंकार कहा है। फिर एक और अहंकार की दशा है जो बड़ी विनम्र हैः साधुओं में मिलेगी, समाज-सेवकों में मिलेगी, सज्जन पुरुषों में मिलेगी। यह तो दुर्जन में मिलता है अहंकार कि अकड़ा हुआ खड़ा है। सज्जन झुका हुआ खड़ा होता है। वह तो कहता है, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। वह तो लखनवी होता है; वह कहता है, पहले आप।
ऐसा मैंने सुना है--पता नहीं कहां तक सच है--कि लखनऊ में ऐसा हो गया कि
एक महिला गर्भवती हुई और पैंतालीस साल तक उसको बच्चा पैदा न हुआ। चिकित्सक भी घबड़ा गए। आखिर आपरेशन करना पड़ा, तो पाया कि वहां तो ए बच्चा नहीं, दो बच्चे थे और पक्के लखनवी थे, और उनसे कहा कि बाहर निकलो। तो उन्होंने कहा, यही तो अड़चन है; मैं इनसे कहता हूं, पहले आप; ये मुझसे कहते हैं, पहले आप। निकलना नहीं हो पाता। अब यह तो अहंकार होगा कि पहले मैं निकल जाऊं।
तो विनम्रता है, संस्कृति है, सभ्यता है--वहां मैं का स्थूल रूप तो खो जाता है लेकिन अस्मिता रह जाती है। विनम्र आदमी का भी एक अहंकार होता है कि मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं; मैं तो आपके चरणों की धूल हूं। कहता वह यही है, लेकिन इसमें भी वह जाहिर कर रहा है कि मैं कोई साधारण नहीं हूं, बड़ा असाधारण पुरुष हूंः चरणों की धूल--देखो! मैं कोई अहंकारी नहीं हूं; मैं तो विनम्र हूं!
इसको कबीर कहते हैंः हूं। संस्कृत में उसके लिए शब्द हैः अस्मिता। अहंकार का स्थूल रूप है, अस्मिता सूक्ष्म रूप है। अहंकार ठोस है, अस्मिता छाया है। पहले अहंकार मिटता है, फिर अस्मिता जाती है।
तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही न हूं। और अब तो छाया भी न बची मेरी।
अब तो यह भी नहीं कह सकता कि मैं नहीं हूं। अब तो यह भी नहीं कह सकता--होने की तो घोषणा कर ही नहीं सकता, नहीं होने की भी घोषणा नहीं कर सकता। हूं भी जा चुकी।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूं तित तूं। और अब जहां देखता हूं, तुझे ही पाता हूं। बाहर-भीतर सब खो गया, तू ही बचा। अपना-पराया सब खो गया, तू ही बचा। पदार्थ-चेतना सब विलीन हो गई, तू ही बचा। बूंद सागर में गिर गई।

यह घड़ी है समाधि की। यही घड़ी तुम्हारी परम नियति की। और जब तक तुमने इसे न पाया तब तक कुछ भी पा लो, समझना कि कुछ पाया नहीं। और जब इसे पा लिया तब कुछ पाने योग्य बचता नहीं।
"कस्तूरी कुंडल बसै।"

आज इतना ही।

कस्तूरी कुंडल बसै
दसवां प्रवचन

उपलब्धि के अंतिम चरण

सूत्र

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।

ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।।

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।।

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर।।

परमात्मा की खोज में, अंततः वह सौभाग्य की घड़ी भी आ जाती है जब परमात्मा तो मिल जाता है, लेकिन खोजने वाला खो जाता है। जो निकला था खोजने, उसकी तो रूप-रेखा भी नहीं बचती; और जिसे खोजने निकला था, जिसकी रूप-रेखा भी पता नहीं थी, बस वही केवल शेष रह जाता है। साधक जब खो जाता है तभी सिद्धत्व उपलब्ध हो जाता है।
यह खोज बड़ी अनूठी है! यहां खोना ही पाने का मार्ग है। खोज में अगर तुमने अपने को बचाया, तो तुम भटकते ही रहोगे, पा न सकोगे। इस खोज का आधारभूत नियम ही यही है कि तुम ही हो बाधा, कोई और बाधा नहीं है; और जब तक तुम हट न जाओ--तुम्हारे और परमात्मा के बीच से--तब तक दीवाल बनी ही रहेगी। तुम हटे कि परमात्मा तो सदा से था; तुम्हारी दीवाल के कारण दिखाई न पड़ता था। और तुम्हारी दीवाल बड़ी मजबूत है। और शायद तुम परमात्मा को इसलिए खोज रहे हो कि दीवाल को और मजबूत कर लो, तुम अपने को और भर लो। संसार की सब चीजें तुमने अपने में भर लीं, यह परमात्मा की कमी खटकती है। अहंकार को चुनौती लगती है कि अगर किसी ने परमात्मा को कभी पाया है तो मैं भी पाकर रहूंगा। जिसने परमात्मा को चुनौती की तरह समझा और जीवन की अन्य महत्वाकांक्षाओं में एक महत्त्वाकांक्षा बनाया, वह खाली हाथ ही रहेगा; उसके हाथ कभी परमात्मा से भरेंगे न; और उसका हृदय सूना ही रह जाएगा; वहां कभी परमात्मा का बीज रोपित न हो पाएगा; और उसके जीवन में वह वर्षा कभी न होगी जिसकी कबीर चर्चा कर रहे हैं।
पहली और आखिरी बात ख्याल रखने जैसी है कि तुम अपने को मिटाने में लगना--वही परमात्मा की खोज है। परमात्मा को खोजने की फिकर ही छोड़ दो। वह तो मिला ही हुआ है; तुम सिर्फ अपने को मिटा लो। इधर तुमने अपने को साफ किया, इधर तुम खाली घर बने कि उधर परमात्मा का पदार्पण हुआ। इस द्वार से तुम निकले कि दूसरे द्वार से परमात्मा भीतर चला आता है। तुम्हारा खाली हो जाना ही तुम्हारी पात्रता है। तुम्हारा भरा होना ही तुम्हारी अपात्रता है।
इसलिए तो जिन्होंने भी जाना, वे उसके संबंध में कुछ कह नहीं पाते; क्योंकि जानने वाला तो खो जाता है, कहे कौन? परमात्मा के सामने जब तुम मौजूद होओगे, तुम तो रहोगे नहीं--कौन करेगा दावा कि मैंने जान लिया? कौन

लौट कर खबर देगा? कौन लाएगा प्रतिबिंब परमात्मा के? तुम मिट ही जाओगे, लाने वाला नहीं बचेगा। इसलिए तो जो गए, वे खुद तो पा लेते हैं, दूसरों को नहीं जना पाते कि क्या उन्होंने पाया। बड़ी कोशिश करते हैं, लेकिन सब शब्द हार जाते हैं, सब इशारे छोटे मालूम पड़ते हैं। और जो भी वे कहते हैं, कहते ही उनको लगता है, भूल हो गई। जो भी कहा जाता है, वह गलत हो जाता हैं।
लाओत्सु ने कहा हैः कहो सत्य को, और सत्य असत्य हो जाता है।
शब्द बहुत छोटे हैं, बहुत संकीर्ण हैं; और जिसे भरना है, वह बहुत विराट है। शब्दों में उसे भरा नहीं जा सकता। इसलिए जो भी कहा गया है, वह ऐसा ही है कि जैसे किसी ने रात में उड़ती जुगनू देखी हो, और फिर अचानक किसी सूरज के सामने खड़े होने का मौका आ जाए, तो किस भांति तौलेगा सूरज को? कितने जुगनुओं का प्रकाश सूरज बनेगा? या जैसे कोई आदमी चाहे कि चम्मच को लेकर सागर को नापने बैठ जाए--कब तक नाप पाएगा कि कितने चम्मच जल है सागर में? पर मैं तुमसे कहता हूं कि यह हो सकता है, अगर समय पूरा मिले तो कभी न कभी चम्मच से सागर नाप लिया जाए, क्योंकि चम्मच छोटी हो भला, सागर बड़ा हो भला; लेकिन दोनों की सीमा है, दोनों एक ही तल की घटनाएं हैं। तो अगर समय मिले अरबों- खरबों वर्ष का, तो कोई आदमी चम्मच से भी सागर को नाप ले सकता है। सिद्धांततः यह संभव है। लेकिन परमात्मा को तो सिद्धांततः भी नापने की संभावना नहीं है, क्योंकि नापने का उपकरण सीमित और जिसे नापना है वह असीम। सीमित से कैसे तुम असीम को नापोगे? और जो भी तुम नाप कर ले आओगे खबर, वह झूठी होगी, क्योंकि असीम फिर भी बाकी है। जो नापने और नापने के बाद भी सदा बाकी है, उसी को तो हम असीम कहते हैं।
इसलिए परमात्मा को लोगों ने जाना तो है, कहा किसी ने भी नहीं। नहीं की कहने की कोशिश नहीं की है, सभी ने कोशिश की है। क्योंकि करुणा कहती है, कहो, जो जाना है वह उनको भी बता दो, जो मार्ग पर भटकते हैं, जो अंधेरे में टटोलते हैं। करुणा कहती है, कहो। लेकिन परमात्मा के अनुभव का स्वभाव ऐसा है कि कहा नहीं जा सकता।
मैं भी तुमसे रोज कहे जाता हूं, और भली भांति जानता हूं कि जो कहना चाहता हूं, वह कह नहीं पाऊंगा। और तुम अगर मुझे सुन-सुन कर इतना ही समझ गए तो बस काफी है, कि जो कहना चाहता था मैं, कह नहीं पाया। अगर मुझे सुन कर तुमने समझ लिया, कि तुम समझ गए वह, जो मैं कहना चाहता था, कह दिया मैंने, तो तुम भटक गए। फिर तुम मुझे न समझ पाए। अगर सुन-सुन कर तुमने समझ लिया कि ठीक, संवाद हो गया, जो मैं कहना चाहता था तुमसे कह दिया, और तुमने पा लिया, तो तुम चूक गए; तुम सरोवर के किनारे आकर प्यासे लौट गए। जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो कहा ही नहीं जा सकता। जो तुम सुन रहे हो, वह, वह नहीं जो मैं कहना चाहता हूं। जो मैं कह रहा हूं, वह भी नहीं है जो मैं कहना चाहता हूं। बड़ी दूर की फीकी प्रतिध्वनियां हैं। जो कहना है, वह तो तुम तभी समझ पाओगे, जब तुम भी जान लोगे।
जानना ही एकमात्र उपाय है परमात्मा के साथ, कोई दूसरा और रास्ता नहीं
है जिससे हम उसे बिना जाने जान लें। जान कर ही जाना जा सकता है। कबीर के इन पदों में जिन कठिनाइयों की तरफ इशारा है, उन कठिनाइयों को हम समझ लें। पहली कठिनाईः बुनियादी कठिनाई है कि खोजने वाला खो जाता है, इसलिए कौन खबर लाए?
मैं तुमसे बोल रहा हूं, लेकिन मैं वही नहीं हूं जो खोजने निकला था। वह
तो खो गया। और अब जो मैं हूं, उसका सब खोजने वाले से कोई भी नाता-रिश्ता नहीं है; जैसे वह खोजने वाला एक स्पप्न था और विलीन हो गया। उसमें और मुझमें कोई तारतम्य नहीं है। वह कोई और था, मैं कोई और हूं। वह बिल्कुल अजनबी है। उससे मेरी कोई पहचान ही न रही। वह तो एक छाया थी जो केवल अंधेरे में ही रह सकती थी। रोशनी में वह छाया खो गई। और अब जो मैं हूं, वह बिल्कुल ही भिन्न है। जो खोजने निकला था, वह तो अब नहीं है; और जिसने खोज लिया है वह बिल्कुल ही भिन्न है, उसका खोजी से कुछ लेना-देना नहीं है। यह पहली अड़चन है।
दूसरी अड़चन कि जब खोज पूरी हो जाती है, तो जानने वाले में और जो जाना गया है, फासला नहीं रह जाता। सब ज्ञान में फासला चाहिए। तुम्हें मैं देख

रहा हूं क्योंकि तुम दूर बैठे हो; तुम्हारे और मेरे बीच में फासला है। अगर तुम करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, करीब आते जाओ, तुम इतने करीब आ जाओ कि मेरी आंख और तुम्हारे बीच फासला न रहे, तो फिर मैं तुम्हें देख न पाऊंगा, जान न पाऊंगा। तुम इतने करीब आ जाओ कि बिल्कुल मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ, तब तो पहचान बिल्कुल मुश्किल हो जाएगी। और तुम इतने करीब आ जाओ कि तुम मेरा हृदय हो जाओ, तब तो कौन पहचानेगा, किसको पहचानेगा?
परमात्मा की खोज में हम निकट आते जाते हैं, निकटता बढ़ती है, सामीप्य बढ़ता है। जैसे-जैसे समीपता आती है, वैसे-वैसे जानना मुश्किल हो जाता है, जगह नहीं बचती बीच में। और एक ऐसी घड़ी आती है छलांग की, जब या तो तुम छलांग लगा कर परमात्मा में डूब जाते हो, या परमात्मा छलांग लगा कर तुममें डूब जाता है। दोनों घटनाएं घटती हैं। ज्ञान के मार्ग से जो चलता है, वह छलांग लगा कर परमात्मा में लीन हो जाता है। भक्ति के मार्ग से जो चलता है, उसमें परमात्मा छलांग लगाकर लीन हो जाता है। या तो बूंद सागर में गिर जाती है, या सागर बूंद में गिर जाता है और तब कुछ पता नहीं चलता कि कौन बूंद थी, कौन सागर है; कौन तुम हो, कौन परमात्मा है। जरा भी रंचभर फासला नहीं रह जाता। भेद करने की व्यवस्था नहीं रह जाती। परिभाषा नहीं हो सकती। इसलिए तो ज्ञानी उद्घोष कर बैठते हैंः "अहं ब्रह्मास्मि"; "अनलहक", मैं वही हूं; तत्वमसि! इस घोषणा के बाद अब किसकी चर्चा करोगे? अब तो परमात्मा की चर्चा भी अपनी ही चर्चा है। अब तो अपनी ही चर्चा परमात्मा की भी चर्चा है। अब तो चर्चा करने वाला और चर्चित दो न रहे; जानने वाला और जाना गया दो न रहे। और हमारा सारा जानना दो पर निर्भर है, द्वैत पर निर्भर है। अद्वैत का जानना बड़ी ही अनूठी घटना है। वह आयाम और! और जब दोनों एक हो गए, तो कौन खबर दे, कैसे खबर दे, किसकी खबर दे?
ज्ञानी और ज्ञेय जहां एक हो जाते हैं, वहीं तो परम ज्ञान का जन्म होता है। दोनों किनारे खो जाते हैं, सरिता रह जाती है--अधर में लटकी--न इस तरफ किनारा, न उस तरफ किनारा; बस ज्ञान रह जाता है। और हमने ऐसा कोई ज्ञान नहीं जाना है। हमारा तो सारा ज्ञान ऐसा ही है, जैसे नदी के दोनों तरफ किनारे हैं, दोनों किनारों में बंधी हुई नदी बहती है। कभी-कभी वर्षा में जब बड़ा पूर आता है, बाढ़ आती है, किनारे टूट जाते हैं, नदी उन्मत्त होकर बहने लगती है; लेकिन तब भी पुराने किनारे टूट जाते हैं, नदी नये किनारे बना लेती है, किनारे से मुक्त नहीं होती।
परमात्मा ऐसी बाढ़ है, जहां पुराने किनारे तो टूट ही जाते हैं, नये किनारे नहीं बनते।
परमात्मा का कोई तट नहीं है; क्योंकि तट यानी सीमा, तट यानी अंत। तट पर
ही तो नहीं समाप्त हो जाती है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है, कोई तट नहीं है। वह कहीं समाप्त नहीं होता। और जब तुममें गिर जाती है उसकी धारा, या तुम उसमें गिर जाते हो--जो कि एक ही बात के दो नाम हैं, एक ही घटना के दो नाम हैं--तब कहना मुश्किल हो जाता है।
तीसरी बातः जिन शब्दों से हम कहते हैं, वे बने हैं साधारण कामकाज के लिए। उनमें उतना अर्थ है, जैसे छोटे बच्चों के पास बंदूक होती है खिलौनों कीः आवाज भी करती है, धुआं भी निकालती है, पर किसी को मारती नहीं। वह खिलौना है। उस बंदूक से तुम युद्ध के मैदान पर मत चले जाना। वहां वह काम नहीं आएगी; वहां बुरी तरह मारे जाओगे।
हमारे जो शब्द हैं, वे संसार के लिए बने हैं। परमात्मा के जगत में उन शब्दों की सार्थकता ही कोई नहीं है। परमात्मा के जगत में सभी शब्द असंगत हो जाते हैं, उनकी संगति खो जाती है; जो भी कहो, गलत मालूम होता है; जैसे भी कहो, गलत मालूम होता है; व्याकरण बिल्कुल शुद्ध रहे तो भी सब गलत होता हैः भाषा बिल्कुल शुद्ध हो तो भी सब गलत होता है; कितने ही सुंदर ढंग से कहो तोभी फीका और बासा होता है। क्योंकि, शब्द मन-निर्मित हैं और परमात्मा मन के पार है। शब्द स्वप्न-निर्मित हैं और परमात्मा सत्य है। शब्द माया और संसार के बीच खेल-खिलौने हैं, यथार्थ नहीं हैं। बच्चा भी जब जवान हो जाएगा, खिलौनों को फेंक देगा एक कोने में; उनकी याद भी उसे न आएगी कि क्या हुआ। कभी उन्हीं खिलौनों के लिए लड़ा भी था; कभी उन्हीं खिलौनों के लिए रो-रो कर

.जार-.जार हो गया था; कभी उन्हीं खिलौनों के लिए आंखें सूज आई थीं; कभी पाकर ऐसा नाचा था खुशी से, खोकर रोया था। अब तो याद भी नहीं आती। वे कोने में पड़े-पड़े अपने आप धूल-धवांस से भर कर... किसी दिन नौकरानी झाड़ कर उन्हें कचरे-घर में फेंक आएगी। बच्चा जवान हो गया, प्रौढ़ हो गया।
जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर परमात्मा की तरफ निकटता बढ़ेगी, एक प्रौढ़ता बढ़ेगी। जिन शब्दों को तुमने बड़ा मूल्य दिया था, जिनके लिए तुम कभी लड़-लड़ पड़े थे--किसी ने हिंदू-धर्म को कुछ कह दिया, या किसी ने तुम्हारे परमात्मा के खिलाफ कुछ बोल दिया, या किसी ने तुम्हारे गुरु की निंदा कर दी--सब शब्द हैं, हवा में बने बबूले हैं; तुमने तलवार खींच ली थी; तुम धर्म की रक्षा के लिए तत्पर हो गए थे; तुम मारने-मरने को उतारू थे; विवाद के लिए तैयार थे; सिद्ध करने के लिए तुमने पूरा आयोजन कर लिया था; शास्त्रार्थ तुम्हारे ओंठों पर रहा सदा। यह सब शब्दों का ही जाल है। शब्द में कौन सही, कौन गलत! शब्द में तो सभी गलत, शब्दों में कौन शास्त्र ठीक, कौन शास्त्र गलत, शब्द में तो सभी गलत, सभी शास्त्र गलत। यह खिलौना, वह खिलौना--कुछ चुनाव करने का है? कौन सा खिलौना यथार्थ? सभी खिलौने खिलौने हैं। कोई खिलौना यथार्थ नहीं है। और पंडित हैं कि लगे हैं शब्दों को घिसने में।
शब्दों का बड़ा ऊहापोह है, बड़ा जाल है। शब्द से ही तुम जीते हो, क्योंकि यथार्थ से तुम्हारे सभी संबंध छूट गए हैं। और यथार्थ परम मौन है। यथार्थ के पास कोई भाषा नहीं है, या मौन ही एक मात्र भाषा है। जब कोई परमात्मा के पास आता है, मौन होने लगता है; जैसे-जैसे पास आता है, वैसे-वैसे गहन मौन उतरने लगता है; रोआं-रोआं शांत हो जाता है; वाणी खो जाती है; मन थिर हो जाता है; भीतर की लौ अकंप जलने लगती है, कोई कंपन नहीं आता। भीतर के आकाश में शब्द की एक बदली भी नहीं तैरती। तब तुम जानते हो।
निःशब्द में जाना जाता है। जिसे निःशब्द में जाना है, उसे शब्द में कैसे कहोगे? निःशब्द तो निराकार है। शब्द तो आकार है। निःशब्द में तो तुमने वह जाना जो है। शब्द में लाकर ही तो वह कहोगे, और शब्द के आते ही संसार आ गया।
चौथी कठिनाईः मन रेखाबद्ध चलता है। मन लकीर का फकीर है। और मन हमेशा विरोध से बचता है। जहां-जहां विरोध पाता है, वहां-वहां मन दो खंड कर लेता है। जन्म को अलग कर लेता है, मृत्यु को अलग कर लेता है। क्योंकि मन की समझ के बाहर है यह बात कि जन्म और मृत्यु दोनों एक हो सकते हैं। जन्म कहां मृत्यु कहां; जन्म, जीवन का दाता; मृत्यु, जीवन की विनाशक! तो मन कहता है, जन्म और मृत्यु एक-दूसरे के विपरीत हैं, एक-दूसरे के शत्रु हैं। जन्म को तो चाहता है मन, मृत्यु से बचना चाहता है। जन्म में तो उत्सव मनाता है, मृत्यु में रोता-पीटता है, दुखी-दीन, जर्जर हो जाता है।
लेकिन जीवन में तो जन्म और मृत्यु जुड़े हैं; एक छोर जन्म है, दूसरा छोर मृत्यु है। वहां तो दिन और रात एक ही चीज के दो पहलू हैं। वहां तो सुबह और सांझ एक ही सूरज की दो घटनाएं हैं। वहां तो सुख और दुख अलग-अलग नहीं हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा के करीब आता है, वैसे ही सबसे बड़ी अड़चन आती है, वह यह कि परमात्मा विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है। उसमें सब इकट्ठा है। होना भी चाहिए, क्योंकि उससे विरोध में क्या होगा? और उससे विरोध में कोई रह कर रहेगा कहां? और उसके विरोध में होने का उपाय ही कहां है, जगह कहां है, ऊर्जा कहां है? परमात्मा में तो जन्म और मृत्यु आलिंगन कर रहे हैं। मन जब यह देखता है, तो बिल्कुल टूट जाता है। उसका सारा पुराना अनुभव, अब तक की बनाई हुई धारणाएं सब क्षणभर में बिखर जाती हैं। वहां तो रात और दिन एक ही घटना की दो पोशाकें हैं। वहां तो सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अंतिम अर्थों में, जो कि बहुत कठिन हैः वहां तो संसार और मोक्ष एक ही घटना के दो नाम हैं। तब बड़ी अड़चन हो जाती है।
मन ने बड़ी व्यवस्था से बांधा है, सब चीजों की सीमा बनाई है, कोटियां बनाई हैंः यह संसार है निकृष्ट, त्याज्य; मोक्ष है उत्कृष्ट, पाने योग्य; संसार है छोड़ने योग्य, मोक्ष है पाने योग्य; संसार है ठुकराने योग्य, मोक्ष है अभीप्सा योग्य--ऐसी मन ने सब धारणाएं बनाई हैं।

परमात्मा के जैसे-जैसे निकट तुम आओगे, यहां परमात्मा में संसार और मोक्ष एक ही घटना है। यहां बनाने वाला और बनाई गई चीजें दो नहीं हैं; स्रष्टा और सृष्टि एक है। वहां तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है परमात्मा से; तुम इस वृक्ष में परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि यह चट्टान परमात्मा से भिन्न है; तुम इस चट्टान में परमात्मा को ही सोता हुआ पाओगे। तुम शत्रु में भी देखोगे, वही है; मित्र में भी देखोगे, वही है। जन्म में वही आता है; मृत्यु में वही विदा होता है। परमात्मा एक है; वहां सब विरोध लीन हो जाते हैं। जैसे सब नदियां सागर में गिर जाती हैं, ऐसा सब कुछ परमात्मा में गिर जाता है। और तुम्हारे मन ने बड़े इंतजाम से जो कबूतरखाने बनाए थे, जिनमें जगह-जगह तुमने खंड कर दिए थे, चीजों को बांट दिया था, लेबिल लगा दिए थे--उसे लेबल लगाने को तुम ज्ञान कहते हो--हर चीज का नाम चिपका दिया था, हर चीज के गुण लिख दिए थेः यह जहर और यह अमृत--और अचानक परमात्मा में जाकर तुम पाते हो, जहर अमृत है, अमृत जहर है; सब एक है; कुछ चुनाव योग्य नहीं है--सभी उससे है। बुरा और भला दोनों उसी से आते हैं। संत और शैतान दोनों उसी से पैदा होते हैं। राम और रावण दोनों उसी की लीला के अंग हैं--राम ही नहीं, रावण भी; अन्यथा रावण कहां से आएगा? जैसे ही तुम परमात्मा के पास जाते हो, तुम्हारी सब कोटियां टूटती हैं। मन का सब ज्ञान उखड़ जाता है। परमात्मा भयंकर आंधी की तरह आता है, झकझोर डालता है तुम्हारे सब ज्ञानों को, धूल-धूसरित कर देता है। परमात्मा महान अग्नि की तरह आता है, जला डालता है सब कचरे को, सब शब्दों को, सब सिद्धांतों को, सब शास्त्रों को। परमात्मा ऐसा आता है कि तुम्हें बस नग्न और शून्य छोड़ जाता है। उस घड़ी में तुम जो जानोगे, कैसे वापस कबूतरखानों में रखोगे उसे? जिसने एक बार जान लिया, परमात्मा की एक झलक जिसको आ गई, फिर मन की सारी की सारी व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। उसी मन से बोलना है। उसी मन से कहना है।
इसलिए कबीर कहते हैंः "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।"
कैसे कहैं, क्या है उस परमब्रह्म का तेज? कौन सी उपमा दें? किन शब्दों
का सहारा लें?
"कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।"
कबीर कहते हैंः कहने में शोभा नहीं है, बात बिगड़ जाएगी; जो भी कहेंगे वही अशोभन होगा।
इसलिए आस्तिक हमेशा नास्तिक से विवाद में हार जाएगा। लाख उपाय करो, आस्तिक जीत नहीं सकता। आस्तिक हारेगा विवाद में। विवाद में नास्तिक ही जीतेगा। उसका कारण है क्योंकि नास्तिक उस जगत की बात कर रहा है जहां विवाद की सार्थकता है, जहां तर्कसंगत है। आस्तिक अतर्क्य की बात कर रहा है, जहां तर्क असंगत है। तो आस्तिक तो हारेगा ही। इसका यह मतलब नहीं है कि कोई आस्तिक नास्तिक से हार कर नास्तिक हो जाएगा। झूठा आस्तिक हार कर नास्तिक हो जाएगा; सच्चा आस्तिक हार कर भी और गहरा आस्तिक हो जाएगा, क्योंकि सच्चा आस्तिक हार और जीत जानता ही नहीं। वह हंसेगा। वह नास्तिक के तर्क से नाराज न हो जाएगा; वह नास्तिक के तर्क से हंसेगा। नास्तिक के प्रति उसे क्रोध न उठेगा, क्योंकि वह तो आस्तिक का लक्षण ही नहीं है; नास्तिक के प्रति महाकरुणा उठेगी। वह नास्तिक को तर्क काट कर सिद्ध करने की कोशिश भी न करेगा। अगर कुछ भी हो सकता है तो एक ही घटना काम की हो सकती हैः वह नास्तिक को प्रेम करेगा। क्योंकि जो शब्द से नहीं कहा जा सकता, अब उसको कहने का एक ही उपाय हैः वह है प्रेम। और जो तर्क से नहीं कहा जा सकता, अब उसको समझाने की एक ही विधि हैः वह करुणा है। और जिसका अब बताने का, विवाद से प्रमाण देने का कोई उपाय नहीं; उसका एक ही उपाय है कि वह खुद ही प्रमाण हो। आस्तिक के पास प्रमाण नहीं होते; आस्तिक स्वयं प्रमाण है। इसलिए अगर आस्तिक को समझना हो तो तर्क से तुम उसके पास पहुंच ही न पाओगे। उसके पास तो पहुंचने का रास्ता है, और वह रास्ता हैः सतसंग। वह रास्ता हैः उसके पास होना, ताकि उसका प्रेम तुम्हें छू सके, ताकि उससे उठती सुवास किसी दिन किसी अन-अपेक्षित क्षण, में तुम्हारे नासापुटों में भर जाए। क्योंकि अन्यथा, कहता हूं अन-अपेक्षित क्षण, क्योंकि अन्यथा तो तुम बहुत सुरक्षित

हो। तुमने सब संवेदनशीलता बंद कर रखी है। और आस्तिकता को जानने के लिए तो बड़ी नाजुक संवेदनशीलता चाहिए। वह फूल किसी और लोक का है। वह फूल अदृश्य है। उसकी सुवास अतिसूक्ष्म है, महासूक्ष्म है। अगर तुम संवेदनशील होओगे तो ही थोड़ी सी झलक मिलेगी। उसकी रोशनी ऐसी नहीं है कि तुम्हारी आंखों को चका-चौंध से भर दे; उसकी रोशनी बड़ी शीतल है। अगर तुम आंख बंद करके बैठ सकोगे आस्तिक के पास, तो ही तुम उसकी रोशनी देख सकोगे, क्योंकि रोशनी आंखों से देखी जानेवाली रोशनी नहीं; उसकी रोशनी तो आंख बंद करके ध्यानस्थ दशा में ही जानी जा सकती है।
"पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।" कबीर कहते हैं, शोभा ही नहीं कहने की; कहना अशोभन है। जो कहा नहीं जा सकता, उसे कह कर जो प्रतिबिंब सुनने वालों के मन में बनेगा, वह बड़ा अन्याय है; वह परमात्मा के साथ बड़ा अन्याय है। क्योंकि सुनने वाले कोई प्रतिमा बना लेंगे, जिससे कि परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं, दूर का भी नाता-रिश्ता नहीं। वे कुछ और ही समझ कर लौट जाएंगे। उनकी समझ एक तरह की नासमझी होगी।
इसलिए ज्ञानी की सारी चेष्टा यह है कि कैसे तुम्हारी आंखें खुल जाएं; नहीं कि कैसे तुम तर्क के द्वारा तृप्त कर दिए जाओ। तर्क से तुम तृप्त भी हो जाओ तो वह तृप्ति वैसे ही होगी जैसे तुम प्यासे थे और पानी के संबंध में किसी ने बहुत तर्क से सिद्ध कर दिया कि पानी है; और उसने सारा पानी का विज्ञान समझा दिया कि पानी कैसे बनता है; उसने पानी का फार्मूला, महामंत्र दे दियाः एच टू ओ; उसने बता दिया कि उद्जन के दो कण, अक्षजन का एक कण, तीन कण से मिल कर पानी बनता है। सब बात ठीक है। लेकिन प्यास न बुझेगी। एच टू ओ से कहीं प्यास बुझी है? राम-राम जपने से भी न बुझेगी। वह भी एच टू ओ है। "देखा ही परमान।" आंख चाहिए!
तो ज्ञानी के पास न तो तर्क खोजने जाना, न प्रमाण खोजने जाना; आंख खोजने जाना।
"एक कहौं तो है नहीं"--अब कबीर अपनी दुविधा कहते हैं। तुम्हारी दुविधा
है कि कैसे परमात्मा को जानें; ज्ञानी की दुविधा है कि कैसे परमात्मा को कहैं। जान तो लिया... ।
"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।"
कहते हैं कबीर, दो कहूं तो गाली हो जाएगी, और एक कहूं तो है नहीं।
दुविधा तुम समझ सकते हो; क्योंकि तुम कहोगे, सीधी सी बात हैः अगर दो कहना ठीक नहीं तो एक कहने से काम चल जाएगा। यहीं अड़चन है। क्योंकि एक की भी सार्थकता तभी है जब दो होता हो। एक का क्या मतलब होगा अगर दो हो ही न? कम से कम दो को परिकल्पित करना पड़ेगा, तभी तो एक में कोई अर्थ होगा। अगर तुमसे पूछा जाए कि दो, तीन, चार, पांच सारी संख्याएं खो गईं, सिर्फ एक संख्या बची-- उसका क्या अर्थ होगा? क्या कहोगे तुम जब कहोगे एक? तुमसे कोई पूछ बैठेगा, मतलब? तो तुम्हें तत्क्षण दो को भीतर लाना पड़ेगा; तुम्हें कहना पड़ेगा, जो दो नहीं। लेकिन दो तो है ही नहीं। तो एक भी कहने में कितना सार है? इसलिए तो हिंदुओं ने बड़े श्रम के बाद "अद्वैत" शब्द खोजा। यह दुविधा के भीतर बड़ी चेष्टा करनी पड़ी। तो, न तो वे कहते हैं, ब्रह्म एक है; न वे कहते हैं, दो है। वे कहते हैं कि इतना समझ लो कि दो नहीं है। अद्वैत का अर्थ हुआः दो नहीं। तो हम साधारणतः कहेंगे, भले मानस, एक ही क्यों नहीं कह देते? ऐसा सिर के पीछे से घुमा कर कान क्यों पकड़ते हो? सीधे क्यों नहीं पकड़ लेते हो? अड़चन हैः एक कहने में डर है, क्योंकि एक में अर्थ ही तब होता है, जब दो की संख्या सार्थक हो। और उस पारब्रह्म के अनुभव में दो की कोई संभावना नहीं है तो जहां दो ही नहीं है, वहां एक की क्या सार्थकता?
"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।"
और अगर दो कहूं, तब तो गाली हो गई। इसलिए तो कहते हैं, "कहिवे को सोभा नहीं।" क्योंकि दो से बड़ा झूठ क्या होगा? उस परमात्मा में दो है ही नहीं। यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है,
वह एक। रंग बहुत, पर जो रंगा है, वह एक। नृत्य-गान बहुत, पर जो नाच रहा है, वह एक; जो गा रहा है वह एक। अनेकता परिधि पर है, और सुंदर है अपने आप में। और

जिस दिन तुम एक को पहचान लोगे उस दिन अनेकता में भी उसकी ही पायल की झनकार सुनाई पड़ेगी; उस दिन हर फूल-पत्ती उसी की खबर लाएगी; हर पक्षी उसी का गीत गाएगा। उस क्षण जो भी हो रहा है, जहां भी हो रहा है, सभी उसका है। अचानक जैसे एक परदा उठ जाता है प्राणों से, सब पारदर्शी हो जाता है, और हर चीज के भीतर से वही खड़ा दिखाई देने लगता है।
पर एक अड़चन है शब्दों में।
"एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।"
और कबीर कहते हैंः बहुत विचारा, बहुत सोचा, बहुत उपाय बनाए, बहुत तरह
से कोशिश की--अब इतना ही कहना ठीक है कि "है जैसा तैसा रहे।" जैसा है बस वैसा ही है। उसकी किसी से कोई उपमा नहीं हो सकती, कोई तुलना नहीं हो सकती। उसकी तरफ कहीं से भी कोई संकेत नहीं किया जा सकता, कोई अनुमान काम न करेगा। हम जीवन में उपमा से ही समझते हैं। कोई आदमी कहता है कि मैंने एक बड़ा सुंदर फूल देखा जंगल में, वैसा फूल यहां नहीं होता--तो तुम पूछते हो, कुछ उपमा, वह किसी फूल जैसा हैः गुलाब जैसा, चमेली जैसा, चंपा जैसा? तुम यह पूछ रहे हो कि कुछ तो इशारा दो ताकि मैं अनुमान कर सकूं कि कैसा है। कमल जैसा? आखिर किसी तो फूल जैसा होगा? कुछ तो तालमेल किसी फूल से होता होगा? अगर एक से न हो तो तुम ऐसा कहो कि गंध गुलाब जैसी, रंग चंपा जैसा, रूप कमल जैसा--कुछ तो कहो, तो अंदाज तो लगे।
लेकिन परमात्मा के संबंध में कोई उपमा नहीं; क्योंकि वह अकेला ही है।
उस जैसा बस वही है। इसलिए कहीं से भी तो कोई द्वार नहीं मिलता कि संकेत किया जा सके।
"है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।"
बस, वह अपने जैसा है। पर यह भी कोई कहना हुआ? यह तो बात वहीं की वहीं रही। कह दिया कि बस अपने जैसा--इससे सुनने वाले को क्या समझ पड़ा? जिसको बताते थे, उसका कौन सा बोध बढ़ा? कुछ बात न बनी।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक, आधुनिक विचारक, विटगिंस्टीन ने एक वचन लिखा है। विटगिंस्टीन की किताबें इस सदी की महत्त्वपूर्ण से महत्वपूणें किताबों में हैं। अगर दस महत्वपूर्ण किताबें इस सदी की चुनी जाए, तो विटगिंस्टीन की किताब उन दस में एक होगी। विटगिंस्टीन कहता है कि "दैट विच कैन नॉट बी सैड शुड नॉट बी सैड"--जो नहीं कहा जा सकता, कृपा करके उसको कहो ही मत। जो नहीं कहा जा सकता, वह नहीं कहा जा सकता--यह भी मत कहो। विटगिंस्टीन यह कह रहा है कि इस तरह की बातें कहने रसे तुम कह भी नहीं पाते, दूसरा समझ भी नहीं पाता और बड़ी उलझन खड़ी होती है। तो क्या कबीर, दादू और नानक, और क्राइस्ट, और बुद्ध, और कृष्ण कहना बंद कर दें, विटग्सिंटीन की सलाह मान लें? माना कि उनके कहने से बड़ी उलझन पैदा होती है; लेकिन उस उलझन का कष्ट उठाने योग्य है। क्योंकि अगर वे बिल्कुल ही चुप रह जाएं, तो जो कह कर नहीं बताया जा सका, कह-कह कर भी जिसे तुम न समझ पाए, वह क्या बुद्धों के चुप रहने से तुम समझ जाओगे? चुप्पी तो तुम्हारे लिए बिल्कुल ही अनजानी भाषा है। इससे तो तुम्हें भला भ्रांति होती हो, चुप्पी से तो भ्रांति तक भी न होगी। चुप बैठे बुद्ध को तो तुम पहचान ही न पाओगे। और अगर बुद्ध चुप रह जाएं, तो तुम्हारे इस लोक में, कौन लाएगा उसकी खबर जिसकी खबर नहीं दी जा सकती? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हारे हृदय को तीर मारेगा? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें जगाएगा कि एक यात्रा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें चौंकाएगा कि यही जीवन नहीं है? कौन तुम्हारी पीड़ा, दुख और संताप में तुमसे कहेगा कि यही सब कुछ नहीं है; हम ऐसा लोक भी जानते हैं जहां कोई संताप नहीं है, कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं। कौन तुम्हें खबर देगा मुक्ति की--तुम्हारे कारागृह में?
सच है, विटगिंस्टीन ठीक कहता है कि जो नहीं कहा जा सकता, वह न ही कहा जाए। लेकिन फिर भी उचित नहीं है। जो नहीं कहा जा सकता, न ही कभी कहा गया है, उसे कहना होगा, बार-बार कहना होगा। नासमझी भी पैदा होती हो उससे, तो भी खतरा मोल लेना होगा, जोखिम उठानी पड़ेगी। क्योंकि हजार सुनें, नौ सौ निन्यानबे कुछ भी न समझ पाएं, पर किसी एक के हृदय में कोई तीर चुभ जाता है;

अनकहे हुए की भी थोड़ी सी झलक आ जाती है; एक नई आकांक्षा का जन्म हो जाता है। शुरू-शुरू में बड़ी धुंधली, कुछ भी साफ नहीं; जैसे सुबह का धुंधलका छाया हो-- लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे पैर संभलते हैं, वैसे-वैसे धुंधलका हटने लगता है; जैसे-जैसे आंख सम्हलती है, देखते-देखते-देखते जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा था, वहां उस अनंत की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है।
संत असंभव की कोशिश करते हैं, क्योंकि परमात्मा असंभव है। परमात्मा
से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं, उससे ज्यादा असंभव कुछ भी नहीं। वह चारों तरफ चौबीस घड़ी मौजूद है, और फिर भी तुम उसे छू नहीं पाते। सब तरफ से तुम्हें उसने घेरा हुआ है, फिर भी तुम्हें उसके स्पर्श का कोई पता नहीं चलता। तो माना कि संतों के वचन विज्ञान की कसौटी पर सही नहीं उतर सकते, उनके वचन बेबूझ रहेंगे, अतर्क्य रहेंगे। तर्क की कसौटी पर संतों के वचन कसे नहीं जा सकते, लेकिन इसमें कसूर संतों के वचन का नहीं है, तर्क की कसौटी का है।
एक बाउल फकीर हुआ, जिसकी कथा मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। कोई उससे पूछता है परमात्मा के संबंध में, तो बाउल फकीर इकतारा लिए रहते हैं। किसी ने पूछा है। जिसने पूछा है, वह पंडित है, बड़ा बुद्धिमान है, शास्त्रों का ज्ञाता है। लेकिन बाउल फकीर उसे कुछ जवाब नहीं देता, अपना इकतारा छेड़ देता है। वह थोड़ी देर तो सुनता है; फिर कहता है, "बंद करो। मैं कुछ पूछने आया हूं, इकतारा सुनने नहीं। बहुत इकतारे सुन लिए।" तो बाउल फकीर खड़ा हो जाता है। नाचना शुरू कर देता है। पंडित के लिए यह बिल्कुल बेबूझ है। वह कहता है, "क्या तुम पागल हो?" बाउल फकीर का मतलब ही पागल फकीर होता है। बाउल फकीर का मतलब होता हैः बावला। "क्या तुम बिल्कुल पागल हो? मैं पूछता हूं परमात्मा की--मैं पूछता हूं पश्चिम की, तुम चलते हो पूरब। यह नाचने से क्या होगा?" तो उस फकीर ने एक गीत गाया, और उसने कहा कि तुम्हारी बातों से मुझे याद आती हैः "एक बार ऐसा हुआ कि एक सुनार फूलों की बगिया में पहुंच गया। भूल से ही पहुंचा होगा, क्योंकि सुनार धातु के साथ जीता है। मुर्दा सौंदर्य में उसका रस है--सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात! जिंदा सौंदर्य में उसका कोई रस नहीं, जहां फूल खिलते हैं; क्योंकि फूल सुबह खिलते हैं, सांझ मुरझा जाते हैं, सोना सदा सम्हाल कर रखा जा सकता है। हीरा हजारों साल तक सम्हाला जा सकता है। मुर्दा सौंदर्य में उसका रस था। लेकिन एक बार भूल-चूक से बगिया में पहुंच गया। माली ने उसे अपने फूल दिखाए। जैसा कि मैं नाचा, जैसे कि मैंने इकतारा बजाया--मैंने तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। माली ने उसे फूलों के संबंध में समझाया, लेकिन उसने कहा कि नहीं, मैं कोई ऐसे मानने वाला नहीं हूं। मैं सुनार हूं, पारखी हूं। उसने अपने खीसे सोना कसने का पत्थर निकाला और फूलों को कस-कस कर देखने लगा। सोने के कसने के पत्थर पर फूल नहीं कसे जाते। और अगर फूल इसमें गलत साबित हुए, कसौटी में न कसे गए, तो फूलों का कसूर नहीं है, कसौटी का कसूर है। उसने फूलों को कसा, पटक दिया, और कहा कि इनमें कोई भी न तो सोना है, न कोई चांदी है।"
संत की वाणी अगर बेबूझ लगती है तो कसूर संत का नहीं है; तुम जिस मन से उसे कस रहे हो, उस मन का है। जीवन रहस्य है। संत क्या करे? उसकी वाणी में रहस्य प्रकट है। उसकी वाणी वैसी ही है जैसा जीवन का रहस्य है। उसकी वाणी में समाधान नहीं है; उसकी वाणी में समाधि का स्वर है। समाधान का अर्थ है कि तुमने तर्क को समझा-बुझा कर कोई हल खोज लिया। संत ने कोई समाधान नहीं खोजा है; संत ने समाधि खोज ली। उसने रहस्य के साथ जीने का ढंग खोज लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता; वह रहस्य को जीता है। पहेली को हल नहीं करना चाहता, क्योंकि वह समझ गया है कि पहेली में ही सौंदर्य है; उसे हल करने में तो सब मर जाएगा। वह किसी पहेली को हल नहीं करना चाहता--न प्रेम की, न प्रार्थना की, न परमात्मा की। उसने तो एक तरकीब खोज ली कि अब वह नाचता है इस पहेली के साथ; इस रहस्य के साथ वह खुद भी रहस्य पूर्ण हो गया। उसने तारों जैसा सौंदर्य उपलब्ध कर दिया। उसने ओस-कणों जैसी, शबनम जैसी ताजगी उपलब्ध कर ली। उसने फूलों जैसी सुवास पा ली। वह पक्षियों जैसा उड़ने लगा है अनंत के आकाश में। उसने रहस्य में तैरना और तिरना सीख लिया। अब वह रहस्य को हल नहीं करना चाहता।

रहस्य को हल करने की जरूरत भी नहीं है। रहस्य को हल करने वाले मनुष्यता के शत्रु हैं। क्योंकि वे हर चीज को हल कर देते हैं। तुम जाओ एक मनस्विद के पास, पूछा कि प्रेम क्या है--वह हल कर देगा। वह बता देगा कि यह क्या है। "यह प्रकृति की चेष्टा है--संतति को पैदा करने की।" वैज्ञानिक के पास जाओ, शरीर-विद के पास जाओ तो वह कहेगा, "यह कुछ भी नहीं है, हार्मोंस हैं। शरीर में स्त्री-पुरुष के हारमोन्स हैं, उन्हीं का सब खेल है। तुम झंझट में मत पड़ना।" तुम जाओ केमिस्ट के पास। वह बताएगा, वह कहेगा, "शरीर में ऐसे-ऐसे रस पैदा होने के कारण प्रेम की भ्रांति पैदा होती है। प्रेम-वगैरह कुछ है नहीं।"
ये सभी लोग हल करने बैठे हैं। ये सब हल कर दिए हैं। उनके हल के कारण जीवन से सब रहस्य खो गया है। अब सोच लो, कि जब तुम अपनी प्रेयसी को गले लगाओ, तब तुम्हें पता है कि हारमोन कम रहे हैं, और तुम नाहक मेहनत कर रहे हो। हारमोन तुम्हें चला रहे हैं। एक इंजेक्शन हारमोन का और तुम्हारा सब यह प्रेम वगैरह बदल जाएगा।
विवाह करने जाओ और तुम्हें पता है कुछ है नहीं। ये बैंड-बाजे सब धोखा है। असल में जीवशास्त्र कहता है, प्रकृति अपने को पैदा करती रहनी चाहती है; वह तुम्हें उपकरण की तरह उपयोग कर रही है। तुम तो मर जाओगे, तुम्हारे बच्चों को; तुम्हारे बच्चे मर जाएंगे, उनके बच्चों को... । प्रकृति जीवन को बचाए रखना चाहती है, तुमसे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। तुम तो एक वाहन हो जीवन के। बैंड-बाजे बेकार बजा रहे हो। जीवन तुम पर चढ़ा है। प्रकृति तुम्हारे सिर पर बैठी है; वह तुम्हें चला रही है।
अगर तुम प्रार्थना के लिए पूछने जाओ तो भी वैज्ञानिक के पास उत्तर हैं। अगर तुम ध्यान के लिए पूछने जाओ, तो अब वैज्ञानिकों ने यंत्र खोज लिए हैं ध्यान के भी। खोपड़ी में इलेक्ट्रोड लगा कर वे जांच कर बता देते हैं कि ध्यान हो रहा है कि नहीं हो रहा है। क्योंकि वे कहते हैं कि यह सब तो विद्युत तरंगों का खेल है। अलफा तरंग अगर चल रही हो तो ध्यान है। वैज्ञानिक हर चीज को हल करने लगा है। तुम थोड़ा सोचो, किसी दिन अगर वैज्ञानिक सफल हो गया, उसने सब हल कर लिया, फिर आत्मघात के अतिरिक्त और क्या बच रहेगा? लेकिन वह आत्मघात भी न करने देगा। वह कहेगा, इसको भी हम हल किए देते हैं कि इसका कारण क्या है।
धर्म की यात्रा रहस्य को हल करने की यात्रा नहीं है। रहस्य को जीने की यात्रा है। हल करे नासमझ। जीवन का क्षण मिला है एक महोत्सव में, निमंत्रण मिला है, धर्म उसमें सम्मिलित हो जाना चाहता है। धर्म नाचना चाहता है चांद तारों के साथ।
कबीर कहते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता उस परमात्मा के संबंध में, जो तुम्हारे प्रश्नों को हल कर दे। "है जैसा तैसा रहे।" रहस्य है और रहस्य ही रहेगा, और तुम व्यर्थ हल करने में समय मत गंवाओ; तुम डुबकी लगाओ, तुम डूबो इस रहस्य में, नहाओ, नाच लो। अस्तित्व का यह क्षण उत्सव बना लो। उस उत्सव से तुम परमात्मा से और रहस्य से एक हो जाओगे। वही एक हो जाना समाधि है। समाधान विज्ञान की खोज है, समाधि धर्म की। दोनों शब्द एक ही धातु से,
एक ही मूल शब्द से बने हैं, लेकिन बड़े दूर निकल गए हैं। विज्ञान कहता है, समाधान क्या है समस्या का; धर्म कहता है, समाधि। तुम समाधान खोजो ही मत। समाधान खोजा ही न जा सकेगा। रहस्य रहस्य ही रहेगा। तुम कितना ही जानते जाओ, और रहस्य के नये परदे उठते जाएंगे। और वही हुआ है। रोज रहस्य के नये परदे उठते गए हैं; रहस्य चुका नहीं है। विज्ञान ने बहुत जान लिया और कुछ भी नहीं हुआ।
अभी वैज्ञानिकों की एक बहुत बड़ी परिषद कनाडा में बैठी और उस परिषद ने
जो प्रस्ताव पास किए, उनमें एक प्रस्ताव बड़ा अनूठा है, जो कि वैज्ञानिकों से कभी भी आशा नहीं है। वह पहला प्रस्ताव है परिषद का, और पहली दफा वैज्ञानिकों ने समझदारी की थोड़ी सी झलक दी है। पहला प्रस्ताव यह है कि लोग सोचते हैं कि हम बहुत जानते हैं; लेकिन हम जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं जानते। यह बड़ी समझदारी की बात है। विज्ञान अगर किसी दिन इतना समझदार हो गया तो विज्ञान समर्पण कर देगा धर्म की यात्रा में अपना भी।

"है जैसा तैसा रहै, कहै कबीर विचारि।"
"ज्यों तिल माहीं तेल है, चकमक माहीं आग।"
जैसे चकमक में आग छिपी है और अगर तुम्हें चकमक न रगड़ना आता हो तो तुम बैठे रहोगे। चकमक सामने रखी रहेगी, और तुम्हारे घर में अंधेरा भरा रहेगा। और सामने रखी थी आग, लेकिन रगड़ने की कला तुम्हें न आती थी।
धर्म है समाधि, योग है रगड़ने की कला। योग है चकमक को रगड़ कर आग को पैदा
कर लेने की विधि। आग तो छिपी है। परमात्मा ही छिपा है सब तरफ, जैसे तेल में तिल छिपा है, जरा निचोड़ने की बात है; जैसे चकमक में आग छिपी है, जरा रगड़ने की बात है।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।
कबीर कहते हैंः कहीं और जाना नहीं है। तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै
तो जाग--बस करना इतना ही है कि तू जाग। साईं को नहीं खोजना है, जागना है। और भूल कर के कहीं साई को खोजने मत निकल जाना, बिना जागे; नहीं तो नींद में बहुत भटकोगे, पहुंचोगे कहीं नहीं। क्योंकि--तेरा साईं तुज्झ में। जाते कहां हो खोजने? जितनी दूर निकल जाओगे खोजने उतनी ही उलझन में पड़ जाओगे। परमात्मा को खोजना नहीं है, बस जागना है।
"तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जाग।"
"कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूढ़ै वन माहिं।"
आती है गंध कस्तूरी की भीतर से। नाफा पक गया, कस्तूरी तैयार है। भागता
है पागल होकर मृग, खोजता है, कहां से आती है यह गंध? उसकी नाभि में है कस्तूरी। पर मृग को कैसे पता चले? मनुष्य को भी पता नहीं चलता कि गंध नाभि में है।
तुम्हारे जीवन का स्रोत तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे आनंद का स्रोत भी तुम्हारी नाभि है। तुम्हारे अस्तित्व का केंद्र तुम्हारी नाभि है। अगर तुम अपनी नाभि में उतर जाओ, तो तुमने परमात्मा का द्वार पा लिया।
पश्चिम में लोग मजाक करते हैं। पूरब के योगियों को कहते हैं, वे लोग
जो अपने नाभि में टकटकी लगा कर देखते रहते हैं। वहां क्या रखा है? वहीं सब कुछ रखा है।
तुम्हें शायद पता नहीं कि मां के गर्भ में तुम नाभि से ही मां से जुड़े थे। नाभि तुम्हारे जीवन का केंद्र है। वहीं से जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन में प्रवाहित हो रही थी। फिर तुम तैयार हो गए, मां की जीवन-ऊर्जा की जरूरत न रही, तो नाल काट दी गई। तुम मां के गर्भ से बाहर आ गए। लेकिन तुम्हारी नाभि से एक अदृश्य नाल अभी भी परमात्मा से जुड़ी है। एक रजतरेखा तुम्हें जोड़े हुए है अस्तित्व से। तुम नाभि से ही जुड़े हो। नाभि में ही तुम्हारी जड़ हैं। न केवल शरीर के अर्थों में तुम नाभि से जुड़े हो। आत्मा के अर्थों में भी तुम नाभि से ही जुड़े हो। जिन लोगों को कभी शरीर के बाहर जाने का अनुभव हुआ है--कई बार हो जाता है, कभी तो दुर्घटना में हो जाता है कि कोई आदमी ट्रेन से गिर पड़ा और उस झटके में उसकी आत्मा शरीर के बाहर निकल गई--तो जिन लोगों को भी ऐसा अनुभव हुआ है दुर्घटना में, या योग की साधना में, या जान-बूझ कर जो प्रयोग कर रहे थे शरीर के बाहर जाने का, उन सभी को एक बात दिखाई पड़ी है, और वह यह कि उनकी आत्मा कितनी ही दूर चली जाए, एक रजत-रेखा नाभि से जुड़ी ही रहती है। अगर वह टूट जाए, फिर वापस शरीर में लौटने का उपाय नहीं रह जाता। वह कितनी ही ऊंचाई पर उड़ जाए, लेकिन वह रजत-रेखा बड़ी लोचपूर्ण है, वह खिंचती जाती है। वह कोई पदार्थ नहीं है; वह सिर्फ शुद्ध विद्युत-ऊर्जा है, इसलिए शुभ्र चांदी की भांति दिखाई पड़ता है।
तुम्हारी नाभि में तुम्हारे जीवन का सारा राज छिपा है। इसलिए कबीर ने "कस्तूरी कुंडल बसै" यह प्रतीक चुना है। और घटना वही घट रही है जो मृग के साथ घटती है। मृग बिल्कुल पागल हो जाता है, टकरा लेता है सिर को जगह-जगह, लहूलुहान हो जाता है। और इतनी मादक गंध आती है, रुक भी नहीं सकता; खोजना चाहता है, कहां से गंध आती है। जितना भागता है उतना ही व्याकुल होता है। और जितना भागता है उतनी ही जगह उसकी गंध व्याप्त हो जाती है। उतना ही और भी दिग्भ्रम पैदा होने लगता है कि कहां से आ रही है, कि पूरब से कि पश्चिम से

कि दक्षिण से। क्या करे यह मृग? इस मृग को कैसे समझाएं कि तू बैठ जा, आंख बंद कर ले, भीतर उत्तर--तेरे भीतर ही गंध का राज छिपा है।
तुम भी आनंद की तलाश में कहां-कहां नहीं घूम लिए हो। कितने जन्मों की लंबी यात्रा है। हिंदू कहते हैं, चौरासी करोड़ योनियों में तुम एक ही चीज को खोज रहे हो कि गंध कहां से आ रही है? आनंद कहां से मिलेगा? जीवन का राज कहां छिपा है? परमात्मा कहां है?
और कबीर कहते हैंः कस्तूरी कुंडल बसै। तेरा साईं तुज्झ में, जागिर सकै तो जाग।
ऐसे घट-घट राम हैं--जैसे कस्तूरी कुंडल के भीतर छिपी है--ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखै नाहिं।
अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।। कबीर कहते हैं कि वह जो अक्षय पुरुष है, वही इस सारे अस्तित्व का फैलाव है। यह सारा वृक्ष उसी का है। प्रतीक है कि अक्षय पुरुष जैसे एक अक्षय वट हैः सारा फैलाव एक वृक्ष की भांति है; डार-डार उसी अक्षय पुरुष की निरंजनता फैली है।
निरंजन का अर्थ होता हैः परम वैराग्य। निरंजन का अर्थ होता हैः जिसको कोई रंग, रंग नहीं पाता; जो सब रंगों में है, और अनरंगा रह जाता है। निरंजन का अर्थ होता हैः कमलवत; है पानी में और पानी छू नहीं पाता। उस अक्षय पुरुष का यह फैलाव है अस्तित्व--वृक्ष की भांति वही निरंजन एक-एक डार में छिपा है।
पात भया संसार--और ये जो पत्ते हैं, यही संसार है। कबीर यह कह रहे हैं
कि परमात्मा और संसार में फासला नहीं है; ये एक ही चीज के दो ढंग हैं। स्रष्टा और सृष्टि दो नहीं हैं। और पात-पात में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे पत्ते कितने ही अलग दिखाई पड़ रहे हों, तुम में भी वही फैला है। तुम उसके ही पात हो। तुम्हारे पत्ते कितने ही अलग दिखाई पड़ रहे हों, तुम इस भ्रांति में मत पड़ना कि तुम अलग हो। अलग तो तुम उससे जुड़े हो। प्रतिपल श्वास ले रहे होः श्वास काट दी जाए, एक द्वार टूट गया, एक सेतु मिट गया--कैसे जीओगे? सूरज की किरणें चली आ रही हैं, तुम्हारे रोएं-रोएं को, जीवन को उत्ताप से भर रही हैं; सूरज ठंडा हो जाए, तुम कैसे जीओगे? ये तो स्थूल बातें हैं। ऐसे ही सूक्ष्म तल से सब तरफ से परमात्मा तुम्हें सम्हाले हुए है जैसे वृक्ष को अदृश्य जड़ें सम्हाले होती हैं। और वृक्ष पत्ते-पत्ते की फिकर कर रहा है। तो घबड़ाओ मत कि तुम पत्ते हो और संसार में हो--संसार भी उसी का है। सृष्टि और स्रष्टा दो नहीं हैं; सृष्टि, स्रष्टा का ही फैलाव है।
अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भए, पात भया संसार।।
इसे बहुत गहनता से समझ लो, क्योंकि विषाक्त करने वाले लोगों ने बड़ी भ्रांतियां फैला रखी हैं। वे कहते हैं, संसार पाप है। वे कहते हैं, संसार छोड़ने योग्य है, वे कहते हैं, भागो संसार से अगर परमात्मा को पाना है। परमात्मा संसार के कण-कण में छिपा है, और तथाकथित महात्मा समझाए जाते हैं कि भागो संसार से, अगर परमात्मा को पाना है। और अगर संसार में वही छिपा है तो तुम जहां भी भागोगे, तुम परमात्मा से ही भाग रहे हो। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम जहां हो ठीक वहीं उससे मिलन होगा; इंच भर भी यहां-वहां जाने की जरूरत नहीं है। दुकान पर बैठे-बैठे मिलन हेगा। दफ्तर में काम करते-करते मिलन होगा। बगीचे में गड्ढा खोदते-खोदते मिलन होगा। घर को, गृहस्थी को सम्हालते-सम्हालते मिलन होगा, क्योंकि वही हर पत्ते में छिपा है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां वह न हो।
रवींद्रनाथ ने एक बड़ी मधुर कविता लिखी है। लिखा है कि बुद्ध ज्ञानी हुए और वापस लौटे। रवींद्रनाथ के मन में कहीं न कहीं बुद्ध का घर छोड़ कर जाना, कभी जंचा नहीं। रवींद्रनाथ को कभी जंचा नहीं। किसी कवि को कभी जंच नहीं सकता। थोड़ा कठोर मालूम पड़ता है, थोड़ा काव्य-विरोधी मालूम पड़ता है, थोड़ा सौंदर्य का विनाशक मालूम पड़ता है। और कवि के लिए तो सौंदर्य ही सत्य है। यशोधरा को छोड़ कर भाग गए बुद्ध की प्रतिमा रवींद्रनाथ को कभी भायी

नहीं। तो उन्होंने बड़ी मीठी कविता लिखी है। वह कविता हैः लौट आए बुद्ध घर, ज्ञान को उपलब्ध होकर, यशोधरा ने पूछा, एक ही बात मुझे पूछनी है और बारह वर्ष तक इसी बात को पूछने के लिए मैं प्रतीक्षा करती रही हूं। अब आप आ गए हैं, ज्ञान को उपलब्ध होकर, अब मैं समझती हूं कि समय आ गया है, मैं पूछ लूं। पूछना मुझे है कि जो तुमने मुझे छोड़ कर वहां जंगल में पाया, क्या तुम उसे यहीं नहीं पा सकते थे?
रवींद्रनाथ ने बुद्ध को चुप छोड़ दिया है, उत्तर नहीं दिलवाया। पर रवींद्रनाथ का उत्तर साफ है, और चुप रह जाने में भी उत्तर साफ है। अब तो बुद्ध भी जानते हैं कि उसे, जो पाया है जंगल में, उसे यहीं पाया जा सकता था। स्रष्टा छिपा है अपनी सृष्टि में। यह सृष्टि ऐसी नहीं है कि जैसे मूर्तिकार मूर्ति को बनाता है, क्योंकि मूर्तिकार मूर्ति को बना कर मूर्ति से अलग हो जाता है; या कवि कविता बनाता है, कविता अलग हो जाती है, कवि अलग हो जाता है। कवि तो मर जाएगा, कविता बनी रहेगी। मूर्ति हजारों साल जी लेगी, मूर्तिकार तो चला जाएगा। दोनों अलग हो गए। नहीं, परमात्मा की सृष्टि कुछ और तरह की है। इसलिए हमने परमात्मा के प्रतीक की तरह नटराज को चुना है--नर्तक; मूर्तिकार नहीं, चित्रकार नहीं, कवि नहीं।
परमात्मा नर्तक है, क्योंकि नृत्य और नर्तक को अलग नहीं किया जा सकता। नर्तक चला गया, नृत्य भी गया। तुम नृत्य को नहीं बचा सकते अलग। तुम नर्तक और नृत्य को अलग कहां करोगे? उनके बीच में कोई फासला नहीं हो सकता। परमात्मा नर्तक की भांति अपनी सृष्सिट से जुड़ा है, मूर्तिकार की भांति नहीं। यह सृष्टि उसका ही होना है। यह तुम्हें ख्याल में आ जाए तो तुम व्यर्थ भागने के विचारों से बच जाओगे और तुम जहां हो वहीं खोज शुरू कर दोगे। तुम जिस जगह खड़े हो, वहीं और वहीं हीरा गड़ा है, कहीं और खोजने मत जाओ। मैंने एक बड़ी अदभुत कहानी सुनी है। एक यहूदी फकीर था। उसने रात सपना देखा। एक रात देखा, दूसरी रात देखा, तीसरी रात देखा--तब सपना सच मालूम होने लगा। सपना यह था कि जिस देश में वह रहता था उस देश की राजधानी में एक पुल के पास एक बहुमूल्य खजाना गड़ा है। जब तीन बार, बार-बार देखा और सब चीज बिल्कुल साफ हो गई, नक्शा भी साफ हो गया; एक-एक चीज स्पष्ट हो गई तो मजबूरी में उसे यात्रा करनी पड़ी राजधानी की। वह राजधानी गया, लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ गया; क्योंकि जहां धन गड़ा है पुल के किनारे, वहां चौबीस घंटे पुलिस तैनात रहती है पुल की रक्षा के लिए। तो वह कैसे उसे खोदे? कब खोदे? वहां से कभी पुलिस हटती नहीं। जब दूसरे लोग पहरे पर आ जाते हैं, तब पहले लोग जाते हैं। चौबीस घंटे सतत वहां पहरा है। तो वह राह खोजने के लिए बार-बार पुल पर गुजरता है। एक पुलिसवाला उसे देखता रहा है। आखिर उसने कहा, सुन भाई, तू क्यों यहां बार-बार गुजरता है? आत्महत्या करनी है? पुल से कूदना है? क्या इरादा है? फकीर है, तो दिखता भी है ऐसा कि उदास है और जिंदगी से निराश है, शायद मौका देख रहा है कूद जाने का या कोई और कारण है--बात क्या है? संदेह पैदा होता है? उस फकीर ने कहा, जब तुमने पूछ लिया तो मैं बता ही दूं, क्योंकि रास्ता भी दिखाई नहीं पड़ता कुछ करने का; तुमसे ही कह दूं, शायद तुम्हारे काम पड़ जाए। मैंने एक सपना देखा, तीन बार देखा सतत देखा और इतना साफ हो गया सपना कि मुझे भरोसा आ गया कि होना चाहिए। मैंने सपरा देखा है कि तुम जहां खड़े हो वहां जमीन में बड़ा खजाना गड़ा है। वह सिपाही हंसने लगा। उसने कहा, हद हो गई। सपना तो हमको भी तीन रात से आ रहा है लेकिन यहां का नहीं आ रहा है। एक छोटे से गांव का उसने नाम लिया। फकीर चौंका, वह तो उसका गांव है। एक फकीर के घर में... और वह तो उसी फकीर का नाम है। और जहां वह फकीर बैठ कर माला जपता रहता है, वहां खजाना गड़ा है। उसने कहा, तीन रात से हमको भी आ रहा है। मगर सपना सपना है। ऐसे हम तुम्हारे जैसे झंझटों में नहीं पड़ते कि कभी यात्रा करें, उस गांव जाएं। पागलपन में मत पड़ो।
फकीर भागा घर की तरफ कि यह तो हद हो गई। जहां बैठा था, खोजा--खजाना वहां था।
कहानी पता नहीं, सच है या झूठ, पर जीवन में ऐसा ही हैः तुम जहां हो, खजाना वहीं गड़ा है। सपना आएगा--हिमालय चले जाओ, खजाना वहां है। सपना आएगा-- मक्का, मदीना, काशी गिरनारः कई तरह के सपने आएंगे--उनसे बचना। तुम जहां हो,

वहीं खजाना है। क्योंकि अगर तुम हिमालय पहुंचे तो हिमालय में जो बैठा है, वह तुमको बताएगा कि हमको तो सपना आ रहा है कि पूना, कि खजाना वहां बंट रहा है।
परमात्मा सब जगह है, इसलिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। तुम जहां हो, जैसे हो, और परमात्मा की उपलब्धि बेशर्त है, अनकंडिशनल है। परमात्मा तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम ऐसा करो कि तब मैं तुम्हें उपलब्ध होऊंगा। क्योंकि जब उसने ही तुम्हें बनाया है तब इससे ज्यादा सुंदर और क्या अपेक्षा हो सकती है? इसे थोड़ा सोचो। अगर परमात्मा ने ही तुम्हें गढ़ा है, तो अब तुम इसमें और सुधार न कर पाओगे। मैंने किसी आदमी को सुधरते नहीं देखा। और मैं हजारों के साथ संलग्न हूं और वे सब सुधार के लिए मेरे पास आते हैं; लेकिन मैंने कभी किसी आदमी को सुधरते नहीं देखा। इससे मैं निराश नहीं हूं; इससे केवल एक सत्य की उदघोषणा होती है कि परमात्मा ने तुम्हें बनाया है अब तुम उसमें सुधार करने की कोशिश क्या करोगे? कोई सुधार नहीं सकता; परमात्मा से और ज्यादा सुधारने का उपाय भी नहीं हैं। जितना किया जा सकता था, वह कर ही चुका है। उसकी कोई शर्त नहीं है कि तुम ऐसे हो जाओ कि ब्रह्मचर्य ग्रहण करो, कि उपवास करो, कि यह करो, कि वह करो, तब मैं तुम्हें उपलब्ध होऊंगा। वह तुम्हें उपलब्ध ही है--प्रसाद की भांति। प्रसाद में कोई शर्त थोड़े ही होती है। वह देने को राजी है। अड़चन इतनी है कि तुम लेने को राजी नहीं हो। कोई शर्त नहीं है, सिर्फ तुम लेने के राजी नहीं हो। तुम इतने अकड़ से भरे हो कि तुम लेने वाले बनना ही नहीं चाहते--बस, इतनी ही कठिनाई है। और वह एक गहरी मजाक है।
और परमात्मा मजाक कर सकता है, यह बात मुझे बड़ा सुख देती है। क्योंकि मैं किसी गुरु-गंभीर परमात्मा में भरोसा नहीं करता। परमात्मा गुरु-गंभीर होता तो संसार हो ही नहीं सकता। परमात्मा निश्चित ही हलका और प्रसन्न, प्रफुल्ल, उत्सव--ऐसा कुछ है।
कहावत है अरब में कि जब भी वह किसी को बना कर संसार में भेजता है तो उसके कान में यह कह देता है कि तुझसे बेहतर आदमी मैंने बनाया ही नहीं। मगर सभी से वह यही कह देता है। और हर आदमी इसी ख्याल में भटकता है। यह एक गहरी मजाक है; और परमात्मा करता है, इससे दुनिया में रस है।
जिस दिन तुम जागोगे, और जिस दिन तुम्हारी यह भ्रांति छूट जाएगी। तुम समझ लोगे मजाक को--उसी दिन तुम विनम्र होकर झुक जाओगे। भेंट तैयार है; जन्मों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारा झुकना भर काफी है। तुम लेने भर के लिए राजी हो जाओ, देने वाला सदा से राजी है।
इस जिंदगी में उलटा हो रहा है, यहां मांगने वाला तैयार है, दाता कोई भी नहीं। उस दुनिया में ठीक इससे उलटा है। वहां दाता तैयार है, लेनेवाला कोई नहीं। बस तुम अपनी झोली फैला दो। तुम अपने हृदय को खोल कर रख दो, और कह दो परमात्मा से जो तेरी मरजी। जैसे तू रखे, वैसा रहेंगे। जैसा तू चलाए, वैसा चलेंगे। जैसा तू बनाए, वैसा बनेंगे। इसे मैं संन्यास कहता हूं। यह संन्यास की बड़ी अनूठी व्याख्या हो गई; क्योंकि जिसको तुम संन्यासी कहते हो, वह कहता है कि पच्चीस गल्तियां हैं परमात्मा के बनाने में, इनको सुधारूंगा। उसने ऐसा क्यों किया? मैं संन्यास कहता हूं उस घड़ी को, जब तुम सर्वांग रूप से परमात्मा को स्वीकार कर लेते हो कि मैं राजी हूं तेरी रजा में। तेरी मर्जी अब मेरी मर्जी। अब तू जहां बहाए, वहां मैं बहूंगा। तू अंधेरे में ले जाए, तो तैयार हूं। तू संसार में भेज दे, तो मैं राजी हूं। तू मोक्ष में ले जाए, तो मैं राजी हूं। अब मेरी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। इस घड़ी का नाम संन्यास है। इस चित्त-दशा का नाम संन्यास है। और ऐसे अगर तुम तैयार हो, इसी क्षण परमात्मा मिल सकता है। क्योंकि सब जगह वही छिपा है। पात-पात पर उसके हस्ताक्षर हैं। और कबीर कहते हैं, जब तुम ऐसी हालत में आ जाओगे तो क्या घटेगा?
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुं दिसि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर।।
फिर सारा आकाश अमृत बरसाने लगता है। जब तुम राजी हो लेने को, तो दाता
के अनंत हाथ हैं। इसलिए तो हम परमात्मा के बहुत हाथ बनाते हैं; क्योंकि दो

हाथ से देना भी क्या देना होगा? और परमात्मा दो हाथ से दे, बड़ा कृपण मालूम पड़ेगा। इसलिए हम अनंत हाथ बनाते हैं। जब वह देता है तो अनंत हाथों से देता है।
गगन गरजि बरसै अमी, ...
सारा गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है। बादल गहन अमृत को लेकर घने हो
गए हैं। चारों तरफ बिजली चमक रही है। चारों तरफ रोशनी ही रोशनी का सागर है।
... और भीजै दास कबीर।
और दास कबीर इस अमृत में नाच रहा है। भीग रहा है; इस अमृत को भी पी रहा है; इस अमृत के साथ एक होता जा रहा है।
गगन सदा तैयार है गरजने को, बरसने को। बादल सदा से तुम्हारे सिर पर मंडराते रहे हैं; बिजलियां चमकने को बिल्कुल तत्पर ख.ड़ी हैं; मगर दास कबीर राजी नहीं है। बस दास कबीर राजी हो जाएं, दास हो जाएं--राजी हो गया।
तुम मालिक बने बैठे हो। अहंकार ने सिंहासन पकड़ रखा है--अकड़े हो। तुम्हारी अकड़ के कारण रोशनी तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाती है। अमृत भी बरसा है तो भी तुम्हें छू नहीं पाता। तुम्हारी अकड़ भयंकर है। जो भी अपनी अकड़ से भरे हैं, वे पहाड़ों की भांति हैं, गड्ढों की भांति हैं, खाली हैं, शून्य हैं--अमृत से भर जाएंगे।
जरा भी देर नहीं है उसकी तरफ से; अगर देर है तो तुम्हारी तरफ से। और कब
तक प्रतीक्षा करनी है? हो जाओ खड़े आकाश के नीचे। बन जाओ दास कबीर। नाचो अहोभाव से! जो उसने दिया है, उसके लिए धन्यवाद दो। और जैसे ही तुमने उसके लिए धन्यवाद दिया, जो उसने दिया है, कि हजारों हाथ से अमृत बरसना शुरू हो जाता है! फिर वह तुम्हें बहुत देता है। क्योंकि अनुगृहीत की ही उपलब्धि हैं। अनुगृह ही उसकी तरफ जाने का मार्ग है।
ये सब प्रतीक हैं। इन प्रतीकों के भीतर छिपा हुआ इशारा है, उस इशारे
को याद रखनाः
"कस्तूरी कुंडल बसै।"

आज इतना ही।